डॉ. रघुनाथ पुरुषोत्तम कुलकर्णी

चार शुल्बसूत्र

(बोधायन, मानव, आपस्तंब और कात्यायन शुल्बसूत्रों का हिन्दी अनुवाद)

महर्षि सान्दीपनि
राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान

चार शुल्बसूत्र

(बोधायन, मानव, आपस्तंब और कात्यायन शुल्बसूत्रों का हिन्दी अनुवाद)

डॉ. रघुनाथ पुरुषोत्तम कुलकर्णी

चार शुल्बसूत्र

{बोधायन, मानव, आपस्तम्ब और कात्यायन
शुल्बसूत्रों का हिन्दी में अनुवाद
मूल संस्कृत सूत्र, हिन्दी अनुवाद, स्पष्टीकरण, अनेक
आकृतियाँ और विस्तृत प्रस्तावना के साथ।}

अनुवादक

डॉ. रघुनाथ पुरुषोत्तम कुलकर्णी

बी. ई. (स्थापत्य) एम. टेक. (मृदयांत्रिकि और
आधार भूमि स्थापत्य) पी. एच. डी. (स्थापत्य)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान

Rs. 800-00

प्रथम संस्करण 2000

प्रकाशक
सचिव
महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान
प्राधिकरण भवन, भरतपुरी, उज्जैन 456 010 (म. प्र.)

ISBN : 81-87955-01-5

वितरक
साइबरआर्ट इन्फारमेशंस प्रा. लि.,
कनु चेम्बर्स, सी 2, सांवल नगर,
नई दिल्ली 110 049
फोन-फैक्स 91-011-625 4729/0700/6148
इ-मेल cyberart@vsnl.com

पृष्ठ सज्जा, आवरण एवं मुद्रण
साइबरआर्ट

पुरोवाक्

शुल्ब सूत्रों का अध्ययन रेखागणित की प्राचीन भारतीय मान्यताओं की प्रामाणिक जानकारी के लिए अत्यावश्यक है। वस्तुतः शुल्ब सूत्र वेदांग में परिगणित होने वाले कल्पसूत्र का महत्वपूर्ण अंग है। वैदिक कल्पसूत्रों का प्रमुख प्रतिपाद्य कर्मकाण्ड है जो मुख्यतया ग्रह्यसूत्र तथा श्रौत सूत्र के रूप में विभक्त है। श्रुति में वर्णित विविध यज्ञों का श्रौत सूत्रों में विस्तृत प्रतिपादन किया गया है। शुल्ब सूत्र श्रोत सूत्रों के अध्ययन कें लिए बड़ा ही उपादेय है। शुल्ब का अर्थ है- रज्जू और रज्जु के द्वारा मापी गई यज्ञ वेदि का निर्माण ही शुल्ब सूत्र का प्रमुख विषय है।

शुक्ल यजुर्वेद से सम्बद्ध मात्र कात्यायन शुल्ब सूत्र है परन्तु कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध 6 शुल्ब सूत्र उपलब्ध हैं- बोधायन, आपस्तम्ब, मानव, मैत्रायणीय, वाराह तथा वाधूल। आपस्तम्ब शुल्ब सूत्र के जानकार करविन्द स्वामी ने मषक शुल्ब तथा हिरण्यकेशी शुल्ब सूत्र का भी संकेत किया है परन्तु दुर्भाग्यवश ये दोनों ही अब नहीं मिलते। उपलब्ध शुल्ब सूत्रों में बोधायन शुल्ब ही प्राचीनतम है और आकार की दृष्टि से बड़ा भी। शुल्ब में प्रयुक्त विविध मानव, याज्ञिक वेदियों के निर्माण हेतु प्रमुख रेखागणितीय तथ्यों का तथा विविध वेदियों के क्रमिक सिद्धान्त तथा आकार-प्रकार का वर्णन है।

आपस्तम्ब शुल्ब सूत्र अपेक्षाकृत सरल तथा संक्षिप्त है। इसमें भी बोधायन की तरह ही प्रायः समस्त कर्मेष्ठियों का समान रूप से विवेचन मिलता है। विवेचन के साथ-साथ कर्मेष्ठियों के लिए आवश्यक विभिन्न वेदियों के आकार-प्रकार का विस्तृत प्रतिपादन है। बोधायन शुल्ब सूत्र के दो प्रसिद्ध टीकाकार मिलते हैं।

बौधयन को शुल्ब सूत्र का आदि प्रवर्तक नहीं माना जा सकता क्योंकि उन से पूर्ववर्ती आचार्यों के द्वारा निर्मित शुल्ब सूत्र उपलब्ध होते हैं। क्योंकि बोधायन में भी अपने से पूर्ववर्ती आचार्यों का मत "अपरम्" "एतेषाम्" "एके" इत्यादि शब्दों द्वारा समुद्धृत किया है।

कात्यायन शुल्ब सूत्र का प्राचीन होना निर्विवाद है। इनके द्वारा प्रणीत शुल्ब सूत्र में बोधायन की तरह "अपरे एतेषाम्" पूर्वाचार्यों का उल्लेख नहीं मिलता। आपस्तम्ब शुल्ब सूत्र कात्यायन की अपेक्षा अर्वाचीन है। इस प्रकार का संकेत उनकी मूल व्याख्या के आधार पर निर्धारित किया जा सकता है।

कल्प वेद विहित कर्म का आनुपूर्वी से करने का कल्पना सूत्र है। यहाँ कल्पना शब्द का प्रयोग रचना अर्थ में किया गया है अर्थात् कल्प प्रयोग सूत्र है। वस्तुतः भगवत्पाद पाणिनी प्रणीत सूत्रों के परिशिष्ट रूप में गण पाठ, धातु पाठ, उणादि कृत सूत्र, लिंगानुशासन आदि सूत्रों के अनेक रूप में होने के कारण इनकी पृथक् रूप से गणना नहीं हो सकती है। इसी प्रकार शुल्ब सूत्र भी कल्प सूत्रों के अंग हैं, ऐसा माना जा सकता है। शुल्ब वस्तुतः यज्ञ कर्म में कुण्ड निर्माण के प्रसंग में नापने के काम आने वाली रज्जू या रस्सी है। वस्तुत यह क्षेत्रगणित कहा जा सकता है। हेमचन्द्र के अनुसार शुल्ब शब्द (ताम्रे यज्ञकर्मणाचारे जलसन्निधौ) का चार रूपों में प्रयोग बताया गया है। इस शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से गत्यर्थक शल्य धातु से "उल्बादयश्च" (4.95) इस औणादिक सूत्र से शुल्ब शब्द ताम्र अर्थ में निपातित होता है।

बोधायन शुल्ब सूत्र कृष्ण यजुर्वेद की तैतरीय शाखा से सम्बद्ध है। बाधूल शुल्ब सूत्र सम्प्रति उपलब्ध होता है। यज्ञों का यथा समय सम्पादन करने हेतु आर्यों ने जिस प्रकार ज्योतिष शास्त्र को प्राप्त किया है उसी प्रकार यज्ञ वेदि के आकार, स्वरूप तथा आकार-स्वरूप के निर्धारण के लिए ज्यामिति और बीजगणित का भी आविष्कार किया। बोधायन शुल्ब सूत्र की शुल्बदीपिका नामक द्वारिकानाथ यज्वाकृत व्याख्या थीबो ने

सम्पादित करके पण्डित पत्रिका में प्रकाशित किया था। आंग्ल भाषा अनुवाद भी उन्होंने इस ग्रन्थ का किया था। बोधायन शुल्ब सूत्र निर्विवाद रूप में भारतीय प्रतिभा का द्योतक है।

श्रौतसूत्रों में यज्ञ से सम्बन्धित कर्मकाण्ड का विशद रूप से वर्णन मिलता है। श्रौत सूत्र यज्ञानुष्ठानों का काल, प्रकार, प्रक्रिया और विषय-वस्तु आदि का क्रमबद्ध निरूपण करते हैं। शुल्ब सूत्र श्रौत सूत्र के परिशिष्ट रूप में निबद्ध हैं।

बोधायन, मानव, आपस्तम्ब का चयन शुल्ब सूत्रों का हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत करने वाले डॉ. रघुनाथ पुरुषोत्तम कुलकर्णी ने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक अनेक आकृतियों और पारिभाषिक पदों के स्पष्टीकरण के द्वारा विषय की स्थापना की है। शुल्ब सूत्रों में उपलब्ध विषयों का ज्ञान कराया है। श्री डॉ. कुलकर्णी स्थापत्य शास्त्र के विशेषज्ञ हैं, इनका विवेचन प्रामाणिक है। मुझे विश्वास है कि इनका यह ग्रन्थ विद्वानों में समादृत होगा।

वाचस्पति उपाध्याय

चार शुल्बसूत्र
अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

बौधायन शुल्बसूत्र

मानव शुल्बसूत्र

आपस्तम्ब शुल्बसूत्र

पटल तीन समाप्त

कात्यायन शुल्बसूत्र

प्रस्तावना

प्राथमिक

वेद केवल भारत के नहीं बल्कि समूचे संसार के साहित्य में विचार मूल्यों से सर्वश्रेष्ठ और प्राचीनत्व में आद्यस्थानीय हैं। वेद चार हैं: ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। वेदों की संहिताएं बाद में बनाई गयीं। तदनंतर 'ब्राह्मण' ग्रंथों की निर्मिती हुई। ब्राह्मण ग्रंथों में, याज्ञिक क्रियाअें संपन्न करते समय किस मंत्र का या मंत्रों का उच्चारण करना चाहिए, वह क्यों करना चाहिये आदि का स्पष्टीकरण और यज्ञ की स्तुति की गई है। प्रत्येक वेद शाखा का ब्राह्मण होता है। प्रत्येक शाखा के ब्राह्मण के अन्तिम अंश में आरण्यक होता है अथवा आरण्यक स्वतंत्र रूप में होता है। आरण्यकों में यज्ञ विषयक जानकारी दी गई है। कुछ समय के बाद यज्ञयागों का तन्त्र इतना बढ़ा और जटिल हुआ कि वह सब ध्यान में रखना मुश्किल हो गया। सब यज्ञों की जानकारी व्यवस्थित और अनुशासनबद्ध करने के लिये, यज्ञ की क्रिया और तभी उच्चारण के मंत्र ध्यान में रखने के उद्देश्य से 'सूत्र' ग्रंथों का निर्माण हुआ। सूत्र याने धागा, कोई भी सूचना, नियम, बहुत थोड़े शब्दों में देना यह भी सूत्र❖ का अर्थ है। जैसे अनेक तंतुओं से, ताने बाने से, वस्त्र निर्मित करते हैं वैसे अनेक सूत्रों से यज्ञ विषयक मंत्र, क्रिया इत्यादि की जानकारी एकत्रित देने वाले ग्रंथ को भी सूत्र ही कहते हैं। कोई भी विज्ञान एकत्रित और अनुशासन युक्त स्वरूप में लिखकर वह शास्त्र ध्यान में रखने के लिये सूत्र ग्रंथों की निर्मिति हुई। इस तरह के अनेक शास्त्रों के सूत्रात्मक ग्रंथ केवल भारत में ही लिखे गये हैं, वास्तव में यह पद्धति भारतीय साहित्य की विशेषता है। यज्ञविषयक सूत्रबद्ध ग्रंथ 'श्रौतसूत्र' कहलाते हैं।

वेदों के षडंगों++ में कल्पसूत्र नाम के वेदांग में श्रौतसूत्र का अंतर्भाव करते हैं। कल्प याने नियम अथवा सूचना। कल्पसूत्र के तीन प्रमुख भाग हैं: श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र। वेद् के प्रत्येक शाखा का कल्पसूत्र होता है। श्रौतसूत्रों में यज्ञयागों की गृह्यसूत्रों में संस्कारों की और धर्मसूत्रों में नीति की जानकारी सूत्ररूप में दी है।

❖ सूत्र शब्द की व्याख्या दी है-

''अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद्विश्वतो मुखम्।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥

++ शिक्षा, व्याकरण, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द ये वेदांग हैं।

सारणी 1

वेद	ऋग्वेद	यजुर्वेद		सामवेद	अथर्ववेद
		कृष्ण	शुक्ल		
शाखा	1 शाकल 2 बाष्कल 3 सांख्यायन 4 आश्वलायन 5 माण्डूक्य 6 कौषीतकी	1 तैत्तिरीय 2 मैत्रायणी 3 काठक 4 कपिस्थल	1 माध्यंदिन 2 काण्व (वाजसनेयी)	1 कौथुम 2 राणायणीय 3 जैमिनीय या तलवकार	1 शौनक 2 पिप्पलाद
ब्राह्मण	1 ऐतरेय 3 सांख्यायन 6 कौषीतकी	1 तैत्तिरीय 2 मैत्रायणी 3 काठक 4 कपिस्थल कठ ❖	शतपथ शतपथ	1 तांडय किंवा पंचविंश, षड्विंश, आर्षेय, आदि 3 जैमिनीय	1 गोपथ
आरण्यक	1 ऐतरेय 3 सांख्यायन	1 तैतिरीय 4 कपिस्थल – कठ	1 और 2 बृहदारण्यक	1 आरण्यक संहिता 2 आरण्यक गान 3 जैमिनीय	–
श्रौतसूत्र	3 सांख्यायन 4 आश्वलायन	1 बोधायन भारद्वाज, आपस्तंब, सत्याषाढ, हिरण्यकेशी, वाधुल, वैखानस 2 मानव या मैत्रायणी या मानव-मैत्रीयणी 3 काठक	1 और 2 कात्यायन	लाट्यायन आर्षेयकल्प, निदानसूत्रे 2 द्राह्मायण 3 जैमिनीय	1 वैतान
शुल्बसुत्र	–	1 बौधायन, आपस्तंब, सत्याषाढ, वाधुल, 2 मैत्रायणी वराह	1 और 2 कात्यायन		

❖ यह ब्राह्मण अलग न होकर संहिता में अंतर्भूत है।

★ हेमाद्रि के मत से मानव और मैत्रायणी श्रौतसूत्र अलग-अलग हैं। चरण व्यूह से मानव मैत्रायणी का ही भाग है।

टिप्पणी :- कोष्ठक में दिये अंक कौन सी शाखा का कौन सा ब्राह्मण आरण्यक आदि हैं यह ध्यान में आने के लिये दिये हैं। उदाहरण शाकल शाखा के ऋग्वेद का ब्राह्मण ऐतरेय है इत्यादि।

सारणी 1 में वेद, इनकी शाखाएं, प्रत्येक शाखा का ब्राह्मण, आरण्यक और श्रौतसूत्र की जानकारी दी है। इस सारणी में शुल्बसूत्रों का भी उल्लेख किया है। वास्तविकतः शुल्बसूत्र श्रौतसूत्र का ही एक भाग होता है, किन्तु यहाँ शुल्बसूत्रों का अध्ययन निर्दिष्ट है इसलिये उनका अलग उल्लेख किया है। यजुर्वेद शाखान्तर्गत श्रौतसूत्रों में शुल्बसूत्रों का अंतर्भाव होता है। वेदि, चिति, मंडप आदि का निर्माण करना यह यजुर्वेदि ब्राह्मणों का काम है, और शुल्बसूत्र इस विषय की जानकारी देते हैं इसलिये यजुर्वेद के श्रौतसूत्रों में शुल्बसूत्र समाविष्ट हैं। अन्य वेदों की शाखाओं के श्रौतसूत्रों में शुल्बसूत्र की जानकारी नहीं दी जाती।

शुल्बसूत्रों की सामान्य जानकारी

शुल्ब याने धागा, रस्सी। रस्सी की सहायता से तरह-तरह की वेदि, अग्निचिति, मंडप इत्यादियों का विन्यास करने की रीतियाँ सूत्ररूप में जहाँ दी हैं उसे शुल्बसूत्र कहते हैं।

अब तक आठ शुल्बसूत्रों की उपलब्धि ज्ञात है। कृष्ण यजुर्वेदान्तर्गत सात शुल्बसूत्र हैं: **बोधायन, आपस्तंब, सत्याषाढ, वाधुल, मानव, मैत्रीयणी** और **वराह** और **शुक्ल** यजुर्वेदान्तर्गत **कात्यायन शुल्बसूत्र** आठवाँ शुल्बसूत्र है।

बौधायन शुल्बसूत्र का अंतर्भाव तैत्तिरीय संहिता में किया है। वह उनका तीसवाँ प्रश्न है। आपस्तंब शुल्बसूत्र भी तैत्तिरीय संहिता में है। सत्याषाढ शुल्बसूत्र सत्याषाढ कल्पसूत्र में हो कर इन में और आपस्तंब शुल्बसूत्र में कोई भी फर्क नहीं है। मानव और मैत्रायणी शुल्बसूत्र मैत्रायणी संहिता के मानव श्रौतसूत्र के अंतर्गत दिये हैं, किन्तु वे दोनों एक जैसे ही हैं। सत्यप्रकाश (1965) के अनुसार वाधुल शुल्बसूत्र उपलब्ध है परंतु काशीकर (1966) के मत से वाधुल श्रौतसूत्र में यह शुल्बसूत्र प्राप्त नहीं होता। इस शुल्बसूत्र के विषय में अधिक जानकारी नहीं है। कात्यायन शुल्वसूत्र वाजसनेयी संहिता के कात्यायन श्रौतसूत्रान्तर्गत एक परिशिष्ट है।

इन शुल्बसूत्रों में **बौधायन शुल्बसूत्र** सबसे बड़ा है, वह व्यवस्थित लिखा हुआ है और सबसे प्राचीन है। मानव शुल्बसूत्र विस्तार में क्रमांक

दो पर आता है मगर यह कुछ कम अनुशासित होने के साथ तनिक क्लिष्ट भी है। यह अन्य शुल्बसूत्रों जैसा सूत्ररूप न होकर गद्यपद्य मिश्रित है। आपस्तंब शुल्बसूत्र में दिये गए अधिकांश सूत्र बौधायन शुल्बसूत्र में प्रदत्त सूत्र जैसे हैं। इन में जिन शुल्बसूत्रों में भूमिति की जानकारी है वे सूत्र दोनों शुल्बसूत्रों में एक ही हैं। किन्तु आपस्तंब शुल्बसूत्र के अनुसार अग्निचितियों की रचना, ईंटों की व्यवस्था आदि भाग बौधायन शुल्बसूत्र के सूत्रों से भिन्न हैं। मानव, मैत्रायणी और वराह शुल्बसूत्र एक जैसे ही हैं। कात्यायन शुल्बसूत्र सबसे छोटा और काल की दृष्टि में अर्वाचीन है। इस में प्रमुखत: भूमिति की जानकारी है। वेदि अग्निचिति अदि का विन्यास और ईंटों की रचना के विषय में कोई जानकारी नहीं दी गई है। किन्तु अग्निचिति की रचना के लिये उपयोगी भूमिति की जानकारी दी है। +

इन शुल्बसूत्रों पर अनेक टीकाएं हैं। बौधायन, आपस्तंब और कात्यायन शुल्बसूत्र अधिक महत्वपूर्ण होगें ऐसा लगता है, क्योंकि इन पर सबसे अधिक टीका ग्रंथ हैं। इन टीकाओं की जानकारी सारणी 2 में दी है।

सारणी 2

शुल्बसूत्र	टीका	टीकाकार
बौधायन	शुल्बदीपिका शुल्बमीमांसा	द्वारकानाथ यज्व व्यंकटेश्वर दीक्षित
आपस्तंब	शुल्बव्याख्या शुल्बप्रदीपिका शुल्बप्रदीप	कपार्दि स्वामी करविंद स्वामी सुंदरराज माधव
मानव	–	शिवदास
मैत्रायणी	–	शंकर
कात्यायन	– शुल्बसूत्रवृत्ति शुल्बसूत्रविवरण – – –	कर्क रामचन्द्र वाजपेयी महीधर सोमसुत गंगाधर पाठक विद्याधर गौड

\+ ऊपर दिये हुए शुल्बसूत्रों में बौधायन, मानव, आपस्तंब और कात्यायन शुल्बसूत्र प्रमुख हैं और अन्य शुल्बसूत्र कुछ भेद से इन शुल्बसूत्रों जैसे ही हैं, इसलिये हिन्दी अनुवाद के लिये इन चार शुल्बसूत्रों को चुना है।

आधुनिक टीकाकारों में प्रो. थीबो ने बौधायन शुल्बसूत्र का अंग्रेजी में अनुवाद किया है। सत्यप्रकाश और डॉ. जे.एम. फॉन खेल्डर ने अनुक्रम से आपस्तंब और मानव शुल्बसूत्रों का अंग्रेजी अनुवाद किया है।

शुल्बसूत्रों का काल

शुल्बसूत्रों का निश्चित काल किसी भी विद्वान ने नहीं दिया। शुल्बसूत्र श्रौतसूत्रों का ही एक भाग होता है, इसलिये दोनों के काल एक ही होने चाहिए। किन्तु श्रौतसूत्रों का भी निश्चित काल ज्ञात नहीं है। श्रौतसूत्र के तौलनिक अध्ययन से कौन सा शुल्बसूत्र सबसे प्रथम निर्मित हुआ और कौन सा बाद में इस विषय में कुछ कहा जा सकता है। काशीकर (1966) के मत से विभिन्न शुल्बसूत्रों का काल होगा: बौधायन, वाधुल ख्रि. पू. 800–500 वर्ष; मानव, आपस्तंब ख्रि. पू. 650–300 वर्ष, सत्याषाढ, कात्यायन, वराह ख्रि. पू. 300 इ.स. 400 वर्ष। ऋग्वेद का काल ख्रि. पू. 3000 का ऐसी मान्यता लेकर सत्यप्रकाश (1965) ने शुल्बसूत्रों के काल अलग से दिये हैं: बौधायन ख्रि. पू. 800 वर्ष; मानव ख्रि. पू. 750 वर्ष, आपस्तंब ख्रि. पू. 600 वर्ष और कात्यायन ख्रि. पू. 200 वर्ष।

शुल्बसूत्रों के निर्मिति स्थल

इस मुद्दे पर बहुत जानकारी प्राप्त नहीं होती। परन्तु यज्ञ आदि कर्मकाण्ड के निर्माता आर्य थे इसलिये बहुतांश शुल्बसूत्रों के लेखक उत्तर भारतीय होंगे। बौधायन और आपस्तंब उत्तर भारतीय थे। मानव और आपस्तंब शुल्बसूत्रों में बहुत साम्य है अत: मानव शुल्बसूत्रकार भी उत्तर भारतीय होंगे। वराह, मैत्रायण तथा कात्यायन उत्तर भारतीय होंगे। सत्याषाढ श्रौतसूत्र के अनुसार महाराष्ट्र में कोंकणवासी और अन्य भागों के लोग यज्ञयाग करते हैं। प्राचीन काल में तमिलनाडु तथा केरला के लोग इस श्रौतसूत्र के अनुसार यज्ञयाग करते थे। इससे तथा अन्य कतिपय तथ्यों से ऐसा अनुमान है कि सत्याषाढ श्रौतसूत्रकार दक्षिण भारतीय होंगे।

शुल्बसूत्र का विषय

शुल्बसूत्रों में प्रमुखतः यज्ञ कार्य के लिये वेदि, अग्निचिति आदि की नापतौल, विन्यास की अनेक पद्धतियाँ, इनकी निर्मिति के लिये ईंटों की रचना आदि की जानकारी दी है। अंगुल, पुरुष आदि परिमाण, इनका परस्पर सम्बंध, वेदि, चिति, मंडप के विन्यास के लिये साधन, जैसे की रस्सी, बांस, शंकू (खूंटियाँ), भूमिति के सिद्धान्त, अनेक भौमितिक कृतियाँ, ईंटों के आकार, संख्या, अग्निचिति निर्माण के नियम आदि जानकारी वहाँ दी गई है।

शुल्बसूत्र में दी हुई भूमिति के ज्ञानसंबंध की जानकारी कुछ उदाहरणों से नीचे स्पष्ट की है।

अग्निहोत्री के घर में तीन अग्नि नित्यस्वरूप होते हैं। ये तीन अग्नि कुंड हैं: गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि। गार्हपत्य वृत्ताकार, आहवनीय वर्गाकार और दक्षिणाग्नि अर्धचन्द्रकार यानि अर्धवृत्ताकार होते हैं। तीनों अग्निकुंड के क्षेत्रफल एक ही होने चाहिये। वृत्त, वर्ग और अर्धवृत्तों का विन्यास जमीन पर किस तरह करें इसकी जानकारी तो यहाँ दी है, किन्तु वर्ग के समक्षेत्र वृत्त और अर्धवृत्त या वृत्त के समक्षेत्र वर्ग के विन्यास के लिये वर्ग की भुजा और वृत्त की त्रिज्या का सम्बंध इसकी भी जानकारी शुल्बसूत्र देते हैं।

वेदि का जमीन पर विन्यास करते समय वेदि के पूर्व और पश्चिम की तरफ होने वाली भुजाएं परस्पर को समांतर होनी चाहिये। इसलिये पूर्व और पश्चिम की तरफ होने वाली भुजाएं वेदि के मध्य भाग से जाने वाली सममिति अक्ष रेखा को समकोण में होनी चाहिये। इसके लिये जमीन पर समकोण के विन्यास की जानकारी आवश्यक है। पायथागोरस के बहुत प्रसिद्ध सिद्धान्त की जानकारी शुल्बसूत्र में पाई जाती है। इस सिद्धान्त का प्रथम उल्लेख बौधायन शुल्बसूत्र में किया है, इसलिये उसे बोधायन सिद्धान्त कहना चाहिये। शुल्बसूत्र के अध्ययन के बल पर,

श्रौतसूत्र काल में, भारतीयों के भूमिति विषयक ज्ञान की उन्नत अवस्था का परिचय प्राप्त होता है।

श्रौतसूत्र में तरह तरह के यज्ञ करने की, प्रत्येक क्रिया करते समय किन मंत्रों का पठण आवश्यक है आदि की जानकारी दी है। यज्ञविषयक कला श्रौतसूत्र में दी है और यज्ञ के लिये वेदि, चिति, मंडप की निर्मिति का शास्त्र शुल्बसूत्र में दिया गया है। श्रौतसूत्रकारों के मत से यज्ञ में दी जाने वाली आहुति जैसी क्रियाएं और उनके साथ उच्चारण करने वाले मंत्रों का महत्व अधिक होने के कारण, श्रौतसूत्रों में सबसे अखिरी प्रकरण में अथवा परिशिष्ट के स्वरूप में शुल्बसूत्र का शास्त्रीय विभाग दिया गया है। किन्तु आज के विज्ञान युग में भूमिति शास्त्र महत्वपूर्ण माना जाता है इसलिये अब श्रौतसूत्र के शुल्बसूत्र का अध्ययन आवश्यक माना गया है न कि यज्ञ क्रियाओं का और मंत्रों का। भारतीय गणित के इतिहास के अध्येताओं के लिये शुल्बसूत्र का अध्ययन अनिवार्य हो उठा है।

प्रत्येक शुल्बसूत्र में दिये गये विषयों की संक्षिप्त जानकारी

बोधायन शुल्बसूत्र :- बोधायन शुल्बसूत्र तीन अध्यायों में बांटा हुआ है। **प्रो. थीबो** ने इनके दस अध्याय किये हैं और प्रत्येक अध्याय के सूत्रों को क्रमांक दिये हैं। प्रस्तुत हिंदी अनुवाद में अध्यायों की संख्या और सुत्रों के क्रमांक **प्रो. थीबो** के अनुसार लिये हैं।

बोधायन शुल्बसूत्र के प्रथम अध्याय में लंबाई ईकाई का नाप और उसका लम्बाई के इतर परिमाणों से सम्बंध, भूमिति विषयक आवश्यक जानकारी, तथा **आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि** और **उत्कर** आदि का नाप, इन में होने वाले अंतर और विन्यास की पद्धतियाँ दी हैं। मंडप, वेदि का नाप, आकार और विन्यास की योजना आदि की जानकारी भी इस अध्याय में दी है।

अध्याय दो में **अग्निचिति** का आकार देकर इसके क्षेत्रफल के विषय में अनेक आचार्यों के मत प्रदर्शित किये हैं और निश्चित किया

है कि अग्निचिति का आकार पंख होने वाले पंछी के समान और क्षेत्रफल 7½ वर्ग पुरुष (लगभग 40 वर्ग मीटर) होना चाहिये। अग्निचिति के निर्माण के लिये ईंटों की वैशिष्टि और ईंटें चिनने के नियम दिये हैं।

अध्याय तीन में दो अलग प्रकार के वर्गाकृति श्येनचिति का नाप, ईंटों के आकार और नाप और अलग-अलग तहों में ईंटों की व्यवस्था की जानकारी दी है।

अध्याय चार में श्येन पंछी के आकार के समान अग्निचिति के शरीर, मस्तक, दोनों पंख और पुच्छ के नाप, आकार, क्षेत्रफल, ईंटों के आकार, नाप और रचना के विषय में जानकारी दी है। कंक, अलज पंछियों के आकार की अग्निचिति तथा त्रिभुजाकार (प्रउग) और समभुज चतुर्भुज (उभयतः प्रउग) का नाप, विन्यास, ईंटों की रचना आदि जानकारी दी है।

अध्याय पांच में दो प्रकार के रथचक्र के आकार की अग्निचिति की जानकारी दी है। प्रथम प्रकार का रथचक्र घना होता है और अन्य प्रकार की रथचक्रचिति को नाभि, आरा और नेमि होते हैं।

छठवें और सातवें अध्याय में वर्गाकृति और वृत्ताकार द्रोणचिति का वर्णन है। आठवें अध्याय में श्मशानचिति की और नौवें और दसवें अध्यायों में वक्रांग और वृत्ताकार कूर्मचितियों की जानकारी दी है। दसवें अध्याय के शेष भाग में काम्य अग्निचिति में ईंटें चिनते समय गिली मिटटी की रचना कैसी होनी चाहिये इसकी जानकारी दी हैं।

मानव शुल्बसूत्र :- मानव शुल्बसुत्र का अंग्रेजी अनुवाद डॉ. खेल्डर ने किया है और इस में दिये हुये अध्याय और सूत्र क्रमांक हिंदी अनुवाद में वैसे ही रखे हैं।

इस शुल्बसूत्र के तीन प्रमुख विभाग हैं:- शुल्ब, उत्तरेष्टक और वैष्णव। इस शुल्बसूत्र में प्रथम भूमिति की जानकारी और तदनंतर अग्निचिति, मंडप, वेदि, आदि का विन्यास की जानकारी ऐसी बौधायन

शुल्बसूत्र जैसी, क्रम से जानकारी नहीं दी है। वेदि आदि के विन्यास की जानकारी देते समय भूमिति के ज्ञान पर आवश्यकतानुसार प्रकाश डाला गया है।

प्रथम गार्हपत्य अग्नि, तरह-तरह की वेदियाँ और मंडपों का नाप, आकार, परस्पर से अंतर और विन्यास की जानकारी दी है। तदनंतर वर्गाकृति श्येनचिति का विन्यास, ईंटों का नाप और रचना दी है।

लम्बाई के नाप के परस्पर संबंध और भूमिति विषयक ज्ञान, वर्ग का समक्षेत्र वृत्त खींचना, $\sqrt{2}$ की व्याख्या, आदि भाग दिया है।

श्येन, कंक, अलज अग्निचितियों का विन्यास, ईंटों की रचना का तपशील तथा काम्य चितियों का (प्रउग, उभयतः प्रउग, श्मशान और द्रोण) वर्णन दिये है। 7½ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल के रथचक्रचिति का विन्यास, ईंटों की रचना और 21½ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल के रथचक्रचिति का विन्यास आदि जानकारी दी है।

आपस्तंब शुल्बसूत्र :- यह शुल्बसूत्र पटल, खण्ड और सूत्रों में विभाजित किया गया है। पांच पटल और 21 खंड हैं। प्रथम पटल में एक से तीन खण्ड, दूसरे में खंड चार और पांच, तीसरे में छः से दस तक, चौथे पटल में 11 से 14 तक और पांचवें पटल में 15 से 21 तक खण्ड अंतर्भूत होते हैं। इस शुल्बसूत्र के हिंदी अनुवाद में मैसूर विद्यापीठ के प्राच्य वाचनालय की प्रकाशन माला क्र. 71 (1931) में दी हुई पटल और खंडों की योजना मान्य की गई है।

प्रथम तीन खण्डों में यानि प्रथम पटल में भूमिति की जानकारी दी है। चौथे से छठवें खण्डों में गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि और उत्कर का नाप, परस्परों की दूरी और विन्यास की रीति दी गई है। सातवें खण्ड में गार्हपत्य अग्नि, धिष्ण्या आदि के ईंटों की रचना कही है। आठवें खण्ड में श्येनचिति का आकार नाप, अग्निचिति के क्षेत्रफल की जानकारी और अग्निचिति का क्षेत्रफल एक वर्ग पुरुष से बढ़ाने की

पद्धति दी है। नौ से ग्यारह तक के खंडों में वर्गाकार श्येनचिति का नाप, ईंटों की व्यवस्था और श्येनचिति के विन्यास की जानकारी दी है।

12, 13 और 14 खण्डों में प्रउग, उभयतः प्रउग, रथचक्र, द्रोण और श्मशान चितियों का नाप, विन्यास और ईंटों की रचना के विषय में जानकारी दी है।

खण्ड 15 से लेकर खण्ड 20 तक पंछी के आकार के श्येनचिति के दो प्रकार दिये हैं। इनका विन्यास, नाप, आदि जानकारी भी है। खण्ड 21 में कंकचिति और अलजचिति की संक्षेप में जानकारी दी है। इस खण्ड में अश्वमेधीय अग्निचिति के विषय में कतिपय सूचनाएं दी हैं।

कात्यायन शुल्बसूत्र :- यह शुल्बसूत्र कण्डिका और सूत्रों में विभाजित किया गया है। सब मिलकर छः कडिकाएं हैं।

कण्डिका एक में शंकु और सूर्यप्रकाश की सहायता से दिशाएँ निश्चित करने की पद्धति दी है। भौमितिक शब्दों की (निरञ्छन, अक्ष्णया, करणी आदि) व्याख्या करने के बाद वर्ग, आयत, त्रिभुज, आदि भौमितिक सरलाकृतियों का विन्यास करने की पद्धतियाँ वर्णित है। गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि और उत्कर का नाप, इन में होने वाले अंतर और विन्यास की जानकारी दी है।

कण्डिका दो में तरह-तरह की उत्तर वेदियों की नापें और इनके विन्यास की रीतियाँ दी हैं। प्रमाण वर्ग के एक तिहाई क्षेत्रफल का वर्ग खींचने की पद्धति दी है।

काण्डिका तीन में समक्षेत्र या असमान क्षेत्रफलों के वर्गों का योग अथवा व्यवकलन इतने क्षेत्रफल का वर्ग खींचने की पद्धतियाँ दी है। वर्ग की भुजा और समक्षेत्र वृत्त की त्रिज्या का संबंध भी दिया है।

कण्डिका चार में प्रउग, उभयतः प्रउग और रथचक्र नामक काम्य चितियों के विन्यास के लिये आवश्यक भूमिति की जानकारी दी है।

कण्डिका पांच और छः में 7½ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल के वर्ग का क्षेत्रफल एक वर्ग पुरुष से वृद्धि करने की छः पद्धतियाँ दी हैं। ग्यारह यूपों की (एकादशिनि) वेदि और शिखण्डिनि वेदि का नाप और यूपों की व्यवस्था का वर्णन किया है।

कात्यायन शुल्बसूत्र का अन्य शुल्बसूत्रों से अपनी ऐसी विशेषता यह है कि सूत्रकार भौमितिक नियम को व्यापक स्वरूप देते हैं। उदा. वर्ग की भुजाओं की लम्बाई दुगुनी या तिगुनी करने से वर्ग का क्षेत्रफल चार गुना और नौ गुना होता है। वर्ग की भुजाओं की लम्बाई $\frac{1}{2}$ या $\frac{1}{3}$ करने से वर्ग का क्षेत्रफल ¼ और 1/9 होता है। यह जानकारी प्रथम देकर सूत्रकार सर्वसामान्य नियम देते हैं कि जिस अनुपात में वर्ग की भुजाओं की लम्बाई अधिक या कम करते हैं इसके वर्ग के अनुपात में क्षेत्रफल अधिक या कम होता है।

त्रिभुज का समक्षेत्र वर्ग बनाने की रीति दी है। बाद में जिस आकृति तीन या पांच त्रिभुजाओं से बनी है। (सूत्र 4.7 और 10), अथवा कितने ही लम्बाई का समद्विभुज समलंब चतुर्भुज हो (सूत्र 4.11) इसके समक्षेत्र वर्ग खींचने का सर्वसामान्य नियम सूत्रकार देते हैं।

कात्यायन शुल्बसूत्र की दूसरी विशेषता यह है कि प्रथम अग्निचिति का क्षेत्रफल (7½ वर्ग पुरुष) एक वर्ग पुरुष से बढ़ाने की (8½ वर्ग पुरुष बनाने की) पांच रीतियाँ (सूत्र 5.4, 5, 7, 10 और 6.3) दी हैं और 101½ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल के वर्ग के भुजाओं की लम्बाई प्राप्त करने की रीति सूत्रकार ने दी है।

सूत्र 6.3 में अनके समक्षेत्र वर्गों के क्षेत्रफलों के योग इतने क्षेत्रफल का एक ही बड़ा वर्ग खींचने की पद्धति दी है, जिस का उल्लेख अन्य किसी भी शुल्बसूत्र में नहीं है।

वेदि, अग्निचिति और मण्डप की जानकारी

अग्निः- यज्ञ की हव्यद्रव्य की आहुति अग्नि में दी जाती है।

अग्नि तीन है: गार्हपत्य आहवनीय और दक्षिणाग्नि। कोई भी यज्ञ हों, इनके लिये तीन अग्नि अनिवार्य हैं। अलग-अलग यज्ञों में ऋत्विजों की संख्या कम अधिक होती हैं। इनकी संख्या के अनुसार अग्नियों की संख्या कम अधिक होती है। ऋत्विज के अग्नि को धिष्ण्या कहते हैं। यज्ञ का अपना अग्नि होता है, उस की स्थापना वेदि पर करते हैं। (आकृति 1)

गार्हपत्य अग्नि :- यह वृत्ताकार होता है। प्राग्वंश मंडप के पश्चिम के द्वार के पास इसका स्थान होता है। इसका क्षेत्रफल 576 वर्ग अंगुल होता है। अग्निचिति के सहित सोमयज्ञ (सचितिक सोम) में गार्हपत्य अग्नि ईंटों से बनाते हैं। इस वृत्ताकृति अग्नि क़ा व्यास 96 अंगुल (आ.शु.सू. 7.13) (1.824 मी) रखते है।

आहवनीय अग्नि:- यह वर्गाकृति होता है और प्राग्वंश मंडप के पूर्व द्वार के पास इसका स्थान होता है। इस अग्नि के वर्ग की भुजाएं 24 अंगुल लंबी होती हैं। सचितिक सोम यज्ञ में आहवनीय अग्नि ईंटों से बनाते हैं। वर्गाकार आहवनीय की भुजा 96 अंगुल लंबी होती है। यह अग्नि वर्गाकृति या आयताकार ईंटों से चिनते हैं (बौ. शु. सू. 2.62-67).

दक्षिणाग्नि :- यह अग्नि दार्शिकि वेदि के दक्षिण की तरफ होता है। यह अर्ध चंद्राकार होता है और उसका क्षेत्रफल 576 वर्ग अंगुल रखते है।

धिष्ण्या :- यज्ञ में ऋत्विजों के होम हवन कार्य के लिये अग्नि होते है; उन्हें धिष्ण्या कहते हैं। ये वृत्ताकार या वर्गाकार होते हैं। बौधायन शुल्बसूत्र में अग्निध्र, होता इत्यादि ऋत्विजों के अग्नि, याने धिष्ण्या, उल्लेखित हैं। सचितिक सोमयज्ञ में धिष्ण्या ईंटों से बनाते हैं। सदस में इसके पूर्वार्ध से दो प्रक्रम अंतर छोड़कर दो प्रादेश व्यास की धिष्ण्याऐं चिनते हैं। दो धिष्ण्याओं में दो प्रादेश का अंतर रखते हैं (आकृति 1) मानव शुल्बसूत्र में रत्नी के लिये धिष्ण्या रचने को कहा है। यह अग्नि

राजपुरुषों के लिये होता है। वह वर्गाकार या वृत्ताकृति होता है। इसका घनफल एक घन अरत्नि होता है।

वेदिः- वेदि के तीन प्रमुख प्रकार होते हैं। यजमान की वेदि प्राग्वंश मण्डप में होती है। इसे दार्शिकि वेदि भी कहते है क्योंकि दर्शपूर्णमास यज्ञ में इसका उपयोजन करते हैं। उत्तर वेदि यज्ञक्षेत्र के पूर्व की ओर होती है और तीसरी महावेदि। सारणी 3 में सब वेदियों के नाप दिये हैं।

यजमान वेदिः- इस वेदि का नाप और आकार यज्ञ के प्रकार के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। दर्शपूर्णमास की वेदि की प्राची (सममिति पूर्व-पश्चिम अक्ष) 96 अंगुल (182.4 सें.मी), पश्चिम की भुजा 64 अंगुल (121.6 सें.मी) और पूर्व की भुजा 48 अंगुल (91.2 सें.मी) रखते हैं। प्राची, पश्चिम और पूर्व भुजाओं का अनुपात है $1 : \frac{2}{3} : \frac{1}{2}$ । यह वेदि समद्विभुज समलंब चतुर्भुज के आकार की होती है; किन्तु इनकी भुजाऐं सरल रेखा से न बनाकर वृत्तखंडों से बनाते है। इसका पश्चिम (पाश्चात) भाग चौड़ा और पूर्व भाग चौड़ाई में कुछ कम होकर लंबाई के मध्य भाग में इसकी चौड़ाई सबसे कम होती है, इसलिये यह वेदि स्त्री जैसी दिखायी देती है।

पशुबन्ध यज्ञ की वेदिः- इस वेदि का नाप रथ के नाप जैसा होता है। इस वेदि की पूर्व भुजा रथ की अक्ष जैसी 104 अंगुल (197.6 सें.मी) और प्राची रथ की ईषा समान 188 अंगुल (357.2 सें. मी.) लंबी होती है। इस वेदि की अन्य नापें सारणी 3 में दी हैं।

पैतृकी वेदिः- चातुर्मास्य यज्ञ में पैतृकी वेदि, यजमान वेदि होती है। वह वर्गाकार होकर इसके सिरे मुख्य दिशाओं की ओर होते हैं। इसके भुजाओं की लंबाई 120 या 92 अंगुल रखते हैं।

उत्तर वेदि :- इस वेदि के छः प्रकार होते हैं। यज्ञ के अनुसार उत्तरवेदि का नाप भिन्न होता है। इस वर्गाकार वेदि के प्रकार हैः-

1. शम्यावेदि (32x32 अंगुल)
2. वितृतीया (महावेदि के $\frac{1}{3}$ क्षेत्रफल की)
3. अपरिमिता
4. युगमात्री (86x86 अंगुल),
5. दशपदा (10 वर्गपद क्षेत्रफल की), और
6. चालीस वर्गपद क्षेत्रफल की

बहुतांश यज्ञों में उत्तर वेदि 32 x 32 अंगुलों की होती है। पितृमेध यज्ञ की उत्तरवेदि वितृतीया होती है। सोमयज्ञ की उत्तरवेदि आपस्तंब शुल्बसूत्र से दशपदा प्रकार की होती है।

महावेदि :- सोम यज्ञ में महावेदि की प्राची 36 पद या प्रक्रम (10.26 मी. या 20.42 मी.), पश्चिम भुजा 30 पद या प्रक्रम (8.55 या 17.10 मी.), और पूर्व भुजा 24 पद या प्रक्रम (6.84 या 13.68 मी) लंबी होती है। वेदि के पूर्व की तरफ एक पद (15 अंगुल) दूरी पर यूप रखते हैं। महावेदि की पश्चिम भुजा आहवनीय अग्नि के केंन्द्र से छः प्रक्रम (180 अंगुल, 3.42 मी.) दूरी पर रखते हैं। महावेदि की प्राची, प्राग्वंश मंडप की प्राची और आहवनीय और गार्हपत्य अग्नियों के केन्द्र बिन्दु जोड़ने वाली रेखा एक ही सरल रेखा में होती है (आकृति 1).

शिखंडिनी वेदि :- महावेदि का प्रकार है। महावेदि की उपर्युक्त नापें इसके पूर्व की तरफ जब एक ही यूप रखते हैं तभी लेते हैं। जब महावेदि के पूर्व की ओर ग्यारह यूंप हों तो हर दो यूपों में 104 अंगुलों का अंतर रखते हैं। इस से महावेदि का नाप बढ़ता है। महावेदि का नाप प्रक्रम में लेते है; यह प्रक्रम 30 अंगुलों का होता है। किन्तु एकादशिनी वेदि के लिये प्रक्रम का नाप 50 अंगुल, 18 तिल (95.95 सें.मी., बौ. शु. सू. 1.107), या 50 अंगुल, 7 तिल (95.475 सें.मी., मा. शु. सू. 10.1.3.7) अथवा 48 अंगुल, 29 तिल (92.72 सें.मी., का. शु. सू. 6.9) रखने की सूचना शुल्बसूत्रों में देते है।

सौत्रामणि वेदि :- इस वेदि का क्षेत्रफल महावेदि के क्षेत्रफल के एक तिहाई रखते हैं। इस का क्षेत्रफल 324 वर्गपद हो कर इस के एक तिहाई क्षेत्र में ही आहुति देते हैं। इसकी प्राची 12 पद (3.42 मी.) पश्चिम भुजा 10 पद (2.85 मी.) और पूर्व भुजा 8 पद (2.28 मी.) लम्बी होती है।

मरुत् वेदि :- इसकी प्राची छः अरत्नि (144 अंगुल, 2.73 मी.) पश्चिम भुजा चार अरत्नि (96 अंगुल, 1.82 मी.) और पूर्व भुजा तीन अरत्नि (72 अंगुल, 1.37 मी.) रखते हैं। मानव शुल्बसूत्रकार के मत से इस वेदि का नाम और आकार पशुबन्ध यज्ञ की यजमान वेदि जैसी होती है।

वरुण वेदि:- चातुर्मास्य के वरुण प्रघास पर्व में यह वेदि निर्मित करते हैं। इसका नाप सारणी 3 में दिया है।

शामित्र वेदि :- इस पशुश्रपण के (खाटिक के) अग्नि का स्थान चात्वाल से (वेदि के पास होने वाला गड्ढ़ा) एक प्रक्रम (57 सेंमी) दूरी पर, उत्तर दिशा की तरफ होता है। यह वेदि वर्गाकार होकर इसकी प्रत्येक भुजा एक बाहू (= 42 अंगुल = 79.8 सें.मी) लम्बी होती हैं वेदि की ऊँचाई 1½ बाहू (63 अंगुल, 119.7 सें.मी.) रखते हैं (मा.श.सू. 10.3.1.9)।

अग्निचिति :- सोमयज्ञ में यजमान की कामना के अनुसार अलग-अलग आकार की अग्निचिति बनाते हैं। श्येनचिति, अलजचिति और कंकचिति उन पंछियों के आकार की होती हैं। जिसे स्वर्ग जीतने की कामना है ऐसे सोमयज्ञ करने वाले यजमान के लिये पंछी के आकार की चिति बनाते हैं। त्रिभुजाकार (प्रउग), समभुज चतुर्भुज (उभयतः प्रउग) के आकार की, द्रोण के आकर की, रथ के पहिये के आकार की वृत्ताकार, श्मशानचिति और कछुए के आकार की चिति (कूर्मचिति) ये अग्निचिति के आकार के अनुसार प्रकार होते हैं।

यजमान की अपने भाई बंधुओं का नाश होने की कामना हो तो सोमयज्ञ में प्रउग या उभयतः प्रउग चिति बनाते हैं।

द्रोणचिति वर्गाकार और वृत्ताकार ऐसी दो आकारों की होती हैं। खाने का कोई भी द्रव पदार्थ परोसने के लिये द्रोण इस्तेमाल करते हैं। इस द्रोण को हाथ से पकड़ने के लिये साधन होते है। जिसे बहुत अन्न प्राप्ति की कामना है। ऐसा यजमान सोमयज्ञ में द्रोणचिति बनाता है।

जिसे शत्रु जैसे भाईबंद होते है और उनका नाश करने की कामना हो तो यजमान रथचक्रचिति का प्रयोजन करता है।

श्मशानचिति, प्रेत दहन करने के लिये जो चौथरा होता है, इस के आकार की होती है, यानि सूचिस्तंभ छिन्नक जैसे (Frustrum of a pyramid)। जिस यजमान को पितृलोक में वृद्धि और आबादी होने की कामना है वह यज्ञ में श्मशानचिति पर हवन करता है।

कछुए के आकार की चिति दो प्रकार की होती है। वक्राङ्ग और वृताकार। जिस यजमान को ब्रह्म लोक जीतना है। वह कूर्मचिति चिनता है। इस चिति की जानकारी सिर्फ बौधायन शुल्बसूत्र में दी है। अन्य शुल्बसूत्रों में इस का उल्लेख भी नहीं है, इससे ऐसा अनुमान है कि यह चिति बनाने की प्रथा कालान्तर में नष्ट हो गई।

छंदचिति :- ईंटें चिनकर नहीं बनाते। काम्यचिति ईंटों से न बनाकर, ईंटें चिनते समय जिन मंत्रों का उपयोग करते हैं वे मन्त्र पढ़ते हैं और ईंटों से चिति रचने की चेष्टा करते हैं, ऐसी चिति को छंदचिति कहते है।

ईंटें चिनने के प्रकार होते हैं। एक प्रकार में चिति बनाते समय मध्य में मिट्टी की मात्रा ज्यादा रखते है, इससे चिति मध्य में ऊँचाई में अधिक होती है। कूर्मचिति इस पद्धति से चिनने से कूर्म की पीठ मध्य में मोटी होती है। ईंटें चिनने की इस पद्धति को 'समूह्य' कहते हैं। जिस यजमान को बहुत पशुओं की कामना हो वह चिति की रचना समूह्य पद्धति से करता है। द्रोणचिति में इससे व्योम पद्धति से ईंटें

चिनते है। द्रोणचिति में मध्य में मिट्टी की मात्रा कम रखते हैं, जिससे चिति मध्य में गहरी दिखाई देती है।

ईंटें प्रादक्षिण रीति से रखने की पद्धति को 'परिचाय्य' और अप्रादक्षिण्य (दाहिने से बाएं की तरफ) रीति से रखने की पद्धति को 'उपचाय्य' कहते हैं। जिस यजमान को गाँव पर स्वामित्व प्राप्त करने की कामना हो वह किसी भी एक पद्धति से ईंटों की चिनाई करता है।

पंछी के आकार की चिति

श्येन, कंक और अलजचिति उन पंछियों के आकार की होती है। श्येनचिति के दो प्रकार हैं। वर्गाकार श्येनचिति को 'चतुरस्त्र' श्येनमिति कहते हैं। अन्य प्रकार के श्येनचिति का आकार उडते श्येन पंछी की छाया जैसा होता है। चतुरस्त्र श्येन चिति के शरीर (आत्मा) पंख और पूंछ होते हैं और वे सब वर्गाकृति होते हैं। इस श्येनचिति को शीर्ष नहीं होता, मगर मानव शुल्बसूत्र में शीर्ष सहित श्येनचिति का वर्णन किया गया है। शीर्ष का आकार भी वर्गाकृति होता है। सब शुल्बसूत्रों के अनुसार आत्मा का क्षेत्रफल चार वर्ग पुरुष, एक पंख का $1\frac{1}{5}$ वर्ग पुरुष और पूंछ का क्षेत्रफल $1\frac{1}{10}$ वर्ग पुरुष होता है। ज़ब मिलकर $7\frac{1}{2}$ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल होता है। किन्तु शीर्ष सहित श्येनचिति का क्षेत्रफल $7\frac{3}{4}$ वर्ग पुरुष रखते हैं। इस श्येनचिति के शीर्ष का क्षेत्रफल $\frac{1}{4}$ वर्ग पुरुष होता है।

बौधायन और आपस्तम्ब शुल्बसूत्रों के अनुसार चतुरस्त्र श्येनचिति वर्गाकार ईंटों से चिनते हैं। अन्य प्रकार से यह चिति आयताकार ईंटों से भी चिनते हैं। मानव शुल्बसूत्र में चतुरस्त्र श्येनचिति के ईंटों के आकारानुसार तीन प्रकार दिये हैं। दो प्रकारों में वर्गाकार ईंटों का प्रयोग करते हैं और तीसरे प्रकार में आयताकृति ईंटों का।

बौधायन शुल्बसूत्र में सब चितियों के लिये दी गई ईंटों की रचना अधिक सुचारु होकर चिनाई में ईंटों की व्यवस्था के नियमों का पूर्णतया पालन किया है। ईंटें प्राची के दोनों ओर सम संख्या में और सममित

रखते हैं। प्रत्येक तह में ईंटों की संख्या 200 हैं और पांच तहों की चिति में ईंटों की संख्या 1000 होती हैं। पहली, तीसरी और पांचवी तह में होने वाली ईंटों की रचना एक जैसी है, और दूसरे और चौथे तह में होने वाली ईंटों की व्यवस्था से अलग है। बौधायन ने प्रत्येक तह की ईंटों की जोड़ एक के ऊपर दूसरा ऐसे नहीं आना चाहिये ये सावधानी बरती है। मानव शुल्बसूत्र में प्रत्येक तह में ईंटों की संख्या अलग-अलग है और तीनों प्रकारों में ईंटों की कुल संख्या भी अलग-अलग है। बौधायन ने ईंटों की व्यवस्था इतनी सुचारु पूर्ण की है, स्थापत्य दृष्टि से वह इतनी उचित है और ईंटों की रचना के सब नियमों का इतना पूर्णतया पालन करती है कि बाद में आने वाले आचार्यों को इसमें कोई सुधार करना मुश्किल हो गया।

अलग-अलग शुल्बसूत्रों में दी हुई श्येनचिति, कंक और अलजचिति की नापें सारणी 4 में दी हैं। कंकचिति, श्येन और अलजचिति से थोड़ी भिन्न होती है; इस में पूंछ के नीचे पंछी के पाँव दिखाए जाते हैं जो अन्य चितियों में नहीं दिखाते। श्येन, कंक और अलजचितियों में आत्मा की नाप एक ही चाहिये, ऐसा नियम आपस्तंब शुल्बसूत्र में (21.8) दिया है। किन्तु इस नियम का पालन अन्य आचार्य नहीं करते।

चितियों के विन्यास के लिये बौधायन शुल्बसूत्र में इनकी नापें दी हैं और आयत वर्ग इत्यादियों का विन्यास करने की भौमितिक पद्धतियाँ दी हैं। इस ज्ञान से चितियों का विन्यास करना अपेक्षित है। आपस्तंब शुल्बसूत्र में ऐसी सूचना स्पष्ट रूप में दी है। (21.13)। मानव शुल्बसूत्र में रस्सी की मदद से श्येनचिति का विन्यास करने की पूर्ण रीति दी है। अपेक्षा ऐसी है कि ऋत्विज को भूमिति का ज्ञान हो या न हो शुल्बसूत्र के कथनानुसार विन्यास करने का।

अग्निचिति रचना की पद्धति

वर्गाकृति श्येनचिति या कोई भी चिति ईंटों के पांच तहों से और मिट्टी के छः तहों से बनाते हैं। उपसद तीन दिन होंगे तो प्रथम दिन

पर ईंटों की दो तहों की रचना करने की और दूसरे दिन तीन तहों की। उपसद दिन छः होंगे तो हर एक दिन एक तह की रचना करते हैं। (पांच दिनों में पांच तहों की और छठे दिन पर मिट्टी की तह की रचना करते हैं। उपसद दिनों की संख्या बारह होंगी तो एक दिन मिट्टी की तह और दूसरे दिन ईंटों की ऐसी चिति काल क्रम से बनाते हैं। चिति की उँचाई यज्ञ की संख्या पर निर्भर होती है। प्रथम सोमयज्ञ की चिति की उँचाई घुटने तक (30 या 32 अंगुल) होती है। दूसरे और तीसरे सोमयज्ञ में चिति की उँचाई अनुक्रम से दो गुनी और तीन गुनी (60 या 64 अंगुल और 90 या 96 अंगुल) होनी चाहिए। प्रथम अग्निचिति एक हजार ईंटों की होती है, दूसरी दो हजार और तीसरी चिति तीन हजार ईंटों की बनाते हैं।

अग्निचिति विषयक सामान्य जानकारी

पहली बार रचना की हुई अग्निचिति का क्षेत्रफल 7½ वर्ग पुरुष होता है। अन्य कोई आचार्यों के मतानुसार प्रथम अग्नि का क्षेत्रफल 1½ वर्ग पुरुष होता है और उसे सिर्फ शरीर (आत्मा) होता है; पंख, पूंछ और शीर्ष नहीं होते हैं। किन्तु बौधायन और आपस्तंब शुल्बसूत्रों के अनुसार प्रथमं अग्निचिति श्येन पंछी के आकार की याने शरीर, पंख, पूंछ और शीर्ष सहित करनी चाहिये। अग्निचिति बनाने का एक नियम है कि बड़े क्षेत्रफल की अग्निचिति की रचना के बाद छोटे क्षेत्रफल की अग्निचिति बनाना अयोग्य है। श्येन पंछी है और अग्निचिति का आकार उड़ते श्येन पंछी की छाया जैसा होना चाहिये। इस उड़ते श्येन पंछी को पंख नहीं रखें तो वह नीचे गिर जाएगा। श्येन पंछी पंख और पूंछ बिना नहीं होता और 7½ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल से कम क्षेत्रफल के श्येनचिति में पंख और पूंछ नहीं रखते, इसलिये प्रथम अग्नि का क्षेत्रफल 7½ वर्ग पुरुष ही होना चाहिये। (बौ. शु. सू. 2.14-22) ऐसा निर्णय किया गया है।

कई आचार्यों के मतानुसार प्रउग इत्यादि काम्यचिति 1½ वर्ग पुरुष की बनाते हैं। ऐसा अनुमान है कि इस मत से बौधायन सहमत हैं, कारण उस ने ऐसे काम्यचिति की ईंटों के नापों के विषय में नियम दिया है कि वे अग्नि क्षेत्र के भुजाओं के 1/12 लंबाई के करें (बौ. शु. सू. 10.16-18)।

पहली बार रचना की हुई अग्निचिति का क्षेत्रफल 7½ वर्ग पुरुष होता है; द्वितीय, तृतीय इत्यादि अग्निचितियों के क्षेत्रफल की वृद्धि एक वर्ग पुरुष से करनी चाहिये, याने 8½, 9½ इत्यादि वर्ग पुरुष होनी चाहिये। इस क्रम से अग्निचिति का क्षेत्रफल 101½ वर्ग पुरुष तक बढ़ा सकते हैं। इस के बाद सोमयज्ञ करने के हों तो अग्निचिति का क्षेत्रफल 101½ वर्ग पुरुष ही रखें, इस में एक वर्ग पुरुष की वृद्धि नहीं की जाती, या अग्निचिति के बिना यज्ञ करें ऐसा नियम दिया है (बौ. शु. सू. 2.1-7)।

मण्डप

मण्डप बांस, तट्टी या कपड़े का बनाते हैं। सोमयज्ञ के लिए पांच मंडपों की आवश्यकता होती है:

1. प्राग्वंश मंडप,
2. उद्ग्वंश मंडप या सदस,
3. हविर्धान,
4. आग्निध्रीय, और
5. मार्जालीय मंडप

प्राग्वंश मंडप :- यज्ञ क्षेत्र के पश्चिम की तरफ यह मण्डप होता है। इसके छत का धरन स्वरूप बांस पूर्व-पश्चिम दिशाओं की तरफ होता है; बांस का अगला सिर पूर्व की तरफ रखते हैं इसलिये इस प्राग्वंश मंडप कहते हैं। इसकी पूर्व-पश्चिम लंबाई 16 प्रक्रम (480

अंगुल, 9.12 मी.) या 12 प्रक्रम (6.84 मी.) और दक्षिणोत्तर चौड़ाई 12 या 10 प्रक्रम (6.84 मी. या 5.70 मी.) रखते हैं। मानव शुल्बसूत्र के अनुसार यह मण्डप वर्गाकार है और इसके भुजाओं की लंबाई 10 अरत्नि (240 अंगुल, 4.56 मी.) होती है। प्राग्वंश मंडप की पूर्व सीमा महावेदि के पश्चिम भुजा से 90 अंगुल (1.71 मी.) दूरी पर रखते हैं।

उदग्वंश मंडप या सदस :- सदस यानी सभास्थान; यह यज्ञ के ऋत्विजों का प्रमुख कार्य स्थान होता है। इनकी धिष्ण्याएँ यहाँ होती हैं। यह मंडप प्राग्वंश मंडप के पूर्व की तरफ और महावेदि के पश्चिम भुजा के पास होता है। उसके छत का धरन उत्तर-दक्षिण रखते हैं और अगला सिर उत्तर की तरफ होने की वजह से इसे उदग्वंश मंडप कहते हैं। इसकी दक्षिणोत्तर लम्बाई 27 अरत्नि (648 अंगुल, 12.39 मी.) या 18 अरत्नि (432 अंगुल, 8.21 मी.) और पूर्व-पश्चिम चौड़ाई 10 पद (150 अंगुल, 2.85 मी.) या 10 प्रक्रम (300 अंगुल, 5.70 मी.) रखते हैं। यह नाप बौधायन शुल्बसूत्र के अनुसार है। आपस्तंब शुल्बसूत्र के अनुसार सदस की लंबाई 27 या 18 अरत्नि और चौड़ाई 9 अरत्नि (216 अंगुल, 4.90 मी.) होती है। मानव शुल्बसूत्र में दी हुई नापें आपस्तंब शुल्बसूत्र के अनुसार हैं। सदस की पश्चिम सीमा महावेदि की पश्चिम भुजा से 1 प्रक्रम (30 अंगुल, 57 सें.मी.) दूरी पर होती है। इसे पूर्व और पश्चिम की ओर दरवाजा रखते हैं। इस मंडप के पूर्व और पश्चिम की तरफ होने वाले खंभे ऊँचाई में छोटे होते हैं। इतने छोटे रखते हैं कि छत जमीन से 64 अंगुल ऊँचाई पर होगा। जिस यजमान को अच्छी वर्षा होने की अपेक्षा है इसके सोमयज्ञ में छत की ऊँचाई इसके नाभि तक (64 अंगुल) रखें ऐसा नियम दिया है।

हविर्धान मंडप :- सोम वल्ली और अन्य हव्यद्रव्य दो गाड़ियों में रखकर वे इस मंडप में खड़ी करते हैं। इन गाड़ियों को हविर्धान कहते हैं। इसलिए इस मंडप को भी हविर्धान कहते हैं। सदस के पूर्व सीमा से हविर्धान मंडप की पश्चिम सीमा 4 प्रक्रम (120 अंगुल, 2.28 मी.

दूरी पर होती है। यह मंडप वर्गाकार होकर इसकी भुजाओं की लंबाई 10 या 12 प्रक्रम होती है। हविर्धान मंडप की पूर्व सीमा से उत्तरवेदि 6½ प्रक्रम (195 अंगुल, 3.70 मी) दूरी पर होती है।

आग्निध्रीय और मार्जालीय मण्डप :- हविर्धान मंडप के उत्तर के तरफ आग्निध्रीय और दक्षिण की तरफ मार्जालीय मंडप होता है। इन मंडपों में एक धिष्ण्या होती है। आग्निध्रीय मंडप का दरवाजा दक्षिण की तरफ और मार्जालीय का उत्तर की तरफ रखते हैं। दोनों मंडप वर्गाकार होकर उनकी भुजाएँ 5 अरत्नि (120 अंगुल, 2.28 मी) लंबी होती हैं। मानव शुल्बसूत्र के अनुसार मार्जालीय मंडप नहीं होता है और आग्निध्रीय वर्गाकार मंडप की लंबाई 6 अरत्नि (144 अंगुल, 2.73 मी) होती है।

यज्ञ क्षेत्र में **चात्वाल** और **उपरव** होते हैं।

चात्वाल :- उत्तर वेदि के कुछ दूरी पर गड़ढा खोदते हैं। उत्तर वेदि के निर्मिति के लिये मिट्टी इस गड़ढे से लेते हैं। यह वर्गाकार होकर उसकी लंबाई एक शम्या (32 अंगुल, 60.8 सेंमी) या 36 अंगुल होती है।

उपरव :- हविर्धान मंडप में प्राची के दक्षिण की तरफ, प्राची के एक प्रक्रम दूरी पर उपरव के गड्ढे खोदते हैं। उपरव के गड्ढे 24 अंगुल लम्बाई के वर्गाकार के कोणों पर 12 अंगुल व्यास के खोदते हैं। वे जमीन के नीचे नाली से जोड़ते हैं। यह स्थान है जहाँ सोमवल्ली से सोमरस की निर्मिति करते हैं। मानव शुल्बसूत्र के अनुसार इन गड्ढों का व्यास 9 अंगुल भी रख सकते हैं।

शुल्बसूत्र में दी हुई भूमिति

विन्यास के लिये उपकरण :- वेदि, अग्निचिति, मंडप इत्यादियों का विन्यास करने के लिये भूमिति विषयक ज्ञान आवश्यक है। रस्सी, बांस और खूंटियों का इस्तेमाल मंडपादि के विन्यास के लिये करते हैं।

रस्सी शण, बल्बज, कुश या मुंज के घास की बनाते हैं। रस्सी तीन बलों से बनाते हैं। रस्सी हर समय नई बनानी चाहिये। वह पतली,

घास की सिरे इसके बाहर न होंगे ऐसी और लम्बाई में सर्वत्र एक जैसी मोटाई की होनी चाहिये। रस्सी के दोनों सिरों के पास ग़ाँठ चाहिये। वह ऐसी हो की इस की लम्बाई कम अधिक तनाव से कम ज्यादा न होने पाएँ।

महावेदि के विन्यास के लिये 214 अंगुल (4.06 मी) लम्बी रस्सी लगती है। मण्डप के विन्यास के लिये 18 अरत्नि (8.20 मी) लम्बी रस्सी बनाई जाती है। रस्सी को संस्कृत में 'शुल्ब' कहते हैं। और रस्सी की सहायता से अग्निचिति का दोषरहित विन्यास करने वाले को 'शुल्बविद्' कहते हैं।

अग्निचिति में श्येनचिति अपना महत्व रखती है। इसके निर्दोष विन्यास के लिये रस्सी के बदले बांस लेने को कहा है। बांस की लम्बाई कम ज्यादा होने की संभावना नहीं होती। मगर बांस की वैशिष्टि किसी भी शुल्बसूत्र में दी नहीं है। मानव शुल्बसूत्र में श्येनचिति का विन्यास बांस और रस्सी दोनों की सहायता से करने की पद्धति दी है।

दिशाएँ निश्चित करने की पद्धतियाँ

सब तरह की अग्निचिति पूर्वाभिमुख होती है। वैसे वेदि, मंडप अथवा चिति के विन्यास के लिये प्रथमतः उनकी 'प्राची' याने पूर्व-पश्चिम जाने वाली सममिति अक्ष पर होने वाली रेखा निश्चित करना अनिवार्य है। मंडप भी पूर्व की ओर धरन का सिर होने वाला, प्राग्वंश, उत्तर की तरफ सिर होने वाला, उदग्वंश ऐसे बनाते हैं। इसलिये दिशाओं का ज्ञान और दिशा निश्चित करने की रीतियाँ ज्ञात होनी चाहिये।

बौधायन और आपस्तंब शुल्बसूत्रों में दिशा निश्चिति का उल्लेख नहीं किया है। शायद ऋत्विज को इसका ज्ञान होता ही होगा ऐसी उनकी धारणा होगी। मानव शुल्बसूत्र और कात्यायन शुल्बसूत्र में इनकी कुछ जानकारी दी है। दिन में सूर्य की और रात में नक्षत्रों की सहायता से दिशाएँ निश्चित करते थे।

सूर्य की सहायता से दिशाएँ निश्चित करना:- इस रीति के लिये लकड़ी का अथवा हाथी दांत का शंकु बनाते हैं। शंकु रखने की जगह समतल करते हैं। शंकु आधी लंबाई तक जमीन में गढ़ते हैं। शंकु की जमीन के ऊपर जितनी लम्बाई हो उतनी लम्बी रस्सी लेकर और शंकु केन्द्र स्थान में लेकर जमीन पर वृत्त खींचते हैं। शंकु का अग्र नोकदार होता है। सूर्योदय से मध्यान्ह काल तक शंकु की छाया क्रमशः कम होने लगती है। शंकु के अग्र की छाया जहाँ वृत्त को स्पर्श करती है वहाँ खुंटी ठोकते हैं। यह पश्चिम दिशा की तरफ होती है। मध्यान्ह से शाम तक शंकु की छाया क्रमशः बढती जाती है। शंकु के नोकदार अग्र की छाया जहाँ वृत्त को स्पर्श करती है वहाँ दूसरी खुंटी रखते हैं। यह पूर्व दिशा दर्शाती है।

शंकु की वैशिष्टि कात्यायन शुल्बसूत्र के कर्क भाष्य में दी है। शंकु सर्वत्र सीधा होकर इसके लंबाई में होने वाला सममिति अक्ष शंकु के नीचे की तह को लंब रूप होना चाहिये। वह लकडी के अंतर्भाग से (दारू मध्यात्) तैयार करें। उसकी लम्बाई 24 अंगुल और नीचे के तह की परिधी छह अंगुल लें। शंकु ऐसा बनाना चाहिये कि नीचे के तह का मध्यबिंदु और ऊपर का नोकदार अग्र सममिति अक्ष पर होंगे।

सूर्य छः महीनों में कर्क वृत्त से मकर वृत्त तक 47^0, घूमता है। इसलिये ऊपर दिये हुए पद्धतियों से निश्चित की हुई पूर्व और पश्चिम दिशाएँ अचुक नहीं होती। मगर शुल्बसूत्र में दुरुस्ती का तरीका दिया नहीं है। शुल्बसूत्र काल में, सूर्य हर रोज एक ही स्थान से उदित नहीं होता यह जानकारी ज्ञात थी। कदाचित यह दुरुस्ती बहुत छोटी होने की वजह से उसका उल्लेख नहीं किया है।

नक्षत्रों से दिशाएं निश्चित करना:- कृत्तिका, श्रवण और पुष्य नक्षत्र अचूक पूर्व दिशा की तरफ उदित होती हैं (उस काल में) यह ज्ञात था। क्षितिज से एक युग (86 अंगुल, 1.63 मी) ऊँचाई पर जब नक्षत्र आता है तब इनकी सहायता से पूर्व दिशा निश्चित करते हैं। मानव

शुल्बसूत्र में कहा है कि चित्रा और स्वाती नक्षत्रों में जो अंतर है इसका मध्यबिंदु अचूक पूर्व दिशा दिखाता है।

शुल्बसूत्रों में नापों की जानकारी

शुल्बसूत्रों में अंगुल प्रमाण इकाई (Standard unit) मानी है। अन्य नाप इसके अनुपात से निश्चित करते हैं। मगर अंगुल का नाप निश्चित एक ही लम्बाई का नहीं होता। बौधायन के अनुसार 14 अणू के दाने या 34 तिल के दाने की कुल मोटाई इतनी अंगुल की लम्बाई होती है। अंगुल का नाप यज्ञ के यजमान के कद की लम्बाई से भी निश्चित करते हैं। यह नाप विशेष रूप से अग्निचिति की ईंटों के लिये इस्तेमाल करते हैं। जमीन पर खड़ा रहकर और हाथ सिर के ऊपर लेने के बाद मध्य उंगली के सिर से जमीन तक का अंतर एक पुरुष लम्बाई का होता है। एक पुरुष 120 अंगुलों का होता है। इससे अंगुल का नाप निश्चित करते है।

मानव शुल्बसूत्र में यजमान के कद की लम्बाई किसी कारण से सामान्य पुरुष से कम होगी तो अंगुल का नाप कैसा निश्चित करे इस सवाल का जवाब दिया है। छः कमल परागों की कुल मोटाई बछडा होने वाली तीन साल की गौ के बाल की मोटाई जितनी होती है। ऐसे छः बालों की कुल मोटाई अलसी के दाने की मोटाई इतनी होती है। छः अलसी के दानें का एक जवस (बार्ली) का दाना होता है। छः जवस के दानें का अंगुल होता है। अति सूक्ष्म परिमाण से अंगुल का नाप यहाँ विकसित किया गया है।

प्रत्येक शुल्बसूत्र के अनुवाद के बाद नापों की जानकारी दी है। बौधायन शुल्बसूत्र में दी हुई नापें प्रमाण मानें तो वितस्ति का नाप बौधायन और आपस्तंब शुल्बसूत्रों में उल्लेखित नहीं है। मानव और कात्यायन शुल्बसूत्रों के अनुसार 12 अंगुलों की वितस्ति होती है। आपस्तंब शुल्बसूत्र के कपर्दिस्वामी के भाष्य में 13 अंगुलों की वितस्ति होती है ऐसा कहा है। मानव शुल्बसूत्र में 10 अंगुलों का एक प्रादेश

होता है ऐसा कहा है; किन्तु बौधायन और आपस्तंब मतानुसार 1 प्रादेश 12 अंगुलों का होता है। कात्यायन शुल्बसूत्र में इस परिमाण का उल्लेख नहीं है। बौधायन शुल्बसूत्र में न दी हुई मगर आपस्तंब शुल्बसूत्र में उल्लेखित नापें है; 1 अणूक = 30 अंगुल, 1 उर्वस्थि = 20 अंगुल, 1 नाभि = 64 अंगुल, 1 आस्य = 96 अंगुल और 1 पिशिल = 12 अंगुल। केवल मानव शुल्बसूत्र में उल्लेखित नापें है: 1 कृष्णल = 3 यव, 1 मान = 3 कृष्णल, 1 निष्क = 4 कृष्णल-यह नापें शायद तौल की होगी न लम्बाई की और 1 अर्व = 6 अंगुल।

शुल्बसूत्र में उल्लेखित नापों से रथ के विभिन्न भागों के नाप की जानकारी प्राप्त होती है। सब शुल्बसूत्रों में इस विषय में एक वाक्यता है। रथ के युग, ईषा और अक्ष की अनुक्रमशः नाप हैं 86, 188 और 104 अंगुल। इस रथ को चारण या चारक्य कहते हैं और खराब मार्गों पर वह इस्तेमाल करते थे।
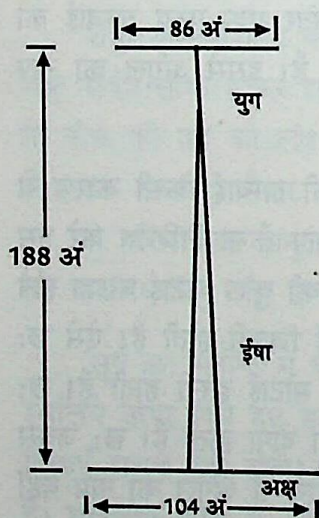
शुल्बसूत्रों में दिये जानु, नाभि, आस्य, उर्वस्थि, अंगुल, पद, वितस्ति, इत्यादि नापों से अनुमान है कि नापें मानव शरीर के विभिन्न अवयवों के लम्बाई से निश्चित की गई। अंगुल नाप के निश्चिती के लिये कमल पराग, गौ के बाल, अलसी के दाने इत्यादियों का उपयोग किया है। अनुमान है कि उस काल में महार्षि भी खेती से घनिष्ठ संबंध रखते थे।

शुल्बसूत्रों की भूमिति विषयक ज्ञान की सीमा :- शुल्बसूत्र भूमिति की किताब नहीं है। वहाँ वेदि, अग्निचिति, मंडप आदि के विन्यास के लिये भूमिति की जितनी जानकारी आवश्यक है वही दी गई है। कुछ भौमितिक सिद्धान्त भी वहाँ दिये हैं। विन्यास के लिये

भौमितिक कृतियों का (Constructions) उपयोजन किया हैं। वे कृतियाँ जिन सिद्धान्तों के आधाार पर जानते हैं इनके सिर्फ उल्लेख यहाँ हैं। इन सिद्धान्तों की सिद्धता इन सूत्रों में नहीं दी है और इसकी अपेक्षा करना भी व्यर्थ है। भारतीय गणित के पुस्तक में सिद्धान्त और उसे समझाने के लिये अनेक उदाहरण दिए जाते हैं। किन्तु सिद्धान्तों की सिद्धता नहीं दी जाती। भास्कराचार्य का 'लीलावती' यह गणित विषय पर मान्यता प्राप्त ग्रंथ है। यह ग्रंथ गणित विषय पर है किन्तु भास्कराचार्य ने एक भी सिद्धान्त की या सूत्र की सिद्धता नहीं दी है। शुल्बसूत्रों की भूमिति विषयक यह प्रमुख सीमा है।

शुल्बसूत्रों में दी हुई कृतियाँ:- बौधायन, मानव, आपस्तंब और कात्यायन शुल्बसूत्रों में प्रमाण क्षेत्रफलों की सरल रेखाकृतियों के विन्यास के लिए अलग अलग भौमितिक कृतियाँ दी हैं। उन सबका उल्लेख सारणी 5 में किया गया है। यहाँ कृति का संक्षेप में उल्लेख और शुल्बसूत्रों के जिस सूत्र में यह जानकारी दी हैं उनके क्रमांक उल्लेखित किये हैं। इस सारणी से शुल्बसूत्रों में दिये हुए प्रमुख कृतियों की जानकारी एक दृष्टिक्षेप से ही प्राप्त होती है। कौन सी कृति किस शुल्बसूत्र में किस सूत्र से दी है यह जल्द समझ में आता है। इतना ही नहीं तो किस कृति की सब से ज्यादा रीतियाँ किस शुल्बसूत्र में दी है इसकी भी जानकारी प्राप्त होती है। कौन सी कृति किस शुल्बसूत्र में दी है और किस में नहीं दी है यह भी जान सकते हैं। उदाहरण के लिये देखें प्रथम क्रमांक की कृति - वर्ग के विन्यास की रीति - इसके लिये आपस्तंब शुल्बसूत्र में सबसे अधिक, सात, रीतियाँ दी हैं, मानव और कात्यायन, प्रत्येक शुल्बसूत्र में तीन और बौधायन शुल्बसूत्र में दो रीतियाँ दी हैं। सूत्रों के क्रमांकों से ये रीतियाँ कहाँ दी है वह जान सकते हैं। क्रमांक 16 की कृति की - वर्ग का समक्षेत्र वृत्त खींचना - मानव शुल्बसूत्र में तीन और अन्य शुल्बसूत्रों में एक ही रीति दी है। बौधायन शुल्बसूत्र क्रमांक आठ की कृति - वर्ग का समक्षेत्र समलंब समद्विभुज चतुर्भुज खींचना-देता है किन्तु यह रीति अन्य शुल्बसूत्रों में नहीं दी है।

भौमितिक परिकल्पना

(1) दिये हुए लंबी रस्सी के चाहत के अनुसार समान लम्बाई के विभाग करना - आपस्तंब शुल्बसूत्र में (1.13) इसके लिये रीति दी है। प्रमाण लम्बाई के रस्सी के दोनों सिर इकट्ठे करें और रस्सी का मध्यबिंदु निश्चित करें। रस्सी के दोनों सिर मध्यबिंदु तक लाने से रस्सी के चार विभाग होते हैं। यह रीति का अनेक बार उपयोग करने से रस्सी के चाहिये इतने सम या विषम समान लंबाई के विभाग कर सकते हैं। रस्सी के समान लम्बाई के विभाग करने की सूचनाएं सब शुल्बसूत्रों में दी हैं। (बौ. शु. सू. 1.30, 1.32, 1.38, 1.58-60, 1.68-69, 2.64, 2.67; मा. शु. सू. 10.1.1.11, 10.1.2.4, 10.1.4.7, 10.3.3.3; आ. शु सू. 1.3, 1.7, 1.12, 2.2, 4.7, 7.10, 12.11, 12.15, का. शु. सू. 1.12-14, 1.27, 1.29, 3.14)।

रस्सी के समान लम्बाई के विषम विभाग करने की रीति शुल्बसूत्रों में स्पष्टतया नहीं दी गई। मगर समान लम्बाई के विषम विभाग करने की आवश्यकता होती है। बौ.शु.सू. 1.47, आ. शु. सू. 2.8, का. शु. सू. 2.98 में तृतीय करणी प्राप्त करने के लिये प्रमाण वर्ग के भुजाओं के समान लम्बाई के तीन (याने विषम) विभाग करके नौ वर्ग खींचने को कहा है। बौधायन और अन्य शुल्बसूत्रों में वर्ग खींचने के लिये रस्सी के तीन और चार, 12 और पांच, 14 और आठ आदि विभाग करने को कहा है। रस्सी के समान लम्बाई के सम विभाग करने की पद्धति से समान लम्बाई के विषम विभाग करने की रीति का अनुमान कर सकते हैं। रस्सी के तीन समान विभाग करने हों तो इनके समान लम्बाई के छः विभाग करें और दो विभागों का एक विभाग मानकर तीन समान लम्बाई के विभाग कर सकते हैं।

(2) वृत्त के व्यासों से इनके समक्षेत्र और समरूप चाहत के अनुसार विभाग करना-वृत्ताकार घिष्ण्या की रचना के लिये इसके व्यास की सहायता से 6, 8, 12 समविभाग करने को शुल्बसूत्रों में कहा गया

है। व्यास की मदद से सम संख्या में विभाग कर सकते हैं, विषम संख्या में नही। इसके लिये प्रमाण वृत्त में समकेंद्रित और एक छोटा वृत्त खींचकर बाद में शेष भाग के समविभाग करने को कहा है (बौ. शु. सू. 2.74-77)।

बौ. शु. सू. 1.22-28, मा. शु. सू. 10.1.3.6, आ. शु. सू. 9.8-10 में 180^0 का कोण विभाग कर 90^0 के समान कोण प्राप्त करने की कृति दी है। इस पद्धति से प्रमाण कोण के दो समान विभाग करना ज्ञात होगा ऐसा अनुमान कर सकते हैं।

(3) प्रमाण वर्ग के समक्षेत्र वर्ग विभागों की संख्या उस वर्ग के भुजाओं के विभागों के वर्ग इतनी होती है।

बौधायन शुल्बसूत्र (1.46-47) में तृतीयकरणी और त्रिकरणी (प्रमाण वर्ग के क्षेत्रफल के एक तिहाई और तिगुना क्षेत्रफल के वर्गों की भुजाएँ) प्राप्त करने के लिये बौधायन (याने पायथागोरस) के सिद्धान्त के साथ इस परिकल्पना का भी इस्तेमाल किया गया है। कात्यायन शुल्बसूत्र में यह परिकल्पना उदाहरण के साथ दी है। (आ. शु. सू. 3.11-12, 3.15-16, 3.19-21, का. शु. सू. 3.6, 3.8-10).

(4) आयत अथवा वर्ग का कर्ण इसके समान विभाग करता है।

वर्ग का समक्षेत्र आयत खींचने के लिये इस परिकल्पना का उपयोग किया है। (बौ. शु. सू. 1.52, 4.41, आ. शु. सू. 3.1, का. शु. सू. 3.4)

(5) वर्ग के दो कर्णों से समक्षेत्र और समरूप चार विभाग होते हैं और आयत के दो कर्णों से सामने वाले विभाग समक्षेत्र और समरूप होते है।

बौधायन शुल्बसूत्र के सूत्र 4.4 में प्रमाण वर्ग ईंटों के आधे और एक चौथाई क्षेत्रफल की ईंटें बनाने के लिये इस परिकल्पना का आधार

लिया है। बौधायन शुल्बसूत्र 5.60 में आयताकार ईंट के दो कर्णों से चार विभाग करने पर सामने वाले विभाग समक्षेत्र और समरूप होते हैं यह जानकर उन्हें शूलपाद और दीर्घपाद कहा है।

(6) समचतुर्भुज के कर्ण समकोण में काटते हैं।

इस परिकल्पना के आधार पर प्रउग चिति का विन्यास करते हैं (बौ. शु. सू. 4.111-122, का. शु. सू. 4.6)।

(7) वर्ग के कोण समकोण में काटते हैं।

पैतृकी वेदि के सिर मुख्य दिशाओं की तरफ लाने के लिये इस परिकल्पना की मदद ली है (मा. शु. सू. 10.1.2.6-7, आ. शु. सू. 6.18-19, का. शु. सू. 2.6)।

(8) त्रिभुज के चाहत के अनुसार समरूप और समक्षेत्र विभाग करने के लिये इसके भुजाओं का समान भागों में विभाजन करें और उन्हें जोड़ दें।

बौधायन शुल्बसूत्र में (8.4) श्मशान चिति के ईंटों की रचना दी है। इससे अनुमान है कि सूत्रकारों को इस परिकल्पना की जानकारी थी। आपस्तंब शुल्बसूत्र में (12-6-9) प्रउग चिति निर्माण करने के लिये त्रिभुजाकार ईंटों की रचना इस परिकल्पना के आधार पर की है।

(9) समद्विबाहु त्रिभुज का शीर्ष बिन्दु और आधार का मध्य बिन्दु जोड़ने वाली लम्ब रेखा उसके दो समरूप और समक्षेत्र विभाग करती है।

अष्टमी ईंट – 24x24 वर्ग अंगुल क्षेत्रफल के $\frac{1}{8}$ क्षेत्रफल होने वाली ईंट–बनाने के लिये इस परिकल्पना का उपयोग किया है (बौ. शु. सू. 4.62)। वर्ग का समक्षेत्र आयत और त्रिभुज का समक्षेत्र वर्ग करने की रीति का आधार यह परिकल्पना है (का. शु. सू. 3.4 और 4.7)।

(10) समद्विबाहु त्रिभुज का शीर्षबिन्दु और आधार का मध्यबिन्दु जोड़ने वाली रेखा आधार को लंबरूप होती है।

ऊपर की परिकल्पना देखें।
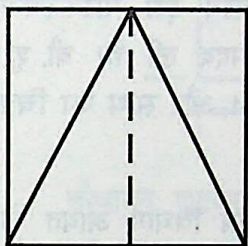
(11) वर्ग की भुजा का मध्यबिंदु और सामने वाली भुजा के कोण जोडकर होने वाले त्रिभुज का क्षेत्रफल वर्ग के क्षेत्रफल के आधे क्षेत्रफल का होता है।

बौ. शु. सू. 1.56, मा. शु. सू. 10.3.6.3, आपस्तंब शुल्बसूत्र 12.8 और का. शु. सू. 4.5 और साथ का चित्र देखें।
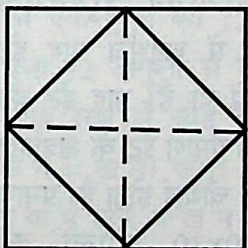
(12) वर्ग की भुजाओं के मध्यबिंदु जोड़कर बनने वाले वर्ग का क्षेत्रफल प्रथम वर्ग के क्षेत्रफल का आधा होता है।

बौ. शु. सू. 1.57, मा. शु. सू. 10.3.6.4, आ. शु. सू. 12.12.-14, का शु.सू. 2.6 और साथ का चित्र देखें।
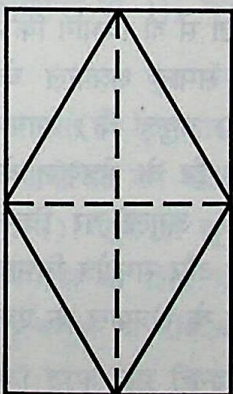
(13) आयत की भुजाओं के मध्यबिंदु जोड़कर बनने वाले समचतुर्भुज का क्षेत्रफल आयत के क्षेत्रफल का आधा होता है। समचतुर्भुजाकार उभयत: प्रउग चिति के विन्यास के लिये इस परिकल्पना का उपयोग किया है। बौ. शु. सू. 1.57, मा. शु. सू. 10.3.6.4, आ. शु. सू. 12.13-14, का. शु. सू. 4.6 और साथ का चित्र देखें।

(14) समद्विभुज समलंब चतुर्भुज और आयत का आधार और लंबरूप ऊँचाई एक होगी तो वे समक्षेत्र होते हैं।
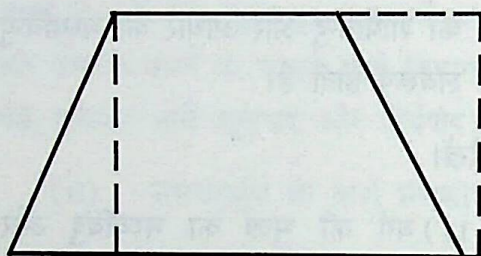
समद्विभुज समलंब चतुर्भुजाकार सैमिकी वेदि का समक्षेत्र आयताकार महावेदी में रूपांतर करने के लिये इस परिकल्पना की मदद ली है। बौ. शु. सू. 4.89, आ. शु. सू. 5. 18–21, का. शु. सू. 3.4 और साथ का चित्र देखें।

(15) प्रमाण आयत के दो समरूपं समक्षेत्र विभाग आयत के सामने वाले कोणों से समान दूरी पर होने वाले बिंदु जोडकर प्राप्त होते हैं।
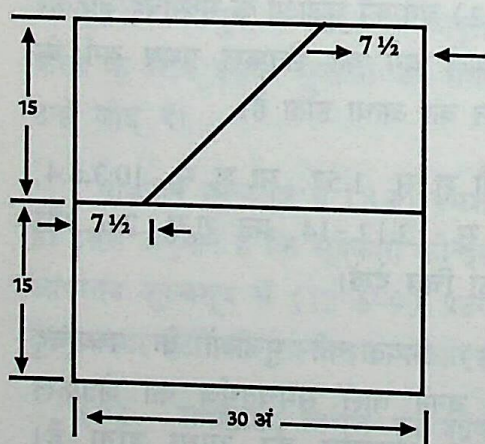
बौधायन शुल्बसूत्र (4.6) में चतुर्भुज पाद ईंट की नापें दी हैं। पाद ईंट का क्षेत्रफल प्रमाण ईंट के क्षेत्रफल के एक चौथाई होता है। प्रमाण ईंट 30x30 अंगुलों की वर्गाकार है। चित्र में इसके मध्य रेखा से दो विभाग किये हैं। दो समान क्षेत्रफल के (15x30 अंगुलों के) आयत प्राप्त होते हैं। इन दोनों आयतों का क्षेत्रफल प्रमाण ईंट के क्षेत्रफल के आधा है। आयत के सामने वाले कोणों से 7 ½ अंगुलों पर चिह्न लगाकर वे सरल रेखा से जोड दिये है। दो समरूप और समक्षेत्र विभाग प्राप्त होते हैं। प्रत्येक विभाग का क्षेत्रफल प्रमाण ईंट के क्षेत्रफल के एक चौथाई है।

(16) दो समकोण त्रिभुजों में समकोण की संलग्न भुजाएं समलम्बाई की होगी तो वे त्रिभुज समरूप और समक्षेत्र होते हैं।
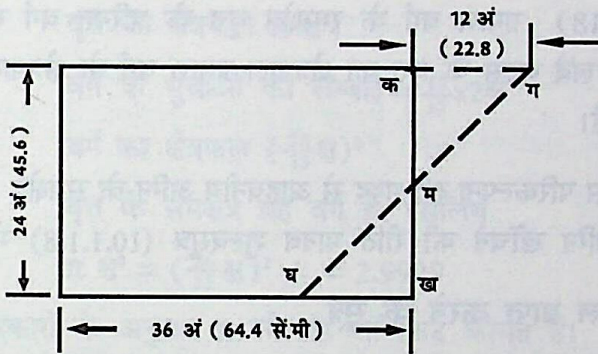
बौधायन शुल्बसूत्र (4.89) में चतुर्भुज अध्यर्धा (प्रमाण ईंट के 1½ गुना क्षेत्रफल की) ईंट की नापें दी हैं। प्रमाण ईंट 24x24 अंगुलों की है। इसके 1½ गुना क्षेत्रफल की ईंट 24x36 अंगुलों की आयताकार होती है। इस क्षेत्रफल की चतुर्भुज आकार की ईंट बनाने के लिये आयत की एक भुजा की 12 अंगुलों से वृद्धि की है और इसके सामने वाली भुजा 12 अंगुलों से कम कर दी है, और ये दोनों बिन्दु (ग और घ) सरल रेखा से जोड़ दिये गये हैं। साथ के चित्र में क ग = ख ग और क म = ख म। कोण ग क म और कोण घ ख म समकोण हैं। त्रिभुज ग क म और घ ख म समक्षेत्र और समरूप हैं, इसलिये चतुर्भुजाकार ईंट का क्षेत्रफल आयताकार ईंट के क्षेत्रफल के समान याने प्रमाण ईंट के क्षेत्रफल के 1½ गुना है।

(17) वृत्त में समायोजित बड़े वर्ग के कोणबिन्दु वृत्त के परिधी पर होते हैं। वृत्ताकार गार्हपत्य चिति चिनने के लिये वृत्त में बड़े से बड़ा समायोजित वर्ग खींचने की सूचना दी है। (बौ. शु. सू. 2.70, आ.शु.सू. 7.14)। ऐसी ही सूचना घनी रथचक्रचिति और वृत्ताकृति द्रोणचिति के विन्यास के लिये दी है (बौ. शु. सू. 5.7, 7.4, आ. शु. सू. 12.17) शुल्बसूत्रों के टीकाकारों के अनुसार वृत्त के परिधी पर मुख्य दिशाओं की तरफ चार चिन्ह लगाने से और वे सरल रेखाओं से जोड़ने से वृत्त में समायोजित बड़े से बड़ा वर्ग प्राप्त होता है।

(18) प्रमाण वर्ग के समक्षेत्र वृत्त के परिगत वर्ग के कर्ण के समान लंबे व्यास के वृत्त का क्षेत्रफल प्रमाण वर्ग के क्षेत्रफल के दुगुना होता है।

इस परिकल्पना की मदद से आहवनीय अग्नि के समक्षेत्र अर्धवृत्ताकार दक्षिणाग्नि खींचने की रीति मानव शुल्बसूत्र (10.1.1.8) में दी है।

क्षेत्रफल प्राप्त करने के सूत्र

1. वर्ग या आयत का क्षेत्रफ़ल लम्बाई और चौड़ाई के गुणन से प्राप्त होता है (मा. शु. सू. 10.2.5.5, 10.3.2.11)।
2. समकोण त्रिभुज का क्षेत्रफल आधार और लंबरूप भुजा के गुणन के आधा होता है। (मा. शु. सू. 10.3.2.12)।
3. घनाकृति का घनफल उसके क्षेत्रफल और मोटाई के गुणन से प्राप्त होता है। (मा. शु. सू. 10.3.1.6)।
4. श्मशान चिति सूचिस्तंभ छिन्नक जैसी होती है। उसका घनफल अन्य काम्य चितियों के घनफल इतना होना चाहिये, इससे सूचिस्तंभ छिन्नकाकृति का घनफल प्राप्त करने की रीति आचार्यों को विदित होगी ऐसा अनुमान कर सकते हैं।
5. π की कीमत

(अ) बौधायन शुल्बसूत्र (1.113) में कहा है कि यूप के लिये खोदे गये एक पद व्यास के वृत्ताकार गड़ढे की परिमिति तीन पद होती है। π की सन्निकट कीमत तीन लेते थे ऐसा अनुमान है।

(आ) वृत्त के व्यास के $\frac{13}{15}$ लम्बाई की भुजाएँ होने वाला वर्ग उस वृत्त का समक्षेत्र होता है (बौ. शु. सू. 1.60, मा. शु. सू. 10.3.2.13, आ. शु. सू. 3.6-8 और का. शु. सू. 3.14)।

वृत्त की त्रिज्या क्ष मानें।

वृत्त का क्षेत्रफल π क्ष²।

वर्ग के भुजाओं की लम्बाई = $\frac{13}{15}$x2क्ष

वर्ग का क्षेत्रफल ($\frac{26}{15}$क्ष)²

वृत्त के समक्षेत्र यह वर्ग है, इसलिये

π क्ष² = ($\frac{26}{15}$क्ष)² $\therefore$ = 2.9929

शुल्बसूत्रकारों के अनुसार π की यह सन्निकट कीमत है।

(इ) समक्षेत्र वृत्त की त्रिज्या और वर्ग की भुजा का संबंध दिया है: वृत्त की त्रिज्या = वर्ग की आधी भुजा + $\frac{1}{3}$ (वर्ग का आधा कर्ण-वर्ग की आधी भुजा). (बौ. शु. सू. 1.58, मा. शु. सू. 10.1.1.8, 10.3.2.10, आ. शु. सू. 3.2-5 और का. शु. सू. 3.13) वर्ग की आधी भुजा = क्ष मानें।

वृत्त की त्रिज्या = क्ष + $\frac{1}{3}$ ($\sqrt{2}$ क्ष-क्ष)

= क्ष (1+$\sqrt{\frac{2}{3}}$ - $\frac{1}{3}$) = क्ष ($\frac{2}{3}$ + $\sqrt{\frac{2}{3}}$)

= (0.67 + 0.47) = 1.14 क्ष

वृत्त का क्षेत्रफल = π (1.14 क्ष)², और वर्ग का क्षेत्रफल = 4 क्ष²

दोनों क्षेत्रफल समान हैं, π (1.14 क्ष)² = 4 क्ष²

$$\therefore \pi = \frac{4}{(1.14)^2} = \frac{4}{1.2996} = 3.078$$

शुल्बसूत्रकारों के अनुसार यह π की सूक्ष्म कीमत है।

(ई) समक्षेत्र वर्ग की भुजा और वृत्त के व्यास (क्ष) का संबंध दिया है। वर्ग की भुजा = क्ष ($\frac{7}{8} + \frac{1}{8x29} - \frac{1}{8x29x6} + \frac{1}{8x29x6x8}$) (बौ. शु. सू. 1.59)।

वर्ग की भुजा = क्ष ($\frac{9785}{11136}$) = 0.8787 क्ष।

वर्ग का क्षेत्रफल = 0.77211369 क्ष² और वृत्त का क्षेत्रफल = ¼ (πक्ष²)

दोनों क्षेत्रफल समान हैं, इसलिये

$$\frac{\pi क्ष^2}{4} = 0.77211369 \;\; क्ष^2 = 0.772 \;\; क्ष^2$$

$$\therefore \pi = 0.772 \times 4 = 3.088$$

(उ) प्रमाण वर्ग के समक्षेत्र वृत्त के परिगत वर्ग के कर्ण के लम्बाई के समान व्यास के वृत्त का क्षेत्रफल प्रमाण वर्ग के क्षेत्रफल का दुगुना होता है।

प्रमाण वर्ग की भुजा की आधी लम्बाई क्ष मानें –

प्रमाण वर्ग के समक्षेत्र वृत्त की त्रिज्या = क्ष + $\frac{1}{3}$ (√2 क्ष–क्ष)

इस वृत्त के परिगत वर्ग की आधी भुजा = क्ष + $\frac{1}{3}$ (√2क्ष–क्ष) = 1.14 क्ष। इस वर्ग का आधा कर्ण = $\sqrt{1.14क्ष)^2 + 1.14क्ष)^2} = \sqrt{2.599क्ष)^2}$ = वृत्त की त्रिज्या। प्रमाण वर्ग का क्षेत्रफल = 4क्ष² ∴ 8क्ष² = π x 2.599 क्ष² ∴ $\pi = \frac{8}{2.599} = 3.1163$

शुल्बसूत्र में जैसी √2 की कीमत दी है वैसी π की नहीं दी है। π की कीमत उनके अनुसार क्या होती थी यह ऊपर के परिकलन से जान सकते हैं।

शुल्बसूत्रों में दी हुई ईंटों की जानकारी

कात्यायन शुल्बसूत्र छोड़कर, अन्य शुल्बसूत्रों में अग्निचिति के विन्यास की रीति, इसके रचना के लिये ईंटें,आदि जानकारी दी है। ईंटों के आकार और नापों की जानकारी प्रत्येक शुल्बसूत्र के अनुवाद में चित्र के साथ दी हैं।

ईंटें मिट्टी से बनाते थे। मिट्टी के सिवाय अन्य पदार्थों की ईंटें इस्तेमाल न करें ऐसा नियम बौधायन शुल्बसूत्र (2.39) में दिया है।

ईंटें निर्धारित आकार की होनी चाहये। प्रत्येक आचार्य ने प्रत्येक अग्निचिति के लिये ईंटों के आकार और नापें दी हैं। अग्निचिति की प्रत्येक तह ईंटों की विशिष्ट संख्या से चिनते हैं।

ईंटों की नाप और आकार के लकडी के सांचे बनाएं जाते थे। आपस्तंब शुल्बसूत्र में (7.10, 9.13, 16.3) ईंटों की नापें न देकर उनके सांचे (करण) की नापें दी हैं।

बौधायन शुल्बसूत्र में चतुर्भुज 'पाद' ईंटें (4.5, 4.88), पंचकोण अर्ध्या ईंटें (4.7) और चतुर्भुज अध्यर्धा ईंटें बनाने को कहा हैं और उनकी नापें भी दी हैं। आपस्तंब शुल्बसूत्र में त्रिभुजाकार और समचतुर्भुजाकार अग्निचिति में त्रिभुजाकार और समचतुर्भुजाकार ईंटों की भुजाएँ चिति के भुजाओं के $\frac{1}{12}$ या $\frac{1}{13}$ के अनुपात में हो ऐसा कहा है (आ. शु. सू. 12.10-11, 12.15)। बौधायन और मानव शुल्बसूत्र में रथचक्रचिति निर्मित करने के लिये अलग-अलग आकार की तथा अलग-अलग व्यासों की वृत्त-खंडों की ईंटें बनाने को कहा है (बौ. शु. सू. 5.22-28, मा. शु. सू. 10.3.6.13-17, 10.3.7.1-7)। ऐसी अनेक आकार की ईंटें अनेक सौ की संख्या में अग्निचिति में चिनने के लिये लगती हैं। इन सबका निर्माण लकड़ी के सांचे से ही करते थे।

गीली मिट्टी की ईंटें बनाने के बाद वे सुखाते और पकाते थे। ईंटों की नापें पकाने से कुछ कम होती हैं। इसलिये ईंटें बनाने के समय इनकी नापें प्रमाण नापों से कुछ ज्यादा लेने की सूचना शुल्बसूत्रों में दी है (बौ. शु. सू. 2.60, मा. शु. सू. 10.2.5.1)। मानव शुल्बसूत्र में कहा है कि ईंटों की नापें पकने के बाद $\frac{1}{30}$ से कम होती हैं (10.2.5.2, 10.3.4.17)। उदाहरण देते हैं। 12x12 अंगुलों की ईंट का क्षेत्रफल 144 वर्ग अंगुल होता है। यह है पक्की ईंट का नाप, इस नाप की पक्की ईंट तैयार करने के लिये गीली मिट्टी की 150 वर्ग अंगुल की ईंट बनाने की सूचना दी है (10.2.5.3)।

ईंटों की वैशिष्टि :- फुटी, जीर्ण, ज्यादा पकने से काली हो गई, चटकी हुई, और जिन पर लकड़ी, पत्थर, जानवरों के पांव आदि के धब्बे पडे हैं ऐसी ईंटें इस्तेमाल न करने की सूचना दी है (बौ. शु. सू. 2.52-561)।

ईंटों के आकार:- ईंटें वर्गाकार बनाते थे। आयताकार ईंटों से वर्गाकार ईंटें श्रेष्ठ मानते थे (बौ. शु. सू. 3.10)। किन्तु चिति के आकारानुसार ईंटें बनाते थे। त्रिभुजाकार या समचतुर्भुजाकार अग्निचिति बनाने के लिये त्रिभुजाकार और समचतुर्भुजाकार ईंटें बनाते थे। तरह-तरह के आकारों के और नापों के बहुत प्रकार की ईंटों से अग्निचिति बनाते थे। सारा रथचक्रचिति में सोलह प्रकार की ईंटें इस्तेमाल करते हैं। छोटे से छोटी ईंट 8x8 अंगुलों की और बडे से बडी ईंट 36x24 अंगुलों की दी है। वृत्ताकार द्रोणचिति में वृत्तखंड की एक भुजा होने वाली ईंट की अन्य भुजा की लम्बाई 50 अंगुल दी है। ईंटें वर्गाकार, आयताकार, त्रिभुजाकार, समद्विभुज समलंब चतुर्भुजाकार, चतुर्भुजाकार, पांच कोणों की आदि आकारों की होती हैं। अग्निचिति की ऊँचाई 32 अंगुल होती है और वह ईंटों की पांच तहों से बनाते है। ईंट की ऊँचाई या मोटाई 6.4 अगुलों की रखते हैं। नाकसद, पंचचोडा और ऋतव्या ईंटों की ऊंचाई इसके आधी याने 3.2 अंगुल रखने की सूचना दी है (बौ.शु.सु. 2.58-59, मा. शु. सु. 10.3.1.4)।

ईंटें चिनने की पद्धति:- ईंटें चिनने का एक महत्वपूर्ण नियम बौधायन शुल्बसूत्र (2.22) में दिया है। यह नियम इतना महत्व का है कि उसका पालन आज भी करते हैं। ईंटों की संधियाँ एक दूसरी के ऊपर न आनी चाहिये, याने जोड़ काटकर ईंटें चिनें। श्येनचिति बनाने के समय इस नियम का पालन न किया जाएं तो श्येनचिति के पंख, पूँछ और शीर्ष आत्मा से अलग-अलग हो सकती हैं। ऐसा न होने के लिये नियम दिया है कि एक तह में आत्मा का कुछ भाग पंख, पूंछ और शीर्ष में होना चाहिये और इसके ऊपर और नीचे वाली तहों में पंख, पूंछ और शीर्ष का कुछ भाग आत्मा में होना चाहिये। (बौ. शु. सू. 2.37)।

अग्निचिति में किस ईंट कहाँ रखने की इसकी व्यवस्था निश्चित होती है और इस के लिये ईंटों पर चिह्न लगाएं जाते हैं। अग्निचिति में दक्षिण की तरफ रखने वाली ईंटों पर दक्षिण की तरफ मुड़ने वाली रेखा का चिह्न लगाते हैं। बाएँ की तरफ रखने वाली ईंटों पर बाएँ की तरफ मुड़ने वाली रेखा का चिह्न लगाते हैं। जिस ईंट पर एक सरल रेखा का निशाना लगाया है वह ईंट अग्निचिति के पश्चिम या पूर्व की और रखते हैं (बौ. शु. सू. 2.30-33)। ईंटें चिनते समय प्राची (पूर्व पश्चिम जाने वाली रेखा) अग्निचिति की सममिति अक्ष होती है। इस के उत्तर भाग में जितनी संख्या में ईंटें चिनते हैं उतनी ही संख्या की ईंटें दक्षिण भाग में चिनने को कहा है (बौ. शु. सू. 2.29, 2.35)।

उपसंहार

शुल्बसूत्रों में चर्चित विषय की जानकारी ऊपर दी है। भाषा संस्कृत और सूत्ररूप और विषय भूमिति जैसा क्लिष्ट होने से शुल्बसूत्रों के अध्ययन में रुचि लेने वाले विद्वान कम होते हैं। चार शुल्बसूत्रों के इस हिंदी अनुवाद से यह शास्त्र पढने में सुविधा होगी और विद्वानों का ध्यान इस विषय की तरफ खींचा जाएगा जिससे इन सूत्रों के अध्ययन की प्रेरणा मिलेगी। वास्तव में इसी में मेरी राय में प्रस्तुत पुस्तक की सफलता है।

आभार प्रदर्शन

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन, के सलाहकार श्री एम.सी. जैन महोदय का मैं बहुत आभारी हूँ। इनके प्रोत्साहन के कारण यह पुस्तक सिद्ध हुई। संस्कृत में लिखे शुल्बसूत्रों का हिंदी भाषा में अनुवाद करने का यह मेरा प्रयास प्रकाण्डपण्डित डॉ. मो.दि. पराडकर महोदय के मदद से सफल हुआ। वे मुम्बई हिन्दी विद्यापीठ के मानद कुलपति थे। इस्पात और खान मंत्रालय, नौकानयन और परिवहन मंत्रालय तथा पर्यटन मंत्रालय के हिंदी सलाहकार समितियों के भूतपूर्व सदस्य थे। शुल्बसूत्रों की भाषा सूत्ररुप, विषय भूमिति जैसा क्लिष्ट और मेरी महाराष्ट्री हिन्दी, इस से यह संस्कृत से हिंदी अनुवाद करना मुझे कष्टदायक था। मेरी हिंदी अनुवाद में कुछ सुधार करने का काम डॉ. पराडकर महोदय ने किया है। मैं इनका बहुत ऋणी हूँ। इस ग्रंथ के मुद्रक सायबर आर्ट इन्फोरमेशन प्राईवेट लिमिटेड ने मुद्रण का काम लगन के साथ किया है जो अभिनंदनीय है।

दि. 14.5.1995

बुद्ध पूर्णिमा

र.पु. कुलकर्णी

संदर्भसूची :-

1. काशीकर, चिं.ग. (1966), "A summary of Śrautasutras" मुंबई विद्यापीठ का जर्नल, सप्टेम्बर, क्रमाक 35, (नई सिरीज), भाग-2

2. खेल्डर, जॅनेट एम्. फॉन. (1959 व 1963), ''मानव श्रौतसूत्रे'' मूल संस्कृत व इंग्रेजी अनुवाद, अनुक्रमे शतपिटक सिरीज, क्रमांक 17 व 27, इन्टरनेशनल अेकैडेमी ऑफ इन्डियन कल्चर नई दिल्ली

3. थीबो, जी. (1968), "Baudhāyana Śulbasūtra" द्वारकानाथ यज्व के टीका के साथ -प्राचीन वैज्ञानिकाध्ययन अनुसंधान, नई दिल्ली.

4. सत्यप्रकाश (1965), Founders of Sciences in Ancient India प्राचीन वैज्ञानिकाध्ययन अनुसंधान, नई दिल्ली.

5. सत्यप्रकाश (1970), "Āpastamba śulbasūtra" प्राचीन वैज्ञानिकाध्ययन अनुसंधान, नई दिल्ली.

6. कुलकर्णी, र. पु. (1978) "The value of π known to Śulbasūtrākāras" Indian Jaurnal of History of science, Vol. No. 1, pp. 32-41

सारणी-3

वेदि और मंडप-नापें (अंगुलों में)

वेदि

	बौधायन शुल्बसूत्र				आपस्तंब शुल्बसूत्र				मानव शुल्बसूत्र				
वेदि का नाम	प्राची	पूर्व	पश्चिम	सूत्र	प्राची	पूर्व	पश्चिम	सूत्र	प्राची	पूर्व	पश्चिम	सूत्र	
दर्शपूर्ण मास की यजमान वेदि	96	48	64	1.72	144	72	96	5.1–5	96	48	64	10.1.1.4	वेदि की नापें बदल सकती है।
पशुबंध वेदि	180	120	150	1.76	144	72	96	6.15	144	72	120	10.1.2.4	
रथ के नाप की वेदि	188	86	104	1.77	188	86	104	6.7–8	188	86	104	10.1.2.1	
पैतृकी वेदि वर्गाकृति	भुजा 10 पद, 5 अं, 31 तिल = 155 अं, 31 तिल			1.82	भुजा 120 अंगुल			6.19	भुजा 120 अंगुल			10.1.2.6	कोण दिशाओं की तरफ रखते हैं।

सारणी–3
वेदि

दशपदोत्तरा वेदि, वर्गाकृति	$\sqrt{10}$ पद की भुजा			1.98	$\sqrt{10}$ पद की भुजा			6.20	$\sqrt{10}$ पद की भुजा			10.1.3.5	
महावेदि (सौमिकी)	36 पद या प्रक्रम	24 पद या प्रक्रम	30 पद या प्रक्रम	1.90	36 पद या प्रक्रम	24 पद या प्रक्रम	30 पद या प्रक्रम	6.1–3	36 प्रक्रम	24 प्रक्रम	30 प्रक्रम	10.1.3.4	
महावेदि (पितृयज्ञ की)	31 पद, 2 अं, 26 तिल वर्गाकृति			1.82	36 पद x 27 पद आयत			5.18					
सौत्रामणि वेदि	18 पद चौरस			1.86	18 पद चौरस			5.26					
मरुत् वेदि									6 अरत्नि	3 अरत्नि	4 अरत्नि	10.1.2.5	
वरुण वेदि									6 अरत्नि	1½ अरत्नि	2 अरत्नि	10.1.2.5	

सारणी-3
मण्डप

	बौधायन शुल्बसूत्र	आपस्तंब शुल्बसूत्र	मानव शुल्बसूत्र	हविर्धान मंडप
प्राग्वंश मंडप	16 प्रक्रम लम्बा, 12 प्रक्रम चौड़ा आयताकार (1.88)		10 अरत्नि वर्गाकार (10.1.3.1)	1) सदस से हविर्धानमंडप पूर्व की तरफ 4 प्रक्रम दूरी पर होता है (बौ.शु.सू. 1.96, मा.शु.सू. 10.1.3.2)।
सदस मंडप	10 पद पूर्व-पश्चिम, 27 अरत्नि उत्तर-दक्षिण (1.93-94) या 10 प्रक्रम x 18 अरत्नि (1.95)	9 अरत्नि, पूर्व-पश्चिम 27 अरत्नि, उत्तर-दक्षिण (7.1.3)	9 अरत्नि, पूर्व-पश्चिम (10.1.3.2) 27 अरत्नि, उत्तर-दक्षिण (10.1.3.6)	2)आह्वनीय अग्नि से महावेदि छः प्रक्रम दूरी पर होती है। (बौ.शु.सू. 1.91)।
हविर्धान मंडप	10 या 12 प्रक्रम वर्गाकृति (1.96)		12 प्रक्रम वर्गाकृति (10.1.3.2.)	3) महावेदि से सदस का अंतर 1 प्रक्रम होता है। (बौ.शु.सू. 1.92)।
आग्निध्रीय मंडप	5 अरत्नि वर्गाकार (1.103)		6 अरत्नि वर्गाकार (10.1.3.3)	4)सदस के पूर्वार्ध से दो प्रक्रम दूरी पर दो प्रादेश व्यास की और दो प्रादेश का अंतर होने वाली धिष्ण्याएँ रखते हैं।
मार्जालीय मंडप	5 अरत्नि वर्गाकार (1.104-105)			

सारणी - 4
श्येनचिति की नापें
(सब अंक अंगुलों में हैं। 1 अंगुल ≑ 1.9 सेमी.)

शुल्बसूत्र	आत्मा			शीर्ष			पंख			पुच्छ		
	लंबाई	चौड़ाई	कोण	लंबाई	चौड़ाई	कोण	लंबाई	चौड़ाई	बांक	पश्चिम भुजा	पूर्व भुजा	चौड़ाई
बौ. शु. सू. 4.26–36	240	150	45	82 ½	60	30	210	150	90	240	60	90
बौ. शु. सू. 4.44–67	240	144	48	54	48	24	252	162	72	192	48	72
मा. शु. सू. 10.3.5.1–6	210	120	30	75	60	30	240	150	108	240	60	90
आ. शु. सू. 15.1–25	240	180	60	60	60	30	187	120		180	60	120
आ. शु. सू. 18.1–24	240	180	60	60	60	30	247 ½	120		240	60	90

सारणी - 4

कंकचिति

शुल्बसूत्र	आत्मा			शीर्ष			पंख			पुच्छ		
	लंबाई	चौड़ाई	कोण	लंबाई	चौड़ाई	कोण	लंबाई	चौड़ाई	बांक	पश्चिम भुजा	पूर्व भुजा	चौड़ाई
बौ. शु. सू. 4.75–91	240	144	48	72	48	24	246	144	108	192	48	72
मा. शु. सू. 10.3.5.1–6	210	120	30	120	60	30	240	150	108	180	60	60

सारणी - 4

अलजचिति

शुल्बसूत्र	आत्मा			शीर्ष			पंख			पुच्छ		
	लंबाई	चौड़ाई	कोण	लंबाई	चौड़ाई	कोण	लंबाई	चौड़ाई	बांक	पश्चिम भुजा	पूर्व भुजा	चौड़ाई
बौ. शु. सू. 4.92–99	240	144	48	72	48	24	264	144	120	192	48	72
मा. शु. सू. 10.3.5.1–6	210	120	30	45	60	30	240	150	108			

सारणी - 5

कृतियाँ और भौमितिक सिद्धान्त

बौधायन	आपस्तम्ब	मानव	कात्यायन
1. वर्ग के विन्यास की कृतियाँ			
1) 1.22-28 1) 1.29-35	1) 1.3-6 2) 1.7 3) 1.13-18 4) 2.1-5 5) 8.20-21 6) 9.1-2 7) 9.6-10	1) 10.1.1.11-12 2) 10.2.1.1.-14 3) 10.2.1.3-7	1) 1.6-11 2) 1.12 3) 1.13
2. आयत के विन्यास की कृतियाँ			
1) 1.36-41 2) 1.42-45	1) 4.11-17 2) 5.5-8 3) 5.17-20 4) 6.11	1) 10.1.3.6	1) 1.17
3. समक्षेत्र वर्गों के क्षेत्रफलों के योग जितने वर्ग के विन्यास की कृतियाँ			
1) 1.45 2) 1.46 3) 1.47	1) 1.10-11 2) 2.6 3) 2.7-8	1) 10.3.2.11	1) 1.12 2) 2.14 3) 2.16-18
4. असमान क्षेत्रफलों के वर्गों के क्षेत्रफलों के योग जितने वर्ग के विन्यास की कृतियाँ			
1) 1.50 2) 2.12	1) 2.9-13 2) 8.16 3) 1.11-12	1) 10.3.3.6	1) 2.12 2) 5.5 3) 5.7

बौधायन	आपस्तम्ब	मानव	कात्यायन
			4) 5.10 5) 6.7
5. असमान क्षेत्रफलों के दो वर्गों के क्षेत्रफलों के व्यवकलन जितने वर्ग के विन्यास की कृतियाँ			
1) 1.51	1) 2.14–17	--	1) 3.1
6. वर्ग का समक्षेत्र आयत खींचना			
1) 1.52 2) 1.53	1) 3.1 --	-- --	1) 3.4 --
7. आयत का समक्षेत्र वर्ग खींचना			
1. 1.54	1. 2.20–23	--	1. 3.2 2) 3.3
8. वर्ग का समक्षेत्र समलंब चतुर्भुज खींचना			
1) 1.55	--	--	--
9. समलंब चतुर्भुज का समक्षेत्र वर्ग खींचना			
--	--	--	1) 3.4
10. प्रमाण समद्विभुज समलंब चतुर्भुज के क्षेत्रफल के एक तिहाई क्षेत्रफल का समद्विभुज समलंब चतुर्भुज खींचना			
1) 1.45–47 2) 1.86	1) 2.7–8 2) 5.22–27	--	1) 1.15–18
11. वर्ग का समक्षेत्र समद्विभुज त्रिभुज खींचना			
1) 1.56	1) 12.7–9	1) 10.3.6.3	1) 4.5
12. समद्विभुज त्रिभुज का समक्षेत्र वर्ग खींचना			
--	--	--	1) 5.7
13. वर्ग का समक्षेत्र समचतुर्भुज (उभयतः प्रउग) खींचना			
1) 1.57	1) 12.12–15	1) 10.3.6.4	1) 4.6

बौधायन	आपस्तम्ब	मानव	कात्यायन
14. समचतुर्भुज का समक्षेत्र वर्ग खींचना			
--	--	--	1) 5.8
15. त्रिकर्ण, पंचकर्ण आदि का समक्षेत्र वर्ग खींचना			
--	--	--	1) 5.9-11
16. वर्ग का समक्षेत्र वर्ग खींचना			
1) 1.58	1) 3.2-5	1) 10.1.1.8	1) 3.13
		2) 10.3.2.9-10	
		3) 10.3.2.15	
17. वृत का समक्षेत्र वर्ग खींचना			
1) 1.59	--	--	--
2) 1.60	1) 3.6-8	1) 10.3.2.13	1) 3.14
18. मुख्य दिशाओं की तरफ सिरे होने वाले वर्ग के विन्यास की कृतियाँ			
--	1) 6.18-19	1) 10.1.2.6	1) 2.6
		2) 10.1.2.7	
19. घन का घनफल			
--	--	1) 10.3.1.9	--
20. वृत्त में समायोजित बड़े से बड़ा वर्ग का क्षेत्रफल			
--	--	1) 10.3.2.14	--
21. $\sqrt{2}$ की कीमत			
1) 1.61	1) 1.10	1) 10.3.3.2	1) 2.13
22. आयत के कर्ण के वर्ग का क्षेत्रफल अन्य दो भुजाओं के वर्गों के क्षेत्रफलों का योग जितना होता है-भौमितिक सिद्धान्त			
1) 1.48	1) 1.8	1) 10.3.1.10	1) 2.11

उदाहरण

बोधायन	आपस्तम्ब	मानव	कात्यायन
1. ¾ क्ष, क्ष, $\frac{5}{4}$ क्ष (1.32–35)	1. ¾ क्ष, क्ष, $\frac{5}{4}$ क्ष (1.7)	1. 40, 96, 104 (10.1.1.4)	1. ¾ क्ष, क्ष, $\frac{5}{4}$ क्ष (1.12)
2. $\frac{5}{12}$ क्ष, क्ष, $\frac{13}{12}$ क्ष (1.42–44)	2. $\frac{5}{12}$ क्ष, क्ष, $\frac{13}{12}$ क्ष (1.3)	2. ¾ क्ष, क्ष, $\frac{5}{4}$ क्ष (10.1.1.11–12)	2. $\frac{5}{12}$ क्ष, क्ष, $\frac{13}{12}$ क्ष (1.14)
3. 3, 4, 5	3. 3, 4, 5 (5.7)	3. 2½, 6, 6½ (10.1.2.4)	
4. 5, 12, 13	4. 5, 12, 13 (5.10)	4. 52, 188, 194 (10.1.2.2)	
5. 8, 15, 17	5. 8, 15, 17 (5.13)	5. 4½, 6, 7½ (10.1.2.5)	
6. 7, 24, 25	6. 12, 35, 37 (5,16)	6. 3½, 3½, 5 (10.1.2.7)	
7. 12, 35, 37	7. 15, 36, 39, (5.5)	7. 12, 16, 20 (10.3.7.17)	
8. 15, 36, 39	8. 60, 144, 156 (6.15)	8. 13½, 4½, 18 (10.3.1.6)	
(3–8: 1.49)		9. 15, 36, 39 (10.1.3.4)	
		10. 5, 5, 7 (10.3.5.18) (10.1.2.7)	
		11. 3, 8, 8.5 (10.3.5.17)	

पूर्व
१२१३ अं (२३०४७)
यूप
चात्वाल
शामित्र वेदी
३६
(६८.४)
उत्कर
उत्तरवेदी
३६ (६८.४)
१९५ (३७०५)
खर
हविर्धानमण्डप
३०० (५७०)
उपरव
आग्नीध्रीय मण्डप
१२०
(२२८)
मार्जालीय मण्डप
१२० (२२८)
२७ अलि ६४८ (१२३१.२)
अच्छावाक
नेष्टु
पोतृ
ब्रह्मा
होता
मैत्रावरुणी
सदस
उत्तर
महावेदि
१८० (३४२)
३० (५७)
१५१५ (२८७८५)
प्र
अ
ब
य
उ
ह
द
ग
प
प्राग्वंश मण्डप
३३०
(६२७)
४८०
(९१२)
३६० (६८४)
प्राची
अंतर ग आ = 330 अं. (627)
अंतर आ द = 293.4 अं. (557.46)
अंतर द ग = 137 अं. (260.3)
सब नापें अंगुलों में, कोष्ठक में दिये नाप सेंमी. में
(1 अंगुल = 1.9 से.मी.)
प्र = प्रणीता की जगह
अ = आहवनीय अग्नि
ब = ब्रह्मा की जगह
य = यजमान की जगह
द = दक्षिणाग्नि
प = पत्नी की जगह
ग = गार्हपत्य अग्नि
ह = होतृ की जगह
अ = आग्नीध्र की जगह
उ = उत्कर
एकादशिनी वेद
(एगालिंग से सुधारित)
पश्चिम

आकृति 1

1 बोधायन शुल्बसूत्र

अध्याय 1 से 10

हिन्दी भाषा

अध्याय एक

बौधायन शुल्बसूत्र

अथेमेऽग्निचया: ॥ 1 ॥

अब विभिन्न अग्नियों का विन्यास और रचना। (1)

तेषां भूमे: परिमाणविहारान्व्याख्यास्याम: ॥ 2 ॥

इनके लिए जमीन पर नापें तथा (अग्नियों के) विहार (विन्यास) इत्यादि की जानकारी देते हैं। (2)

अथाङ्गुलप्रमाणम् ॥ 3 ॥

अब अङ्गुल का नाप। (3)

[अंगुल प्रमाण इकाई (Standard Unit) है।]

चतुर्दशाणव: ॥ 4 ॥

14 अणुओं का। (4)

[14 अणु के दाने एक दूसरे के सम्पर्क में रखकर अंगुल का नाप प्राप्त होता है।]

चतुस्त्रिꣳशत् तिला: पृथुसꣳश्लिष्टा इत्यपरम् ॥ 5 ॥

34 तिल के दाने, मोटाई की दिशा में, एक दूसरे के संपर्क में रखने से अंगुल का नाप प्राप्त होता है; यह अंगुल का दूसरा नाप है। (5)

[इति अपरम् का अर्थ 'अन्य कोई लोगों के मतानुसार' ऐसा भी हो सकता है।]

दशाङ्गुलं क्षुद्रपदम् ॥ 6 ॥

दस अंगुलों का एक 'क्षुद्रपद' होता है। (6)

द्वादश प्रादेश: ॥ 7 ॥

बारह अंगुलों का एक 'प्रादेश' होता है। (7)

पृथोत्तरयुगे त्रयोदशिके ॥ 8 ॥

'पृथ' और 'उत्तरयुग' यह दो नापें 13 अंगुलों की होती है। (8)

पदं पञ्चदश ॥ 9 ॥

'पद' 15 अंगुलों का होता है। (9)

अष्टाशीतिशतमीषा ॥ 10 ॥

188 अंगुलों की 'ईषा' होती है। (10)

चतु:शतमक्ष: ॥ 11 ॥

104 अंगुलों का 'अक्ष' होता है। (11)

षडशीतिर्युगम् ॥ 12 ॥

86 अंगुलों का 'युग' होता है। (12)

द्वात्रिंशज्जानु: ॥ 13 ॥

32 अंगुलों का 'जानु' होता है। (13)

षट्त्रिंशच्छम्याबाहू ॥ 14 ॥

'शम्या' और 'बाहू' यह दो नापें 36 अंगुलों की होती हैं। (14)

द्विपद: प्रक्रम: ॥ 15 ॥

दो पदों का (30 अंगुलों का) एक 'प्रक्रम' होता है। (15)

द्वौ प्रादेशावरत्नि: ॥ 16 ॥

दो प्रादेशों की (24 अंगुलों की) एक 'अरत्नि' होती है। (16)

अथाप्युदाहरन्ति ॥ 17 ॥

अब (नापों के विषय में) ऐसे भी कहते है कि - (17)

पदे युगे प्रक्रमेऽरत्नावियति शम्यायां च मानार्थेषु याथाकामीति ॥ 18 ॥

पद, युग, प्रक्रम, अरत्नि और शम्या यह नापें यथाकाम (चाहत के अनुसार) बदल सकती हैं। (18)

[यह नापें, उपर दी गई इकाई अंगुल नाप से लेते हैं तथा काम्य यज्ञों में यजमान के पुरुष नाप से भी ले सकते हैं।]

पञ्चारत्निः पुरुषः ॥ 19 ॥

पांच अरत्नियों का 'पुरुष' होता है। (19)

व्यामश्च ॥ 20 ॥

और 'व्याम' भी (20)

चतुररत्निर्व्यायामः ॥ 21 ।

चार अरत्नियों का 'व्यायाम' होता है। (21)

चतुरस्रं चिकीर्षन्यावच्चिकीर्षेत्तावतीᳬं रज्जुमुभयतः पाशां कृत्वा मध्ये लक्षणं करोति लेखामालिख्य ॥ 22 ॥

वर्ग खींचने का हो तो इसकी लम्बाई जितनी लम्बी रस्सी लेकर उसके दोनों सिरों को गांठ बांधकर उसके (रस्सी के लम्बाई के) मध्य में चिन्ह करें। (पूर्व-पश्चिम) रेखा (जमीन पर) खींचकर - (22)

[आकृति में 1-1 यह रेखा खींचकर]

तस्या मध्ये शङ्कुं निहन्यात् तस्मिन् पाशौ प्रतिमुच्य लक्षणेन मण्डलं परिलिखेत् विष्कम्भान्तयोः शङ्कू निहन्यात् ॥ 23 ॥

उसके मध्य में खुंटि ठोकें। इसे, रस्सी के दोनों सिरे बांधकर (रस्सी के मध्य में किए हुए) चिन्ह से वृत्त निकालें। वृत्त का परिघ जहाँ (पूर्व-पश्चिम) रेखा को काटता है वहाँ दो खुंटियाँ स्थपित करें। (23)

[अ वृत्त का केन्द्रबिन्दु है। रेखा 1-1 को वृत्त आ और इ पर काटता है। वहाँ खुंटियाँ ठोकें।]

पूर्वस्मिन्पाशं प्रतिमुच्य पाशेन मण्डलं परिलिखेत् ॥ 24 ॥

पूर्व दिशा की खुंटि को रस्सी का एक सिर बांधकर दूसरे सिरे से वृत्त खींचें। (24)

[शंकु आ केन्द्र लेकर वृत्त 3 निकालें ।]

एवमपरस्मिंश्स्ते यत्र समेयातां तेन द्वितीयं विष्कम्भमायच्छेत् ॥ 25 ॥

इस पद्धति से पश्चिम की तरफ (वृत्त खींचें और) जहाँ यह दोनों वृत्त एक दूसरे को काटते हैं उन्हें (रेखा से जोड़कर) दूसरा (उत्तर-दक्षिण) व्यास प्राप्त करें। (25)

[पश्चिम दिशा की तरफ की इ खुंटि को रस्सी का एक सिर बाँधकर दूसरे सिरे से वृत्त 4 खींचें। वृत्त 3 और 4 जहाँ काटते हैं, उन्हें जोड़ने वाली रेखा उत्तर-दक्षिण रेखा होती है।]

विष्कम्भान्तयोः शंकू निहन्यात् ॥ 26 ॥

(सूत्र 23 में दिये हुए) वृत्त को जहाँ यह रेखा काटती है वहाँ दो खुंटियाँ ठोकें। (26)

[ई और उ पर खुंटियाँ ठोकें]

पूर्वस्मिन्पाशौ प्रतिमुच्य लक्षणेन मण्डलं परिलिखेत् ॥ 27 ॥

पूर्व दिशा की खुंटि को रस्सी के दोनों सिरे बाँधकर (रस्सी के मध्य-) चिन्ह से वृत्त निकालें। (27)

[खुंटि आ केन्द्र लेकर वृत्त 6 निकालें]

एवं दक्षिणत एवं पश्चादेवमुत्तरतस्तेषां येऽन्त्याः संसर्गास्तच्चतुरस्रंश्संपद्यते ॥ 28॥)

इसी रीति से दक्षिण, पश्चिम और उत्तर की खुंटियाँ केन्द्र मानकर रस्सी के मध्य चिन्ह से वृत्त निकालें। ये वृत्त जहाँ एक दूसरे को काटते हैं उन्हें (इन बिन्दुओं को) जोड़ने से वर्ग प्राप्त होता है । (28)

अथापरम् ॥ 29 ॥

अब (वर्ग खींचने की) दूसरी (रीति कहता हूँ) (29)

प्रमाणाद् द्विगुणांश्रज्जुमुभयतः पाशां कृत्वा मध्ये लक्षणं करोति ॥ 30 ॥
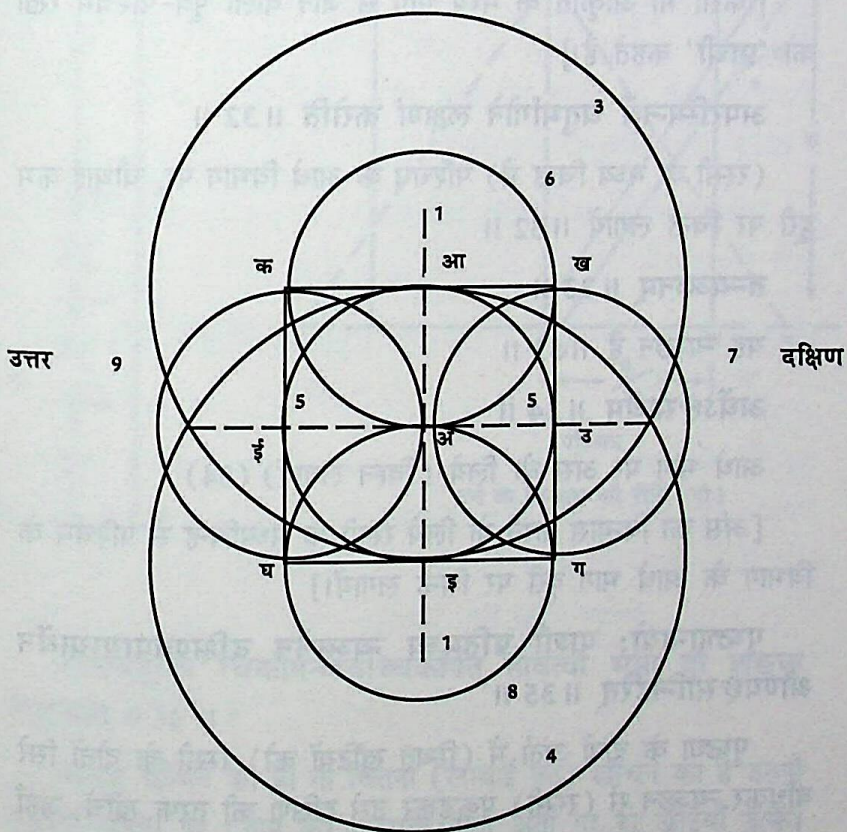
वर्ग के विन्यास की रीति (एक), सूत्र 1.22-25

प्रमाण वर्ग के लम्बाई से दुगनी लम्बी रस्सी लेकर उसके दोनों सिरों पर गांठ बाँधे और (रस्सी के) मध्य में चिन्ह लगाएं। (30)

सा प्राच्यर्थः ॥ 31 ॥

यह प्राची के (लम्बाई के) लिये । (39)

[किसी भी आकृति के मध्य भाग से जाने वाली पूर्व-पश्चिम रेखा को 'प्राची' कहते है।]

अपरस्मिन्नर्धे चतुर्भागोने लक्षणं करोति ॥ 32 ॥

(रस्सी के मध्य चिन्ह से) पश्चिम के आधे विभाग पर, चौथाई कम दूरी पर चिन्ह लगायें ॥ 32 ॥

तन्न्यञ्छनम् ॥ 33 ॥

यह न्यञ्छन है ॥ 33 ॥

अर्धेऽथ्ंसार्थम् ॥ 34 ॥

आधे भाग पर अंस के लिये (चिह्न लगायें) (34)

[अंस का विन्यास करने के लिये रस्सी के मध्यचिन्ह से पश्चिम के विभाग के आधे भाग दूरी पर चिन्ह लगायें।]

पृष्ठ्यान्तयोः पाशौ प्रतिमुच्य न्यञ्छनेन दक्षिणापायम्यार्धेन श्रोण्यथ्ंसान्निर्हरेत् ॥ 35 ॥

पृष्ठ्या के दोनों अंतो में (स्थित खुंटियों को) रस्सी के दोनों सिरे बाँधकर न्यञ्छन से (रस्सी) पकड़कर उसे दक्षिण की तरफ खींचें, जहाँ मध्य चिह्न आता है (याने जहाँ पृष्ठ्या से $\frac{क्ष}{2}$ अंतर होता है) वहाँ श्रोणी होती है। इसी रीति से श्रोणी और अंस का विन्यास करें। (और वर्ग निकालें) । (35)

[कोई भी चतुर्भुज के दक्षिण-पश्चिम और उत्तर-पश्चिम सिरों को श्रोणी कहते हैं और दक्षिण-पूर्व और उत्तर-पूर्व सिरों को अंस कहते हैं।]

वर्ग के विन्यास की रीति (दो)
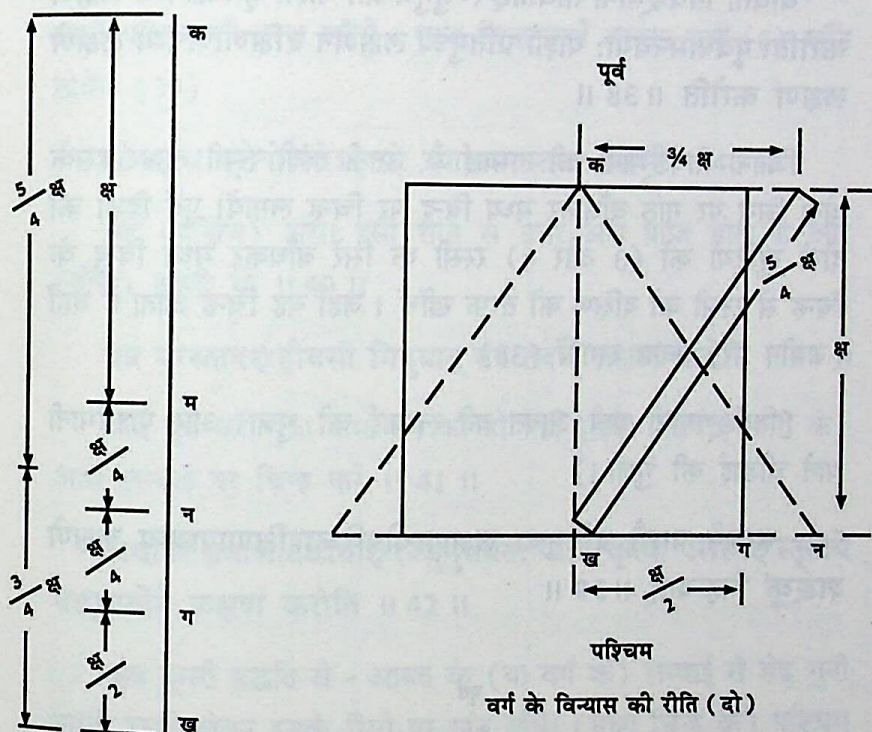
दीर्घचतुरस्रं चिकीर्षन्यावच्चिकीर्षेत् तावत्यां भूमौ द्वौ शङ्कू निहन्यात् ॥ 36 ॥

आयत खींचने का हो तो जितना (लम्बाई का) खींचने का है उतनी लम्बाई जमीन पर (नाप कर) उसके दोनों अंतों पर दो खुंटियाँ ठोकें। (36)

[खुंटियाँ 1 और 2]

द्वौ द्वौ एकैकमभितः समौ ॥ 37 ॥

इन खुंटियों के दोनों ओर (पूर्व और पश्चिम दिशाओं की तरफ) समान दूरी पर दो-दो खुंटियाँ (स्थापित करें) (37)

[खुंटियाँ 3,4 और 7,8]

यावती तिर्यङ्मानी तावतीॅं रज्जुमुभयतः पाशां कृत्वा मध्ये लक्षणं करोति। पूर्वेषामन्त्ययोः पाशौ प्रतिमुच्य लक्षणेन दक्षिणापायम्य लक्षणे लक्षणं करोति ॥ 38 ॥

जितनी तिर्यङ्मानी की लम्बाई है, उतनी लंबी रस्सी लेकर इसके दोनों सिरो पर गांठ बाँधकर मध्य बिन्दु पर चिन्ह लगायें। पूर्व दिशा की दोनों खुंटियों को (3 और 4) रस्सी के सिरे बाँधकर मध्य बिन्दु के चिन्ह से रस्सी को दक्षिण की तरफ खींचें। जहाँ यह चिन्ह आता है वहाँ (जमीन पर) चिन्ह लगायें (38)

[तिर्यङ्गमानी याने आयत की लम्बाई की भुजा। ओर पाश्वर्मानी याने चौड़ाई की भुजा।]

मध्यमे पाशौ प्रतिमुच्य लक्षणस्योपरिष्टाद्दक्षिणापायम्य लक्षणे शङ्कुं निहन्यात् ॥ 39 ॥

आयत के विन्यास की रीति (एक)
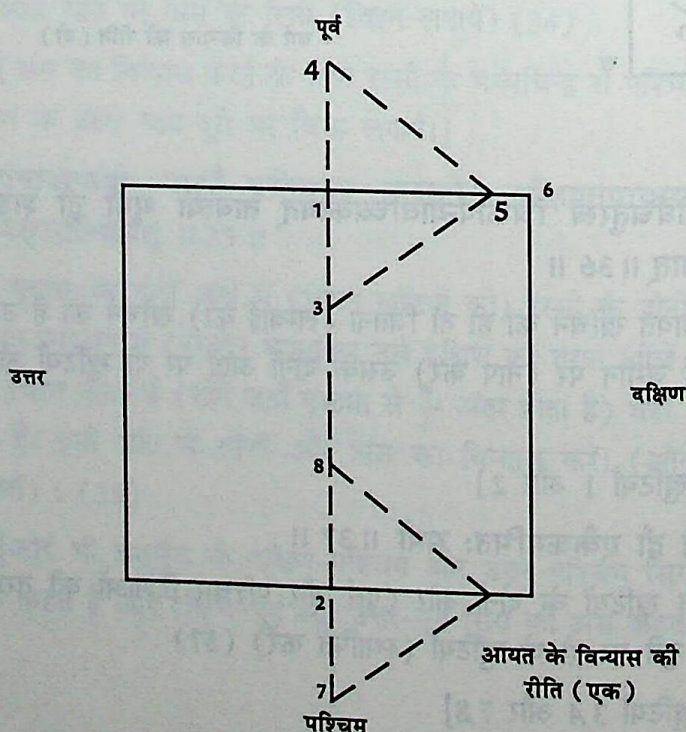
मध्य खुंटि को (1) रस्सी के दोनों सिरे बाँधें और मध्य चिन्ह से रस्सी दक्षिण की तरफ खींचें । मध्य चिन्ह जहाँ आयेगा वहाँ (6) खुंटि ठोकें। (39)

सोऽꣳस एतेनोत्तरोऽꣳसो व्याख्यातस्तथा श्रोणी ॥ 40 ॥

यह (दक्षिण) अंस। इसी रीति से उत्तर अंस प्राप्त होता है और (दोनों) श्रोणी भी ॥ 40 ॥

यत्र पुरस्तादꣳहीयसी मिनुयात् तत्र तदर्धे लक्षणं करोति ॥ 41 ॥

जहाँ पूर्व की भुजा कम नाप की हो वहाँ इसके (तिर्यङ्गमानी के) आधे लम्बाई पर चिन्ह करें ॥ 41 ॥

अथापरं प्रमाणादध्यर्धाꣳरज्जुमुभयतः पाशां कृत्वा परस्मिꣳस्तृतीये षड्भागोने लक्षणं करोति ॥ 42 ॥

अब दूसरी पद्धति से – आयत के (या वर्ग के) लम्बाई से डेढ़ गुनी लम्बी रस्सी लेकर इसके सिरो पर गांठ बाँधें। (मध्य चिन्ह के) पश्चिम की ओर (रस्सी के) तीन भाग करें और उसमे से इसका छठा भाग (तीसरे भाग का छठा भाग) घटाकर वहाँ चिन्ह लगायें ॥ 42 ॥

तन्यञ्छनम् ॥ 43 ॥

यह न्यञ्छन है। ॥ 43 ॥

इष्टेꣳसार्थम्। पृष्ठ्यान्तयोः पाशौ प्रतिमुच्य न्यञ्छनेन दक्षिणापायम्येष्टेन श्रोण्यꣳसान्निर्हरेत् ॥ 44 ॥

अंस के लिये ईष्ट का चिन्ह लगायें। आयत की आधी लम्बाई इतनी दूरी पर रस्सी पर चिन्ह लगायें। पृष्ठया के दोनों अंतों पर रस्सी के सिरे बाँधें और न्यञ्छन से दक्षिण की तरफ खींचें, ईष्ट के चिन्ह से (दोनों) श्रोणी और (दोनों) अंस प्राप्त करें। (44)
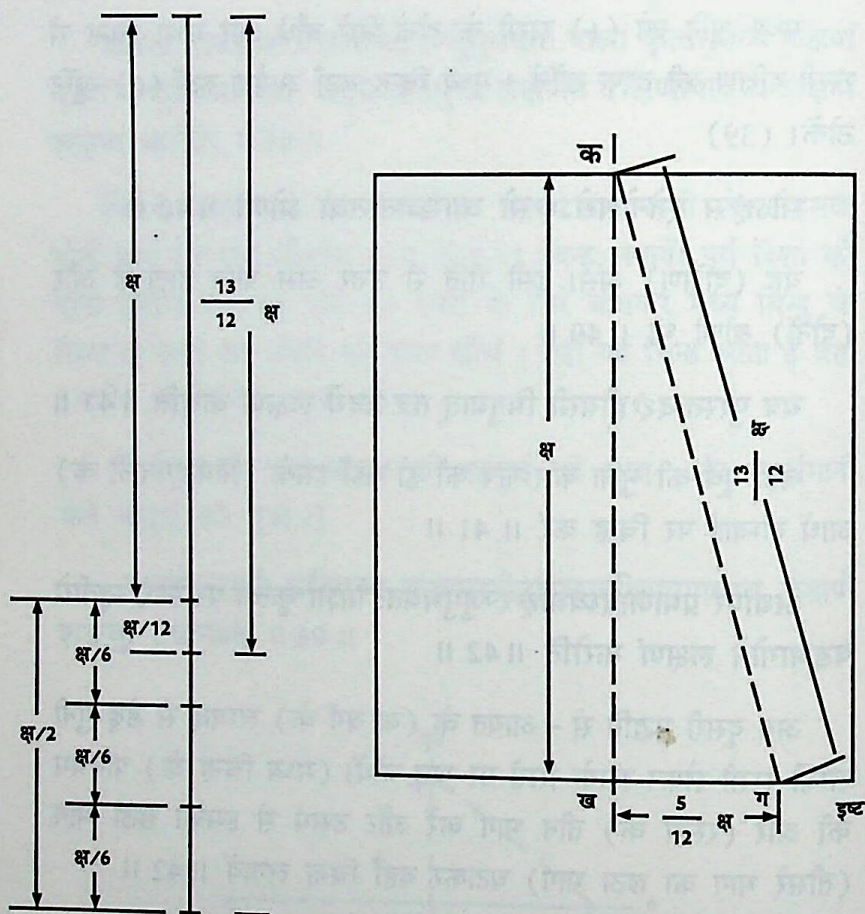
आयत और वर्ग के विन्यास की रीति

समचतुरस्रस्याक्ष्णयारज्जुर्द्विस्तावतीं भूमिं करोति ॥45॥

वर्ग के अक्ष्णयारज्जु के वर्ग का क्षेत्रफल इसके (पहले वर्ग के) क्षेत्रफल से दुगुना होता है। (45)

[वर्ग के अक्ष्णयारज्जु को याने कर्ण को इसलिये 'द्विकरणी' कहते हैं।]

प्रमाणं तिर्यग् द्विकरण्यायामः तस्याक्ष्णयारज्जुस्त्रिकरणी॥ 46॥

(आयत के) तिर्यङ्मानी की लम्बाई द्विकरणी इतनी (याने प्रमाण वर्ग के कर्ण के समान) लें। (इस आयत की) अक्ष्णयारज्जु त्रिकरणी होती है। (46)

[इस आयत के कर्ण के वर्ग का क्षेत्रफल प्रमाण वर्ग के क्षेत्रफल से तीन गुना होता है।]

तृतीय करण्येतेन व्याख्याता नवमस्तु भमेर्भागो भवतीति ॥ 47 ॥

इस रीति से तृतीय करणी प्राप्त करने की पद्धति कही गई है। प्रमाण वर्ग के क्षेत्रफल के $\frac{1}{9}$ क्षेत्रफल के वर्ग करें, (नौ समक्षेत्र वर्ग प्राप्त होते हैं) (ऐसे तीन समक्षेत्र) वर्गों के क्षेत्रफलों का योग करके आने वाले वर्ग की भुजा की लम्बाई को तृतीय करणी कहते हैं। (47)

दीर्घचतुरस्रस्याक्ष्णयारज्जुः पार्श्वमानी तिर्यङ्मानी च यत् पृथग्भूते कुरुतस्तदुभयं करोति ॥ 48 ॥

आयत के अक्ष्णयारज्जु के वर्ग का क्षेत्रफल, पार्श्वमानी और तिर्यङ्गमानियों के अलग-अलग वर्गों के क्षेत्रफलों के योग के समान होता है (48)

[यह है प्रसिद्ध बोधायन (आज का पायथागोरस) सिद्धान्त।]

त्रिकचतुष्कयोः द्वादशिकपञ्चिकयोः पञ्चदशिकाष्टिकयोः सप्तिकचतुर्विंशिकयोः द्वादशिकपञ्चत्रिंशिकयोः पञ्चदशिक-षट्त्रिंशिकयोरित्येतासु उपलब्धिः ॥ 49 ॥

(ऊपर दिये हुए सूत्र का) प्रत्यक्ष प्रमाण उन आयतों से मिलता है जिनके भुजाओं की लम्बाई तीन और चार, 12 और पांच, 15 और आठ, सात और 24, 12 और 35, और 15 और 36 होती है। (49)

नाना चतुरस्रे समस्यन्कनीयसः करण्या वर्षीयसो वृध्रमुल्लिखेद् वृध्रस्याक्ष्णयारज्जुः समस्तयोः पार्श्वमानी भवति ॥ 50 ॥

विभिन्न क्षेत्रफलों के दो वर्गों के क्षेत्रफलों के योग जितना क्षेत्रफल के वर्ग का विन्यास करना हो तो छोटे वर्ग की भुजाऐं बड़े वर्ग की भुजाओं पर रखकर वहाँ चिन्ह लगायें। जो आयत प्राप्त होता है इसकी अक्ष्णयारज्जु दिए हुए दोनों वर्गों के क्षेत्रफलों के योग इतना क्षेत्रफल होने वाले वर्ग की पार्श्वमानी जितनी होती है। (50)

[अ आ इ उ और क ख ग घ ये दो विभिन्न क्षेत्रफलों के वर्ग हैं। इन दोनों वर्गों के क्षेत्रफलों के योग जितना क्षेत्रफल का वर्ग निकालना है।)
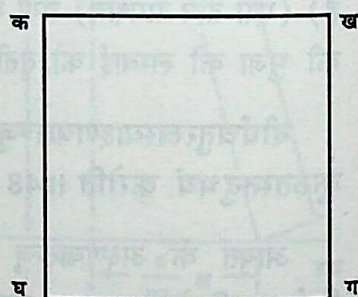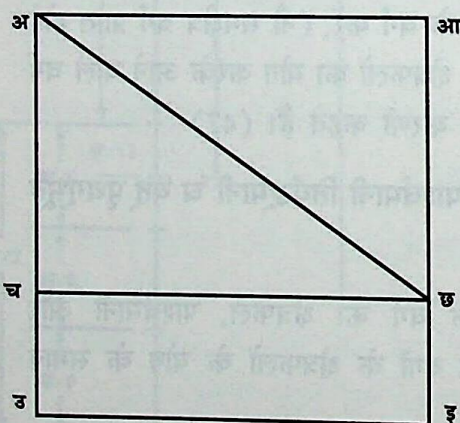
अच = कघ, आछ = खग

अछ ^{2} = अच ^{2} + चछ ^{2}

= कघ ^{2} + अआ ^{2}]

चतुरस्राच्चतुरस्रं निर्जिहीर्षिन्यावन्निर्जिहीर्षेत्तस्य करण्या वर्षीयसो वृध्रमुल्लिखेत्। वृध्रस्य पार्श्वमानीमक्ष्णयेतरत्पार्श्वमुपसंहरेत् सा यत्र निपतेत्तदपच्छिन्द्याच्छिन्नया निरस्तम् ॥ 51 ॥

(बड़े) वर्ग के क्षेत्रफल से (छोटे) वर्ग का क्षेत्रफल घटाकर शेष क्षेत्रफल का वर्ग खींचना हो तो बड़े क्षेत्रफल के वर्ग की भुजाओं पर, जिसका क्षेत्रफल घटाना है, उस वर्ग की भुजाऐं रखकर वहाँ चिन्ह लगायें। बड़े वर्ग की पार्श्वमानी अक्ष्णया जैसी दूसरी (च छ) पार्श्वमानी पर लाएँ। वह जहाँ काटती हो, उसके बाहर का भाग (ज छ) निकाल दें।

शेष भाग पर (च ज) होने वाला वर्ग का क्षेत्रफल दिये हुए वर्गों के क्षेत्रफलों के अंतर जितना होता है। (51)

[वर्ग अआईउ के क्षेत्रफल से, वर्ग 'क ख ग घ' का क्षेत्रफल घटाकर शेष क्षेत्रफल का वर्ग निकालने के लिये
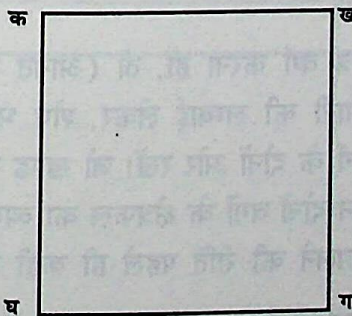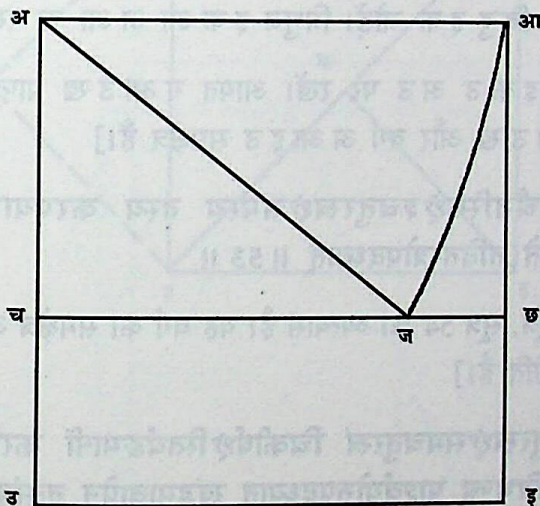
अच = कघ, आछ=खग, अज=अआ

$चज^2 = अज^2 - अच^2 = अआ^2 - कघ^2$]

समचतुरस्रं दीर्घचतुरस्रं चिकीर्षंस्तदक्ष्णयापच्छिद्य भागं द्वेधा विभज्य पार्श्वयोरुपदध्यात् यथायोगम् ॥ 52 ॥

वर्ग का समक्षेत्र आयत निकालना हो, तो अक्ष्णयरज्जु से दो (सम) भाग करें और इनमें से एक भाग के (दूसरे अक्ष्णयरज्जु से) और दो भाग करें। वे दो (त्रिभुज) भाग वर्ग के दोनों ओर चाहिए वैसे रखें। (52)

[वर्ग अ आ इ उ का समक्षेत्र आयत करना है। उ आ अक्ष्णया है। क इसका मध्य बिन्दु इ क जोड़ें। त्रिभुज इ क आ अ आ पर रखें।

त्रिभुज इ क उ अ उ पर रखें। आयत ग आ उ ख प्राप्त होता है। आयत ग आ उ ख और वर्ग अ आ इ उ समक्षेत्र हैं।]

अपि चैतस्मिंश्चतुरस्रंसमस्य तस्य करण्यापच्छिद्या-द्यदतिशिष्यते तदितरत्रोपदध्यात् ॥ 53 ॥

[यह सूत्र, सूत्र 54 का व्यत्यास है। यह वर्ग का समक्षेत्र आयत करने की दूसरी रीति है।]

दीर्घचतुरस्रंसमचतुरस्रं चिकीर्षंस्तिर्यङ्मानीं करणीं कृत्वा शेषं द्वेधा विभज्य पार्श्वयोरुपदध्यात् खंडमावापेन तत्संपूरयेत् तस्य निर्हार उक्तः ॥ 54 ॥

आयत का समक्षेत्र वर्ग करना हो, तो (आयत की) तिर्यङ्गमानी इतनी वर्ग की पार्श्वमानी की लम्बाई लेकर, शेष भाग के दो (सम) विभाग करें और वे वर्ग के दोनों ओर रखें। जो खण्ड रहता है वह ज्यादा वर्ग लेकर पूरा करें। इन दोनों वर्गों के क्षेत्रफल का व्यवकलन करके शेष क्षेत्रफल का वर्ग निकालने की रीति पहले ही कही गई है। (54)

[कखगघ यह दिया हुआ आयत। क च = क घ = घ छ। च छ जोड़ें। ज चख का मध्य बिंदु और झ छग का मध्य बिंदु है। ज झ जोड़ें। आयत ज ख ग झ कच पर ऐसे रखें कि जझ कच पर आयेगी और ख ग ट ठ पर आयेगी। ठडजच यह आगंतुक वर्ग खींचें।

आयत क ख ग घ = वर्ग ट ड झ घ - वर्ग ठ ड ज च।

अ
आ
क
उ
इ

ट
ठ
ड
क
च
ज
ख
घ
छ
झ
ग
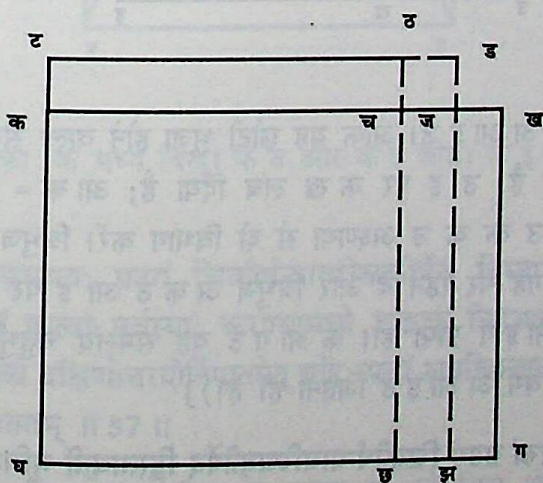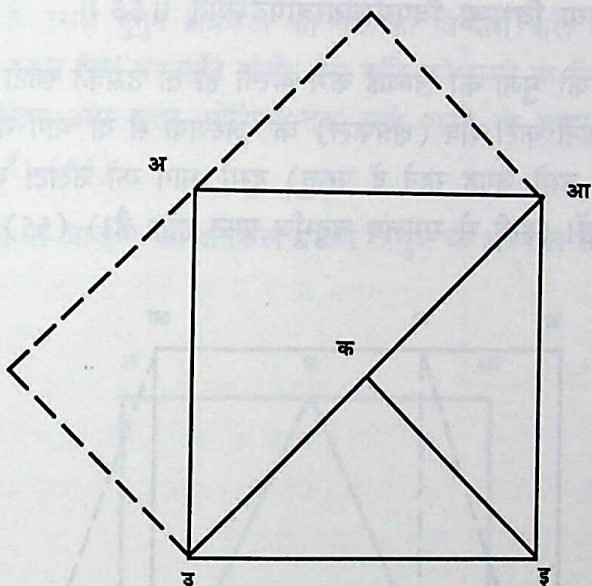
चतुरस्रमेकतोऽणिमच्चिकीर्षन्नणिमतः करणीं तिर्यङ्मानीं कृत्वा शेषमक्ष्णया विभज्य विपर्यस्येतरत्रोपदध्यात् ॥ 55 ॥

वर्ग की भुजा की लम्बाई कम करनी हो तो उसकी छोटी भुजा को तिर्यङ्गमानी करें। शेष (क्षेत्रफल) के, अक्ष्णया से दो भाग करें। (एक भाग को उसी जगह रहने दें परन्तु) दूसरे भाग को उलटा करके वह इतरत्र रखें। (इसी से समलंब चतुर्भुज प्राप्त होता है।) (55)
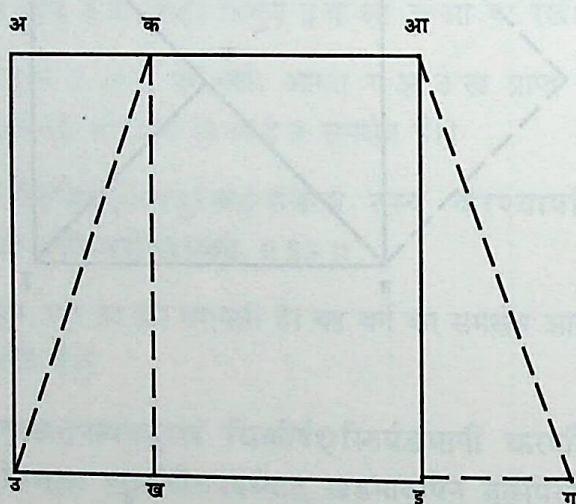
[वर्ग अ आ ई उ। आक यह छोटी भुजा होने वाला समलंब चतुर्भुज निकालना है। उ इ पर क ख लंब दिया है; आ क = इ ख। आयत अ क ख उ के क उ अक्ष्णया से दो विभाग करें। त्रिभुज क ख उ को उसके जगह पर रहने दें और त्रिभुज अ क उ आ इ पर ऐसा रखें कि त्रिभुज आ इ ग प्राप्त हो। क आ ग उ यह समलंब चतुर्भुज है। इसका क्षेत्रफल वर्ग अ आ इ उ जितना ही है।)]

चतुरस्रं प्रउगं चिकीर्षन्यावच्चिकीर्षेद् द्विस्तावतीं भूमिꣳ समचतुरस्रां कृत्वा पूर्वस्याः करण्या मध्ये शङ्कुं निहन्यात् तस्मिन्पाशौ प्रतिमुच्य दक्षिणोत्तरयोः श्रोण्योर्निपातयेत् बहिःस्पन्द्यमपच्छिन्द्यात् ॥ 56 ॥

वर्ग का (समक्षेत्र) त्रिभुज करना हो तो जिस क्षेत्रफल का त्रिभुज खींचना है उससे दुगुने क्षेत्रफल का वर्ग का विन्यास करें। उसके पूर्व भुजा के मध्य बिंदू पर खूंटि ठोकें। इस खूंटि को रस्सी के सिरे बाँधकर रस्सी दक्षिण और उत्तर श्रोणियों तक रखें। रस्सी के बाहर का भाग निकाल दें। (56)

[वर्ग अ आ ई उ का क्षेत्रफल प्रमाण त्रिभुज के क्षेत्रफल से दुगुना है।
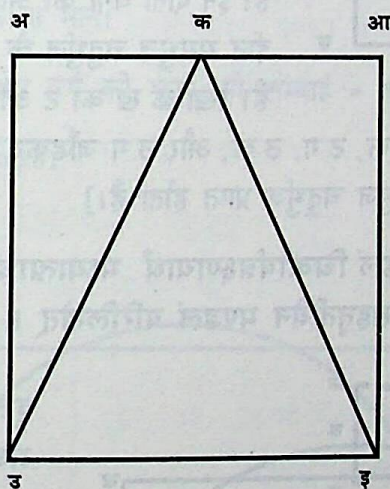
अ आ का क मध्य बिन्दू। क उ और क इ जोड़ें। क इ उ यह इष्ट त्रिभुज]

चतुरस्त्रमुभयतः प्रउगं चिकीर्षन्यावच्चिकीर्षेद् द्विस्तावतीं भूमिं दीर्घचतुरस्त्रां कृत्वा पूर्वस्याः करण्यामध्ये शङ्कुं निहन्यात् तस्मिन् पाशौ प्रतिमुच्य दक्षिणोत्तरयोर्निपातयेत् बहिःस्पन्द्यं अपच्छिन्द्यात् एतेनापरं प्रउगं व्याख्यातम् ॥ 57 ॥

वर्ग का (समक्षेत्र) समचतुर्भुज करना हो, तो जिस क्षेत्रफल का चतुर्भुज का विन्यास करना है उससे दुगुना क्षेत्रफल का आयत निकालें और पूर्व की भुजा के मध्य बिन्दू पर खुंटि ठोकें। इस रस्सी के सिरे बाँध
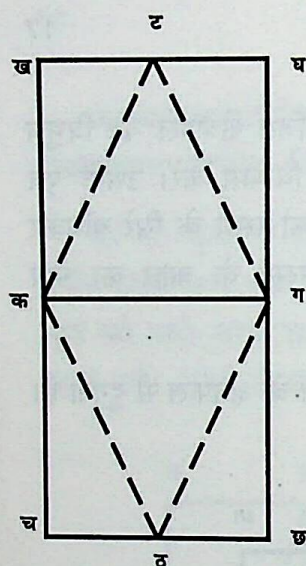
कर दक्षिण और उत्तर श्रोणियों तक रखें।) (दूसरे वर्ग में इस रीति का उपयोग करें।) रस्सियों के बाहर का भाग निकाल दें। इसी से दूसरे प्रकार के प्रउग के (समभुज चतुर्भुज के) विन्यास की पद्धति कही गई। (57)

[वर्ग क ख ग घ और वर्ग क ग छ च एक दूसरे के संपर्क में ऐसे रखे हैं कि भुजा क ग दोनों वर्गों के लिये उभयनिष्ठ है। इन दोनों वर्गों का अलग-अलग क्षेत्रफल ईष्ट समभुज चतुर्भुज के क्षेत्रफल के समान है। रेखा क ख का ट और रेखा च छ का ठ मध्य बिन्दू है। ट क, ट ग, ठ क, और ठ ग जोड़कर ट ग ठ क यह ईष्ट क्षेत्रफल का समभुज चतुर्भुज प्राप्त होता है।]

चतुरस्रं मण्डलं चिकीर्षन्नक्ष्णयार्धं मध्यात्प्राचीमभ्यापातयेद्यदतिशिष्यते तस्य सहतृतीयेन मण्डलं परिलिखेत् ॥ 58 ॥

वर्ग का समक्षेत्र वृत्त, सूत्र 1.58
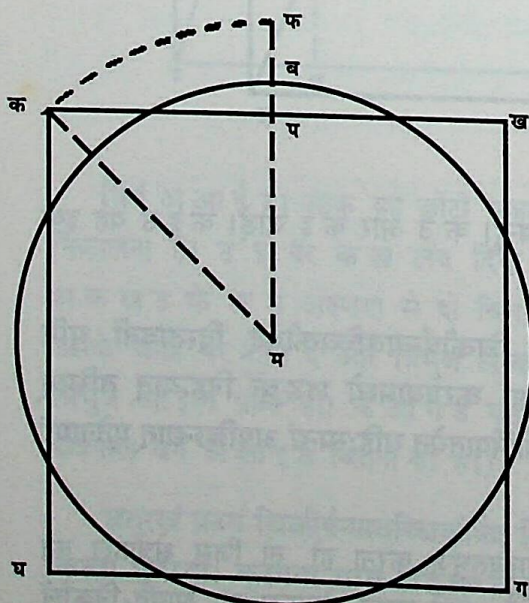
वर्ग का (समक्षेत्र) वृत्त खींचना हो तो अक्ष्णया की आधी लम्बाई जितनी (लम्बी) रस्सी (वर्ग के) मध्य बिन्दु से प्राची रेखा पर रखें और (रस्सी का) जो भाग (पार्श्वमानी के) बाहर आता है उसके एक तिहाई भाग के साथ (इस त्रिज्या से) वृत्त निकालें। (58)

[पब = $\frac{1}{3}$ पफ]

मण्डलं चतुरस्रं चिकीर्षन्विष्कम्भमष्टौ भागान्कृत्वा भागमेकोनत्रिंशधा विभज्याष्टाविंशतिभागानुद्धरेद् भागस्य च षष्ठमष्टमभागोनम् ॥ 59 ॥

वृत्त का (समक्षेत्र) वर्ग निकालना हो तो (वृत्त के) व्यास के आठ भाग करें, इनमें से एक भाग के (आठवें भाग के) 29 विभाग करें और इनमें से 28 भाग व्यवकलित करें और इस विभाग का छठा भाग घटाकर इसमें इसके आठवें भाग का योग करें। (59)

[वृत्त का व्यास क्ष मानें।

वृत्त के समक्षेत्र वर्ग की भुजा की लम्बाई = क्ष $\left(\frac{7}{8} + \frac{1}{8x29} - \frac{1}{8x29x6} + \frac{1}{8x29x6x8}\right]$.
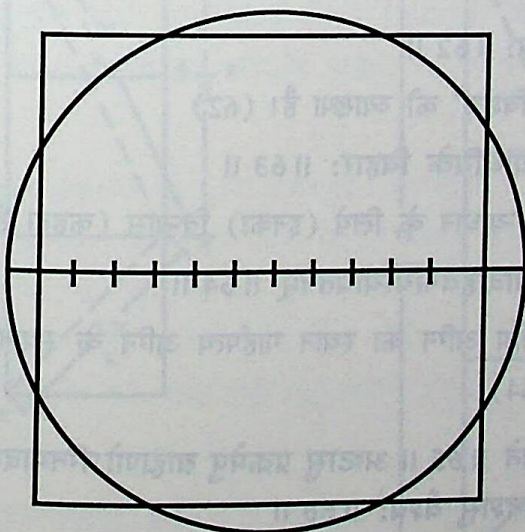
वृत्त का समक्षेत्र वर्ग, सूत्र 1.60

अपि वा पञ्चदशभागान्कृत्वा द्वावुद्धरेदेषानित्या चतुरस्त्रकरणी ॥60॥

अथवा (वृत्त के व्यास के) 15 भाग करें और इनमें से दो भाग घटाकर (शेष लम्बाई समक्षेत्र) वर्ग की, स्थूलमान से, भुजा (की लम्बाई) होती है। (60)

प्रमाणं तृतीयेन वर्धयेत्तच्च चतुर्थेनात्मचतुस्त्रिंशोनेन ॥61॥

(वर्ग की) प्रमाण भुजा की लम्बाई की (इसके) एक तिहाई से वृद्धि करें और इसमें इसका (एक तिहाई भाग का) चौथाई भाग मिला दें और इसका $\frac{1}{34}$ भाग व्यवकलित करें। (61)

[यह सूत्र $\sqrt{2}$ की व्याख्या करता है।

$$\sqrt{2}=1+\frac{1}{3}+\frac{1}{3x4}-\frac{1}{3x4x34}=1.414256$$

इस सूत्र से वर्ग की भुजा और उसके कर्ण का संबंध भी दिया है।]

सविशेषः ॥ 62 ॥

यह 'सविशेष' की व्याख्या है। (62)

अथाग्न्याधेयिके विहारः ॥ 63 ॥

अब अग्न्याधान के लिये (इनका) विन्यास (कहता हूँ)। (63)

गार्हपत्यादाहवनीयस्यायतनम् ॥ 64 ॥

आहवनीय अग्नि का स्थान गार्हपत्य अग्नि के स्थान से निश्चित होता है। (64)

विज्ञायते ॥ 65 ॥ अष्टासु प्रक्रमेषु ब्राह्मणोऽग्निमादधीतैकादशसु राजन्यो द्वादशसु वैश्यः ॥ 66 ॥

बताया जाता है कि- (65) गार्हपत्य से आहवनीय अग्नि की दूरी ब्राह्मण यजमान के लिये आठ प्रक्रम है, राजा के लिये ग्यारह प्रक्रम और वैश्य के लिये बारह प्रक्रम है। (66)

आयामतृतीयेन त्रीणि चतुरस्राणि अनूचीनानि कारयेद् अपरस्योत्तरस्याꣳश्रोण्यां गार्हपत्यस्तस्यैव दक्षिणेꣳसेऽन्वाहार्यपचनः पूर्वस्योत्तरेऽꣳस आहवनीय इति ॥ 67 ॥

गार्हपत्य से आहवनीय अग्नि की दूरी की एक तिहाई लम्बी भुजा के, और एक दूसरे के सम्पर्क में हैं, ऐसे तीन वर्ग खींचें। पश्चिम की तरफ के वर्ग के उत्तर श्रोणी पर गार्हपत्य अग्नि का स्थान होता है। इसी वर्ग के दक्षिण अंस पर अन्वाहार्यपचन (दक्षिणाग्नि) होता है। पूर्व की तरफ के वर्ग के उत्तर अंस पर आहवनीय (अग्नि का स्थान) होता है। (67)
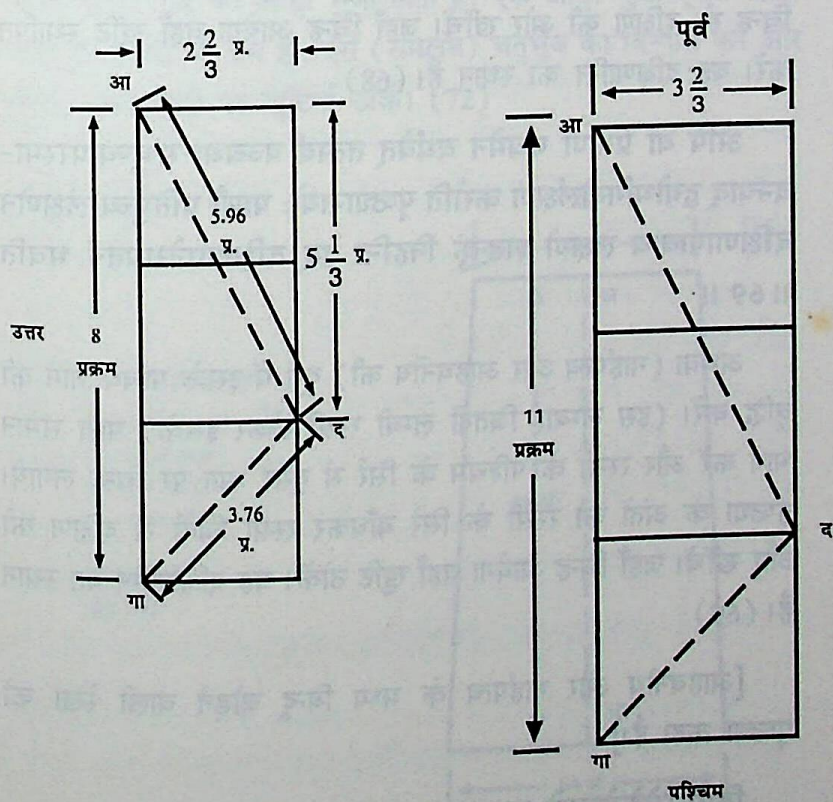
अपि वा गार्हपत्याहवनीययोरन्तरालं पंचधा षोढा वा संभुज्य षष्ठंसप्तमं वा भागमागन्तुकमुपसमस्य समं त्रैधं विभज्य पूर्वस्मादन्त्याद् द्वयोर्भागयोर्लक्षणं करोति। गार्हपत्याहवनीययोरन्तौ नियम्य लक्षणेन दक्षिणापायम्य लक्षणे शङ्कुं निहन्ति तद् दक्षिणाग्नेरायतनं भवति (68)

अथवा गार्हपत्य और आहवनीय दूरी के पांच या छः भाग करें और उनमें छठा या सातवां भाग (जैसे भाग किये हो उस प्रमाण से) मिलाकर, इसके तीन समान भाग करें। रस्सी के पूर्व के सिरे से दूसरे भाग पर (याने रस्सी के $\frac{2}{3}$ लम्बाई पर) चिन्ह लगायें। गार्हपत्य और आहवनीय के (मध्य बिंदुओं पर स्थित खूंटियों को) रस्सी के सिरे बाँधकर इसे, चिन्ह से, दक्षिण की ओर खींचें। जहाँ चिन्ह आयेगा वहाँ खूंटि स्थापित करें। वह दक्षिणाग्नि का स्थान है। (68)

अपि वा प्रमाणं पंचमेन वर्धयेत् तत्सर्वं पञ्चधा संभुज्यापरस्मा-दन्त्याद् द्वयोर्भागयोर्लक्षणं करोति पृष्ठ्यान्तयोः पाशौ प्रतिमुच्य लक्षणेन दक्षिणापायम्य लक्षणे शङ्कुं निहन्ति तद् दक्षिणाग्नेरायतनं भवति ॥69॥

अथवा (गार्हपत्य और आहवनीय की) दूरी में इसके पांचवे भाग की वृद्धि करें। (इस लम्बाई जितनी लम्बी रस्सी लेकर इसके) पांच समान भाग करें और रस्सी के पश्चिम के सिरे से दूसरे भाग पर चिन्ह लगायें। पृष्ठ्या के अंतों को रस्सी के सिरे बाँधकर रस्सी चिन्ह से दक्षिण की ओर खींचें। जहाँ चिन्ह आयेगा वहाँ खुंटि ठोकें। यह दक्षिणाग्नि का स्थान है। (69)

[आहवनीय और गार्हपत्य के मध्य बिन्दू जोड़ने वाली रेखा को पृष्ठ्या कहा है।]

विपर्यस्येतेनोत्करो व्याख्यातः ॥70॥

उलट पद्धति से उत्कर का स्थान मिलता है, (70)

अपरेणाहवनीयं यजमानमात्री भवतीति दार्शपौर्णमासिकाया वेदेर्विज्ञायते ॥ 71 ॥

ज्ञात हैं कि दार्शपौर्णमासिक यज्ञ की वेदि (की प्राची) यजमान के नाप की होती है और वह आहवनीय अग्नि के पश्चिम की ओर होती है। (71)

तस्यास्त्रिभागोनं पश्चात् तिरश्ची तस्या एवार्धं पुरस्तात् तिरश्च्यवं दीर्घचतुरस्त्रमेकतोऽणिमद्विहृत्य स्त्रक्तिषु शङ्कून्निहन्यात् ॥ 72 ॥

इसके (प्राची की लम्बाई के) एक तिहाई भाग से कम लम्बी पश्चिम की आड़ी भुजा होती है। और इसके (प्राची की लम्बाई के) आधी लम्बी पूर्व की आड़ी भुजा होती है। एक आड़ी भुजा दूसरी आड़ी भुजा से लम्बाई में कम हो, ऐसे (समलंब) चतुर्भुज का विन्यास करें और इसके चारों सिरों पर खुंटियाँ ठोकें। (72)

प्राची = 96 अंगुल

पश्चिम भुजा = $96 - \frac{1}{3} \times 96$

= 64 अंगुल

पूर्व भुजा $\frac{1}{2} \times 96$

= 48 अंगुल

यजमानमात्री

सूत्र 1.72
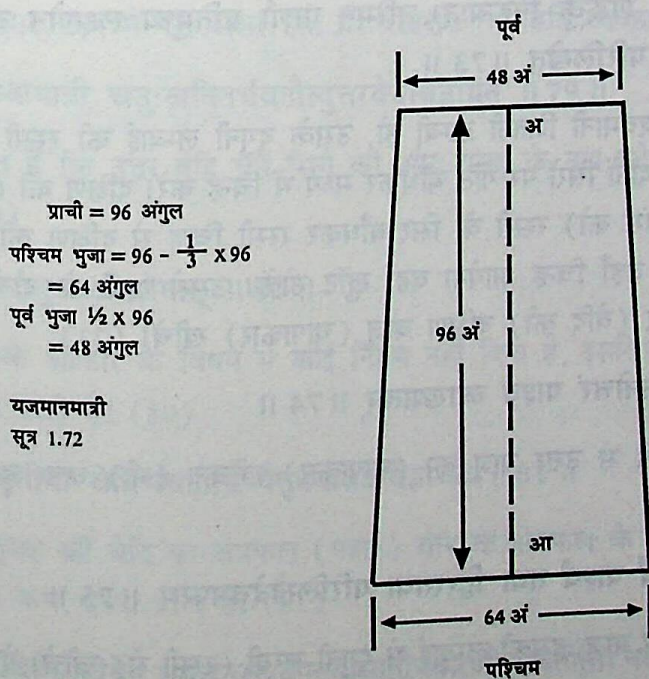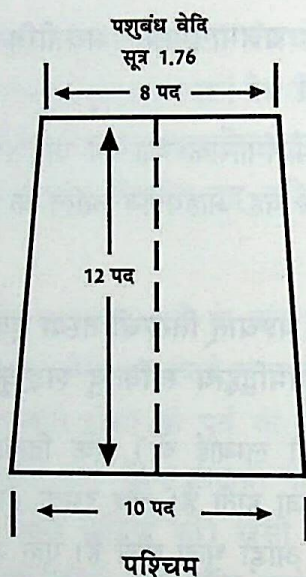
यावती पार्श्वमानी द्विरभ्यस्ता तावतीं रज्जुमुभयतः पाशां कृत्वा मध्ये लक्षणं करोति दक्षिणयोः पाशौ प्रतिमुच्य लक्षणेन दक्षिणापायम्य लक्षणे शङ्कुं निहन्यात्। तस्मिन् पाशौ प्रतिमुच्य लक्षणेन दक्षिणं पार्श्वं परिलिखेत् ॥ 73 ॥

पार्श्वमानी जितनी लम्बी हो, उसके दुगुनी लम्बाई की रस्सी लेकर इसके दोनों सिरों पर गांठ बाँधकर मध्य में चिन्ह करें। दक्षिण की (श्रोणी और अंस को) रस्सी के सिर बाँधकर रस्सी चिन्ह से दक्षिण की तरफ खींचें। जहाँ चिन्ह आयेगा वहाँ खुंटि ठोकें। उससे रस्सी के दोनों सिरे बाँधकर (वेदि की) दक्षिण बाजू (चापाकार) खींचें। (73)

एतेनोत्तरं पार्श्वं व्याख्यातम् ॥ 74 ॥

इसी से उत्तर बाजू का (चापाकार) खींचना (भी) कहा गया है। (74)

पूर्वं पार्श्वं तया द्विरस्तया परिलिखेदेवमपरम् ॥ 75 ॥

पूर्व बाजू, इसकी लम्बाई से दुगुनी लम्बी (रस्सी से) खींचें। ऐसी ही पश्चिम बाजू (खींचें) (75)

दशपदा पश्चात्तिरश्ची द्वादशपदा प्राच्यष्टपदा पुरस्तात् तिरश्चीति पाशुबन्धिकाया वेदेर्विज्ञायते। मानयोगस्तस्या व्याख्यातः ॥ 76 ॥

पशुबन्ध यज्ञ के वेदि की पश्चिम भुजा दस पद, प्राची (पूर्व-पश्चिम लम्बाई) 12 पद और पूर्व की भुजा आठ पद लंबी होती है। इसकी नापें और विन्यास की रीति कही गई है। (76)

रथसंमितेत्येकेषाम् ॥ 77 ॥

कुछ लोगों के मतानुसार (वह वेदि की) नापें रथ जैसी होती हैं। (77)

विराट् संपन्नेत्येकेषाम् ॥ 78 ॥

कुछ लोगों के मतानुसार (वह वेदि वर्गाकार होकर) इसके भुजाओं की लम्बाई दस पद है। (78)

[विराट् छन्द में दस अक्षर होते हैं। दशाक्षरा विराडिति व्यवहारात्।]

शम्यामात्री चतुःस्रक्तिर्भवतीत्युत्तरवेदेर्विज्ञायते ॥ 79 ॥

ज्ञात हैं कि उत्तर वेदि चार सिरों की और शम्या के नाप की होती है। (79)

समचतुरस्राविशेषात् ॥ 80 ॥

इसके आकार के विषय में कोई नियम नहीं दिया है, इसलिये वह वर्गाकार होती है। (80)

वितृतीया वेदिर्भवतीति पैतृक्यावेदेर्विज्ञायते ॥ 81 ॥

पितृयज्ञ की वेदि का क्षेत्रफल (महा-) वेदि के क्षेत्रफल के तिहाई से कुछ कम, इतना होता है। (81)

महावेदेस्तृतीयेन समचतुरस्रकृतायास्तृतीयकरणी भवतीति। नवमस्तु भूमेर्भागो भवति ॥ 82 ॥

महावेदि की (भुजा के) एक तिहाई (लम्बाई के) भुजा का वर्ग करने पर तृतीय करणी प्राप्त होती है। इस वर्ग का क्षेत्रफल (महावेदि के क्षेत्रफल का) $\frac{1}{9}$ भाग होता है। (82)

[महावेदि का क्षेत्रफल 972 वर्ग पद (या वर्ग प्रक्रम) है। इस क्षेत्रफल के वर्ग की भुजा की लम्बाई 31 पद, 2 अंगुल, 26 तिल है। इसकी एक तिहाई लम्बाई 10 पद, 5 अंगुल, 31 तिल है, यह तृतीय करणी की लम्बाई। इस भुजा के वर्ग का क्षेत्रफल 108 वर्ग पद है। यह क्षेत्रफल महावेदि के क्षेत्रफल का $\frac{1}{9}$ है।

यजमानमात्री चतुःस्रक्तर्भवतीत्येकेषाम् ॥ 83 ॥

कुछ लोगों का मत है कि (पैतृकी वेदि) यजमान के (कद के) नाप की होकर चार सिरों की होती है। (83)

दिक्षु स्रक्तयो भवन्ति ॥ 84 ॥

सिरे (प्रमुख) दिशाओं की ओर रखते हैं। (84)

वेदीतृतीये यजेतेति सौत्रामणिकीं वेदिमभ्युपदिशन्ति ॥ 85 ॥

सौत्रामणि यज्ञ की वेदि के एक तिहाई भाग से कुछ कम विभाग में आहुति देने को कहा है। (85)

महावेदेस्तृतीयेन समचतुरस्रकृताया अष्टादशपदा पार्श्वमानी भवती ॥ 86 ॥

महावेदि के क्षेत्रफल के एक तिहाई क्षेत्रफल के वर्ग की भुजा की (पार्श्वमानी की) लम्बाई 18 पद होती है। (86)

[महावेदि का क्षेत्रफल 972 वर्ग पद (या वर्ग प्रक्रम) है, इसका एक तिहाई क्षेत्रफल, $\frac{1}{3} \times 972 = 324$, वर्ग पद है। इस क्षेत्रफल के वर्ग की भुजा की लम्बाई 18 पद है।)

तस्यै दीर्घकरण्यामेकतोऽणिमत्करण्यां च याथाकामीति ॥ 87 ॥

वह (सौत्रामणि वेदि) आयताकार या इसकी एक भुजा लम्बाई में कम ऐसी (समलंब समद्विभुज चतुर्भुज), यथाकाम, जैसी चाहिये वैसी रखें। (87)

[किन्तु इसका क्षेत्रफल 324 वर्ग पद (या वर्ग प्रक्रम) होना चहिये]।

प्राग्वꣳशः षोडशप्रक्रमायामो द्वादशव्यास अपि वा द्वादशप्रक्रमायामो दश व्यासः ॥ 88 ॥

प्राग्वंश (मण्डप की) लम्बाई 16 प्रक्रम और चौड़ाई 12 प्रक्रम है, या लम्बाई 12 प्रक्रम और चौड़ाई 10 प्रक्रम हो। (88)

तस्य मध्ये द्वादशिको विहारः ॥ 89 ॥

इसके (प्राग्वंश मण्डप के) मध्य भाग में 12 प्रक्रमों का अग्नियों का स्थान है।

त्रिꣳशत्पदानि प्रक्रमा वा पश्चात्तिरश्ची भवति षट्त्रिꣳशत् प्राची चतुर्विꣳशतिः पुरस्तात् तिरश्चीति महावेदेर्विज्ञायते मानयोगस्तस्या व्याख्यातः॥ 90 ॥

बताया जाता है कि महावेदि की पश्चिम भुजा 30 पद या (30) प्रक्रम है। प्राची (पूर्व-पश्चिम लम्बाई) 36 पद (या 36 प्रक्रम) और पूर्व की भुजा 24 पद (या 24 प्रक्रम) है। इसकी नापें तथा विन्यास कहा गया है। (90)

आहवनीयात्षट् प्रक्रमान्महावेदिः ॥ 91 ॥

आहवनीय (अग्नि के मध्य बिन्दु से) महावेदि की (पश्चिम भुजा) छः प्रक्रमों पर रखते हैं। ॥ 91 ॥

तत एकस्मिन् त्सदः ॥ 92 ॥

वहाँ से (महावेदि की पश्चिम भुजा से और इसके पूर्व की तरफ) सदस (की पश्चिम भुजा) एक (प्रक्रम दूरी पर) है ॥ 92 ॥

तद् दशकम् ॥ 93 ॥

वह (सदोमण्डप) दस (पद का या प्रक्रम का) है। (93)

[इसकी पूर्व-पश्चिम भुजा दस पद या दस प्रक्रम है।।

उदक् सप्तविꣳशत्यरत्नयः ॥ 94 ॥

(उसकी) उत्तर (- दक्षिण) लम्बाई 27 अरत्नि है। (94)

अष्टादशेत्येकेषाम् ॥ 95 ॥

कुछ लोग 18 अरत्नि लेते हैं। (95)

ततश्चतुर्षु हविर्धानं तद्दशकं द्वादशकं वा समचतुरस्त्रं मानयोगस्तयोर्व्याख्यातः ॥ 96 ॥

वहाँ से (सदोमण्डप की पूर्व भुजा से) हविर्धान मण्डप (की पश्चिम भुजा) चार प्रक्रमों पर है। वह दस या बारह (प्रक्रम लम्बी भुजाओं का) वर्गाकार है। इन दोनों के नाप तथा विन्यास (की पद्धति) कही गई हैं। ॥ 96 ॥

यूपावटीयाच्छङ्कोरर्धप्रक्रममवशिष्योत्तरवेदिं विमिमीते ॥ 97 ॥

यूपावटीय खुंटि से (पश्चिम की तरफ) आधा प्रक्रम अन्तर छोड़कर उत्तर वेदि का नाप लेते है। (97)

[महावेदि की पूर्व भुजा के मध्य विन्दु पर यूप के लिए किये जाने वाले गड्ढे के स्थान पर होने वाले खुंटि को 'यूपावटीय' शंकु कहते हैं। उत्तर वेदि की पूर्व भुजा यूपावटीय शंकु से याने महावेदि की पूर्व भुजा से आधे प्रक्रम दूरी पर होती है]

दशपदोत्तरवेदिर्भवतीति सोमे विज्ञायते। मानयोगस्तस्या व्याख्यातः ॥ 98 ॥

सोमयाग की उत्तर वेदि 10 पदों की (वर्ग पदों की) होती है ऐसा ज्ञात है। उसकी नापें और विन्यास (की रीति) कही गई हैं। (98)

चात्वालो शम्यामात्रोऽपरिमितो वा ॥ 99 ॥

चात्वाल एक शम्या या एक शम्या और एक पद (नाप का वर्गाकृति) होता है (99)

अथोपरवा: प्रादेशमुखा: प्रादेशान्तराला: ॥ 100 ॥

अब उपरव एक प्रादेश व्यास के और एक प्रादेश दूरी पर रखते है (100)

[उपरवों के मध्य बिन्दुओं की दूरी 24 अंगुल होती है।]

अरत्निमात्रꣳसमचतुरस्त्रं विहृत्य स्त्रक्तिषु शङ्कून्निहन्यात्। अर्धप्रादेशेनार्धप्रादेशेनैकैकं मण्डलं परिलिखेत् ॥ 101 ॥

एक अरत्नि लम्बाई का वर्ग खींचकर इसके सिरों पर खुंटियाँ ठोकें। (प्रत्यंक खुंटि केन्द्र लेकर) आधे प्रादेश के, आधे प्रादेश के वृत्तों का विन्यास करें।
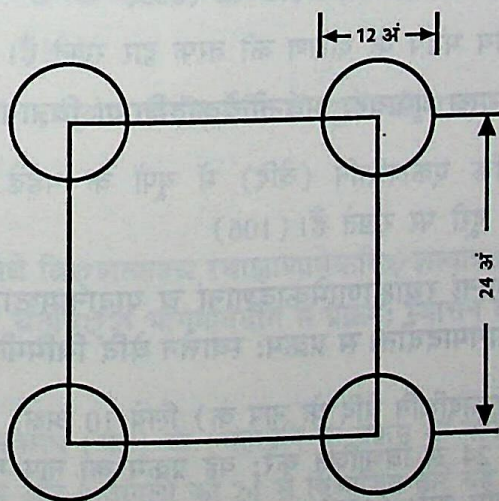
उपरव

सदसः पूर्वार्धाद् द्विप्रक्रममवशिष्य धिष्ण्यानां द्विप्रादेशो विष्कम्भस्तथान्तरालाः ॥ 102 ॥

सदस के पूर्वार्द्ध से दो प्रक्रम की जगह छोड़कर दो प्रादेश व्यास की धिष्ण्याएं (एक दूसरी से) दो प्रादेश दूरी पर लें। (102)

[सदोमण्डप की उत्तर-दक्षिण जाने वाली मध्य रेखा से सदस की पूर्व बाजू तक जो जगह होती है उसे पूर्वार्द्ध कहते हैं। उत्तर-दक्षिण जाने वाली मध्य रेखा से दो प्रक्रम दूरी पूर्वार्द्ध में धिष्ण्याओं के मध्य बिन्दु एक कतार में रखते हैं।

आग्नीध्रीयागारस्य पार्श्वमानी पञ्चारत्निः॥ 103 ॥

आग्नीध्रीय मण्डप की पार्श्वमानी पांच अरत्नि है। (103)

एतेन मार्जालीयो व्याख्यातः ॥ 104 ॥

इसी से मार्जालीय (मण्डप भी) कहा गया। (104)

तस्योदीचीं द्वारं कुर्वन्ति ॥ 105 ॥

उसका द्वार उत्तर की ओर होता है। (105)

[आग्नीध्रीय मंडप के दक्षिण की तरफ द्वार रखते हैं।

रथाक्षान्तराला यूपावटा भवन्तीत्येकादशिन्यां विज्ञायते ॥ 106 ॥

ज्ञात है कि एकादशिनि (वेदि) में यूपों के गड़ढे एक रथाक्ष (104 अंगुल) दूरी पर रखते हैं। (106)

तस्यां दशानां रथाक्षाणामेकादशानां च पादानामष्टाङ्गुलस्य च चतुर्विंश्शं भागमाददीत। स प्रक्रमः स्यात्तेन वेदिं विमिमीते ॥ 107 ॥

उसके (एकादशिनि वेदि के नाप के) लिये 10 अक्ष, 11 पाद और 8 अंगुलों को 24 से विभाजित करें; यह प्रक्रम का नाप मानें। इसी से वेदि का विन्यास करें। (107)

[इस वेदी के पास 11 यूप होते हैं इसीलिए इसे एकादशिनी वेदि कहते हैं। 1 रथाक्ष=104 अंगुल। यूपों में एक रथाक्ष अन्तर है। इनके

गड्ढों का व्यास एक पद है। कुल 10 रथाक्ष 11 पद लम्बाई आती है। मध्य वाले यूप की दोनों तरफ होने वाले यूपों का अन्तर रथाक्ष न होकर एक रथाक्ष चार अंगुल होता है। तब कुल अन्तर 10 रथाक्ष 11 पाद और आठ अंगुल होता है।

1 प्रक्रम = $\frac{1}{24}$ (10x104+11x15+8) = 50 अंगुल 18 तिल। यह प्रक्रम का नाप लेकर सूत्र 1.90 के अनुसार महावेदि का विन्यास करें।]
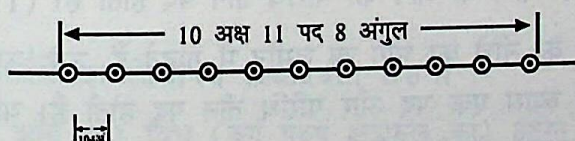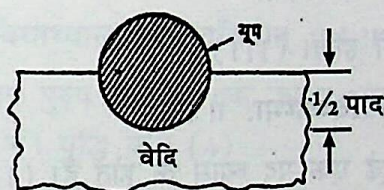
एकादाशिनि वेदि में यूपों की रचना

अथाश्मेधे विꣳशत्याश्च रथाक्षाणामेकविꣳशत्याश्च पदानामष्टाङ्गुलस्य च चतुर्विꣳशं भागमाददीत स प्रक्रमः स्यात्तेन वेदिं विमिमीते। ॥ 108 ॥

अब अश्वमेध (यज्ञ) के (महावेदि के प्रक्रम के नाप के लिये) 20 अक्ष, 21 पद और 8 अंगुलों को 24 से विभाजित करें यह प्रक्रम का नाप मानें। इसी से वेदि का नाप लें। (108)

[अश्वमेध यज्ञ की महावेदि के पूर्व की तरफ 21 यूप होते हैं।]

अथ प्राच्यैकादशिन्यां यूपार्थं वेदेः पूर्वार्धात्पदार्धव्यासमपच्छिद्य तत्पुरस्तात् प्राञ्चं दध्यात् ॥ 109 ॥

अब एक·.शिनि वेदि के पूर्व बाजू में यूपों के लिये आधे पद व्यास की जगह छोड़कर वे (यूप) आगे पूर्व की तरफ रखें । (109)

नात्राष्टाङ्गुलं विद्यते ॥ 110 ॥

यहाँ आठ अंगुल लेने के नहीं। (110)

न व्यतिषंगः ॥ 111 ॥

व्यतिषंग नहीं होता। (111)

यूपावटाः पदविष्कम्भाः ॥ 112 ॥

यूपों के गड्ढे एक पद व्यास के होते हैं। (112)

त्रिपदपरिणाहानि यूपोपराणीति ॥ 113 ॥

यूपों के नीचे के भाग की परिधि तीन पद होती है। (113)

[यूपों का नीचे का भाग जो जमीन में गाढ़ते हैं, उसे 'उपर' कहते हैं। इसका व्यास एक पद और परिधि तीन पद होती है। यहाँ π की कीमत स्थूलमान से तीन ली है।]

अध्याय दो

अर्धाष्टमपुरुषाः प्रथमोऽग्निः ॥ 1 ॥

प्रथम अग्नि (चिति का क्षेत्रफल) 7½ वर्ग पुरुष है। (1)

अर्धनवमा द्वितीयः ॥ 2 ॥

द्वितीय अग्नि 8½ वर्ग पुरुष है। (2)

अर्धदशमास्तृतीय : ॥ 3 ॥

तीसरा अग्नि 9½ वर्ग पुरुष का। (3)

एवमुत्तरोत्तरो विधाभ्यास ऐकशतविधात् ॥ 4 ॥

ऐसे ही 101 वर्ग पुरुष क्षेत्रफल तक क्रमशः एक वर्ग पुरुष से (अग्नि के क्षेत्रफल में) वृद्धि करें। (4)

तदेतत्सप्तविधप्रभृत्येकशतविधान्तम् ॥ 5 ॥

यह ऐसे सप्तविध (वर्ग पुरुप से) 101 विध (वर्ग पुरुष) अग्नि तक करें। (5)

अतऊर्ध्वमेकशतविधानेव प्रत्याददीत ॥ 6 ॥

इसके आगे 101 विध (वर्ग पुरुष क्षेत्रफल का) अग्नि बार बार करें। (6)

अनग्निकान्वा यज्ञक्रतूनाहरेत ॥ 7 ॥

या बिना अग्नि (चिति) के यज्ञ करें। (7)

अन्यत्र अश्वमेधात् ॥ 8 ॥

अश्वमेध (यज्ञ) के सिवाय। (8)

अश्वमेधमप्राप्तं चेदाहरेदत ऊर्ध्वं विधामभ्यस्येन्नेतरदाद्रियेत् ॥ 9 ॥

यदि अश्वमेध (यज्ञ) किया हो तो (अश्वमेध के) बाद में करने वाले यज्ञ के (अग्नि चिति के क्षेत्रफल में) एक वर्ग पुरुष क्षेत्रफल योग करें। इस विषय में और कोई नियम नहीं है। (9)

(20½ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल के अग्निचिति के बाद अश्वमेध यज्ञ किया हो तो, इसके बाद में होने वाले यज्ञ में अग्निचिति का क्षेत्रफल 21½ वर्ग पुरुष न लेकर 22½ वर्ग पुरुष लें। अश्वमेध यज्ञ के अग्निचिति का क्षेत्रफल 21½ वर्ग पुरुष होता है।

अतीतं चेदाहरेदाहृत्य कृत्यान्तादेव प्रत्याददीत् ॥ 10 ॥

(अग्निचिति का क्षेत्रफल अश्वमेध अग्नि के क्षेत्रफल से) अधिक हो तो सबसे अंतिम किये हुए अग्नि के क्षेत्रफल में एक वर्ग पुरुष क्षेत्रफल मिलावें। (10)

[अश्वमेध यज्ञ करने से पहले, 21½ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल से बडी, मानो की 30½ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल की अग्निचिति वाला यज्ञ किया हो और अश्वमेध के बाद अगला यज्ञ करना हो तो अग्निचिति का क्षेत्रफल 31½ वर्ग पुरुष लेते है।

कथमु खलु विधामभ्यस्येत् ॥ 11 ॥

एक वर्ग पुरुष क्षेत्रफल से कैसी वृद्धि करने की। (11)

यदन्यत्प्रकृतेस्तत्पञ्चदश भागान्कृत्वा विधायां विधायां द्वौ द्वौ भागौ समस्येत्ताभिरर्धाष्टमाभिरग्निं चिनुयात् ॥ 12 ॥

जिस एक वर्ग पुरुष क्षेत्रफल का योग करना है उसके 15 भाग करें और दो दो भागों का (गुट) 7½ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल के प्रत्येक वर्ग पुरुष में जोड़े। इससे 8½ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल की अग्निचिति चिनें। (12)

(कात्यायन शुल्ब सूत्र 5.5 देखें)

ऊर्ध्वप्रमाणं जानोः पञ्चमस्य चतुर्विंशशेनैवैके समामनन्ति। ॥ 13 ॥

कुछ लोगों के मतानुसार वेदि की ऊँचाई घुटने के पांचवें भाग के $\frac{1}{24}$ भाग से बढायें (13)

[जानु = 32 अंगुल। $\frac{32}{5x24}$ x 34 = 9 तिल। एक वर्ग पुरुष क्षेत्रफल

से वेदि के क्षेत्रफल में वृद्धि करते समय इसके ऊँचाई में भी 9 तिल से वृद्धि करें।]

अथ हैक एकविधप्रभृतीनपक्षपुच्छाꣳश्चिन्वते ॥ 14 ॥

अब किसी (अन्य) के मत से एकविध (1½ वर्ग पुरुष) से लेकर (6½ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल तक) अग्नि पंख और पूँछ के बिना चिनते हैं। (14)

तन्नोपपद्यते पूर्वोत्तरविरोधात् ॥ 15 ॥

पूर्वोत्तर पद्धति से यह (विधान) विरुद्ध जाता है इसलिये अयोग्य है। (15)

अथ हैकेषां ब्राह्मणं भवति श्येनचिदग्नीनां पूर्वाततिरिति। ॥ 16 ॥

अब कुछ लोगों का ब्राह्मण है कि श्येन के आकार की अग्निचिति सबसे पहले करते हैं। (16)

अथापरेषाम् ॥ 17 ॥

अब अन्य कुछ लोगों के ब्राह्मण के अनुसार (17)

न ज्यायाꣳसं चित्वा कनियाꣳसं चिन्वीतेति ॥ 18 ॥

बड़ी (अग्निचिति) चिनने के बाद छोटी (चिति) न चिनें। (18)

अथास्माकाम् ॥ 19 ॥

अब हमारे (ब्राह्मण के अनुसार-) (19)

पक्षी भवति न ह्यपक्षः पतितुमर्हति अरत्निना पक्षौ द्राघीयाꣳसौ भवतस्तस्मात् पक्षप्रवयाꣳसि वयाꣳसि व्याममात्रौ पक्षौ च पुच्छं च भवति ॥ 20 ॥

वह पंछी (पंख होने वाला) है। पंख के बिना वह गिर जायेगा। इसके बलवान पंख और बलवान होने के लिये वे एक अरत्नि से बड़े करें। दोनों पंख और पूँछ का नाप व्याम ही है। (20)

ना पक्षपुच्छः श्येनो विद्यते न चासप्तविधस्य पक्षपुच्छानि विद्यन्ते न च सप्तविधं चित्वैकविधप्रसङ्गस्तस्मात्सप्तविध एव प्रथमोऽग्निः ॥ 21 ॥

पंख और पूँछ के बिना श्येन नहीं होता और सप्तविध (7½ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल) तक उसे पंख और पूँछ नहीं होती, और सप्तविध अग्नि चिनने के बाद एकविध अग्नि चिनने की जरूरत रहती नहीं, इसीलिये पहला अग्नि सदैव सप्तविध (7½ वर्ग पुरुष का) ही होता है। (21)

भेदान्वर्जयेत् ॥ 22 ॥

भेदों को टालें। (22)

अधरोत्तरयोः पार्श्वसंधानं भेदा इति उपदिशन्ति ॥ 23 ॥

नीचे और ऊपर की तह में होने वाले (ईंटों के) बाजुओं के जोड़ों को 'भेद' कहतें हैं। (23)

[ईंटों के जोड़ हर तह में एक के ऊपर दूसरा ऐसे न आने दें।]

तदग्न्यन्तेषु न विद्यते ॥ 24 ॥

वह (भेद) अग्नि (चिति के) अन्त में नहीं होता। (24)

न स्त्रक्तिपार्श्वयोः ॥ 25 ॥

सिरों के दोनों ओर (भी) नहीं होता। (25)

साहस्त्रं चिन्वीत प्रथमं चिन्वान इति ॥ 26 ॥

पहली बार चिने जाने वाला अग्नि हजार (ईंटों से) चिनें। (26)

पञ्चमायां वा चितौ संख्यां पूरयेत् ॥ 27 ॥

या चिति की पांचवीं तह पर (यह) संख्या पूरी करें। (27)

द्विशताश्चेच्चिकीर्षेत्पञ्चचोडाभिर्नाकसदः समानसंख्यं प्रतीयात् ॥ 28 ॥

हर तह में (ईंटों की) संख्या दो सौ होनी चहिये तो पंचचोडा और नाकसद (नामक) दो (ईंटें) एक समझकर गिननी चहिये। (28)

[पंचचोडा और नाकसद ईंटों की ऊँचाई अन्य ईंटों की ऊँचाई से आधी होती है, इसलिये यह नियम दिया है। सूत्र 2.58 देखें।]

पशुधर्मो ह वा अग्निर्यथा ह वै पशोर्दक्षिणवामस्थ्नां यद् दक्षिणं पार्श्वं तदुत्तरेषामुत्तरं यदुत्तरेषां दक्षिणं तद् दक्षिणेषामुत्तरं यदवाक् चोर्ध्वं च तत्समानमेवमिष्टकानाꣳरूपाण्युपदध्यात् ॥ 29 ॥

अग्नि (चिति) के गुणधर्म पशु के गुणधर्मों जैसे होते हैं। पशु के दाहिने बाजू की दाहिनी हड्डियाँ उसके बाएँ बाजू की बाई हड्डियों जैसी होती हैं। दक्षिण बाजू की बाईं हड्डियाँ इसके उत्तर बाजू की दाहिनी हड्डियों जैसी होती हैं। ऊपर की हड्डियाँ नीचे कि हड्डियाँ जैसी होती हैं। अग्नि (चिति) चिनते समय (विभिन्न) ईंटें (जैसी हड्डिया सममित होती है) वैसी ही (सममित) रखनी चहिये। (29)

या दक्षिणावृतो लेखास्ता दक्षिणत उपदध्यात् ॥ 30 ॥

दक्षिण दिशा की तरफ मुड़ने वाली रेखाऐं जिस ईंटों पर हैं वे (चिति के) दक्षिण (दाहिने) की और रखें। (30)

सव्यावृत उत्तरतः ॥ 31 ॥

उत्तर दिशा की तरफ मुड़ने वाली (रेखाऐं होने वाली ईंटें चिति के) उत्तर की (बाएँ) ओर (रखें)। (31)

ऋजुलेखाः पश्चात्पुरास्ताच्च भवन्ति ॥ 32 ॥

सरल रेखाऐं अंकित (ईंटें) पूर्व और पश्चिम की तरफ रखें। (32)

[पूर्व याने आगे की तरफ और पश्चिम याने पीछे की तरफ।]

त्र्यालिखिता मध्ये ॥ 33 ॥

तीन रेखाओं वाली (ईंटें अग्निचिति के) मध्य में रखें। (33)

अथ या विशयस्था यथा ह वै पशोः पृष्ठवꣳशो नैवैकस्मिन् पार्श्वे व्यतिरेकेण वर्तते नैवापरस्मिन्नेवं तासां उपधानं प्रतीयात् ॥ 34 ॥

पशु का पृष्ठवंश जैसे एक बाजू की तरफ झुका नहीं होता जैसे ही दूसरी बाजू की तरफ भी झुका नहीं होता (परन्तु सममिति अक्ष पर बराबर होता है) वैसी (अग्निचिति के) जोड़ पर चिनी हुई ईंटें (बराबर सममिति अक्ष पर) होनी चहिये, यह ध्यान में रखें। (34)

अथापि ब्राह्मणं भवति ॥ 35 ॥

अब इसका भी ब्राह्मण है। (35)

प्रजापतिर्वा अथर्वाग्निरेव दध्यङ् आथर्वणस्तस्येष्टका अस्थीनीति ॥ 36 ॥

अथवा प्रजापति अग्नि होता है। अग्नि दध्यङ्अथर्वण का पुत्र है। और ईंटें इसकी हड्डियों जैसी होती हैं। (36)

बहिस्तन्वं चेत् चिनुयात् तन्वोपप्लवमध्यैरात्मोपप्लवमध्यात् संदध्यात् ॥ 37 ॥

अग्नि के बदन के बाहर के (पंख, पूँछ इत्यादि) अवयव चिनने के समय बाहर के भाग बदन में (आत्मा में) और आत्मा का भाग बाहर के अवयवों के अन्दर आयेंगे ऐसी रचना करें। (37)

[अग्निचिति की पांच तह होती हैं। एक तह में पंख और पूँछ का कोई भाग आत्मा के अन्दर आता है और इसके नीचे या ऊपर होने वाले तह में आत्मा का कोई भाग पंख, पूँछ इत्यादि अवयवों के अन्दर आता हैं। ईंटों की इस व्यवस्था से पंख, पूँछ इत्यादि अवयव जोड़ पर आत्मा से अलग नहीं होते।)

प्राञ्चमेनं चिनुत इति विज्ञायते ॥ 38 ॥

इसे (अग्निचिति को) पूर्वाभिमुख चिनें ऐसा बताया जाता है। (38)

अमृन्मयीभिरनिष्टकाभिर्न संख्यां पूरयेत् ॥ 39 ॥

बिना मिट्टी से बनाई हुई ईंटों को या ईंटों से विभिन्न पदार्थों को (चिति के ईंटों की विशिष्ट) संख्या, गिनती में लेकर, पूरी नहीं करें। (39)

इष्टकचिद्वा अन्योऽग्निः पशुचिदन्य इत्येतस्माद् ब्राह्मणात् ॥ 40 ॥

हमारे ब्राह्मण से एक अग्नि ईंटों से और दूसरा अग्नि पशुओं से चिनते हैं, इसलिए। (40)

पशुर्वा एष यदग्निर्योनिः खलु वा एषा पशोर्विक्रीयते यत्प्राचीनमैष्टकाद्यजुः क्रियत इति च ॥ 41 ॥

अथवा यह जो अग्नि है वह पशु है। अथवा पशु के योनि जैसा वह विकार पाता है। पूर्व दिशा की तरफ ईंटें रखते समय यजुर्मन्त्र रटते हैं, इसीलिए ही। (41)

लोकबाधीनि द्रव्याण्यवटेषूपदध्यात् ॥ 42 ॥

जिनको जगह लगती है ऐसी वस्तुएँ गड्ढे में रखें। (42)

[पशु का सर, कछुऐ का सर इत्यादि चिति में रखतें हैं। इसके लिये चिति में जगह नहीं होती इसीलिये चिति के नीचे गड्ढ़ा खोदकर वहाँ यह पदार्थ रखते हैं।]

मण्डलमृषभं विकर्णीमतीष्टकासु लक्ष्माणि प्रतीयात् ॥ 43 ॥

मण्डल, बैल, कान बिना स्त्री के ईंटों पर निशानियाँ होती हैं। (43)

[ईंटें इन आकार की नहीं होती।]

इष्टकामन्त्रयोरिष्टकाव्यतिरेके लोकंपृणाः संपद्यते परिमाणाभावात् ॥ 44 ॥

ईंटें और वे चिनते समय रटने वाले मन्त्र इनमें ईंटों की संख्या अधिक होगी तो ऐसे (ज्यादा) ईंटों को लोकंपृणा कहते हैं। इन लोकंपृणा ईंटों की संख्या निश्चित नहीं है, (बदल सकती है)। (44)

अतीतानेवेष्टकागणानेतदत्रोपदध्यात् ॥ 45 ॥

पहले जैसी ईंटें यहाँ इन्हे (लोकंपृणा कहकर) रखें। (45)

[ईंटें मंत्र सहित रखते हैं उन्हे ज्योतिष्मति ईंटें कहते हैं। ज्योतिष्मति

और लोकंपृणा ईंटों में आकार और नाप में कोई भी भेद नहीं होता। यहाँ पहले जैसी याने ज्योतिष्मति जैसी लोकंपृणा ईंटें भी होती हैं ऐसा कहा है।]

पञ्च लोकंपृणाः ॥ 46 ॥

पांच लोकंपृणा हैं। (46)

मंत्रव्यतिरेकेऽक्ताः शर्कराः संधिषूपदध्यात् ॥ 47 ॥

मंत्रों की संख्या ईंटों से अधिक होगी तो बजरी घी में भिगोकर ईंटों के जोड़ में रखें। (47)

प्राचीरूपदधाति प्रतीचीरूपदधाति गणेषु रीतिवादः ॥ 48 ॥

'ईंटें पूर्व दिशा की तरफ रखता है', 'पश्चिम की तरफ रखता है' (याने) ईंट वे दिशाओं की तरफ सरल रेखा में रखें। (48)

प्राचीमुपदधाति प्रतीचीमुपदधाति इति कुर्तर्मुखवादः ॥ 49 ॥

'ईंटें पूर्व की तरफ रखता है', 'पश्चिम की तरफ रखता है' (याने इन दिशाअें) ईंटें रखने वाले के मुख की दिशा से लें। (49)

पुरस्तादन्या : प्रतीचीरूपदधाति पश्चादन्याः प्राचीरित्यपवर्गवादः ॥ 50 ॥

'कुछ ईंटें आगे पश्चिमभिमुख रखता है, पीछे ईंटें पूर्वाभिमुख रखता है' इन्हे अपवर्गवाद कहते हैं। (50)

चतुरस्रास्वेवैतदुपपद्यते ॥ 51 ॥

केवल आयताकार ईंटों को यह (अपवर्गवाद का नियम) प्रयोज्य है। (51)

न खण्डामुपदध्यात् ॥ 52 ॥

टुटी ईंट न रखें। (52)

न भिन्नामुपदध्यात् ॥ 53 ॥

तडकी ईंट न रखें। (53)

न जीर्णामुपदध्यात् ॥ 54 ॥

जीर्ण ईंट न रखें। (54)

न कृष्णामुपदध्यात् ॥ 55 ॥

काली ईंट (अधिक जली हुई ईंट) न रखें। (55)

न लक्ष्माणमुपदध्यात् ॥ 56 ॥

जिस पर निशानी है ऐसी ईंट न रखें। (56)

[ईंटें सुखाने के समय लकडी या पत्थर या किसी का पंजा, इत्यादियों की निशानी या धब्बा ईंट पर हो सकता हैं, ऐसी ईंट अग्निचिति चिनते समय इस्तेमाल न करें।]

न स्वयमातृण्णाꣳस्वयंचितावुपदध्यात् ॥ 57 ॥

स्वयमातृण्णा ईंट को इसके तह के दूसरे ईंटों से न ढकें। (57)

ऊर्ध्वप्रमाणमिष्टकानां जानोः पञ्चमेन कारयेत् ॥ 58 ॥

ईंटों की मोटाई जानू के (32 अंगुल) पांचवें भाग इतनी ($6\frac{2}{5}$ अंगुल) रखें। (58)

अर्धेन नाकसदां पञ्चचोडानां च ॥ 59 ॥

नाकसद और पंचचोंडा ईंटों की मोटाई आधी ($3\frac{1}{5}$ अंगुल) होती है। (59)

यच्छोषपाकाभ्यां प्रतिह्रसेत् पुरीषेण तत्संपूरयेत् पुरीषस्यानियतपरिमाणत्वात् ॥ 60 ॥

(अग्निचिति का नाप ईंटें) सुखाने से और पकाने से जितना कम होगा वह गीली मिट्टी से पूरा करें, क्योंकि गीली मिट्टी का निश्चित आकार नहीं होता। (60)

व्यायाममात्री भवतीति गार्हपत्यचितेर्विज्ञायते ॥ 61 ॥

जानते है कि गार्हपत्य चिति एक व्यायाम की होती है। (61)

चतुरस्त्रेत्येकेषाम् ॥ 62 ॥

कुछ लोगों के मत से (गार्हपत्य चिति) वर्गाकार है। (62)

परिमण्डलेत्येकेषाम् ॥ 63 ॥

कुछ लोगों के मत से मण्डलाकार। (63)

चतुरस्त्रꣳ सप्तधा विभज्य तिरश्चीं त्रेधा विभजेत् ॥ 64 ॥

वर्ग को (इसके पूर्व-पश्चिम की भुजाओं को) सात भागों मे विभागें और चौड़ाई के तीन भाग करें। (64)

अपरस्मिन्प्रस्तारे उदीचीरुपदधाति ॥ 65 ॥

दूसरी तह में ईंट उत्तराभिमुख रखें। (65)
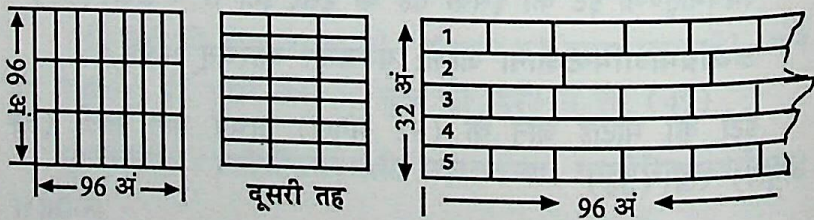
समचतुरस्त्राश्चेदुपदध्यात् ॥ 66 ॥

केवल वर्ग ईंटें रखने की हो तो-(66)

व्यायामषष्ठेनेष्टकाः कारयेच्चतुर्थेन तृतीयेनेति ॥ 67 ॥

व्यायाम के छठे, चौथाई और तिहाई भाग से वर्ग ईंटें बनाइयें। (67)

[प्रथमा ईंट = 16x16 अंगुल, द्वितीया ईंट = 24x24 अंगुल और तृतीया ईंट = 32x32 अंगुल।]

तासां नव प्रथमा द्वादश द्वितीया इति पूर्वस्मिन्प्रस्तार उपदधाति ॥ 68 ॥

इनमें नौं प्रथमा और बारह द्वितीया (ईंटें) पहली तह में रखें। (68)
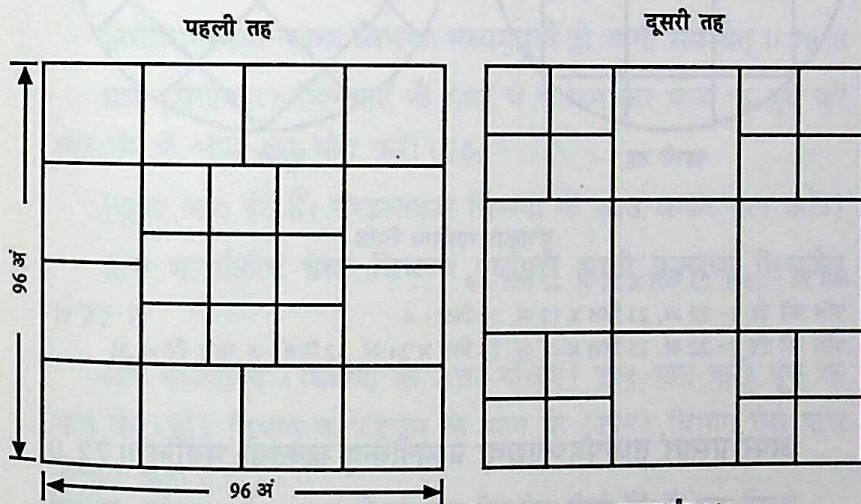
प्रथमा ईंट 16X16 अंगुल, 9
द्वितीया ईंट 24X24 अंगुल, 12 = 21

प्रथमा ईंट 16+
तृतीया ईंट 32X32 अं 5 = 21

पञ्च तृतीयः षोडशप्रथमा इत्यपरस्मिन् ॥ 69 ॥

दूसरी तह में पांच तृतीया और 16 प्रथमा (ईंटें रखें)। (69)

परिमण्डलायां यावत्संभवेत्तावत्समचतुरस्रं कृत्वा तन्नवधा विभजेत् ॥ 70 ॥

वृत्ताकार गार्हपत्य चिति के लिये मण्डल में बड़े से बड़ा समायोजित वर्ग खींचकर इसके नौ (सम-) भाग करें। (70)

प्रधीः स्त्रिधा त्रिधेति ॥ 71 ॥

प्रधीयों के तीन-तीन भाग करें। (71)
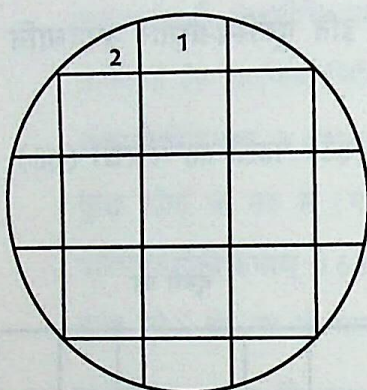
पहली तह दूसरी तह
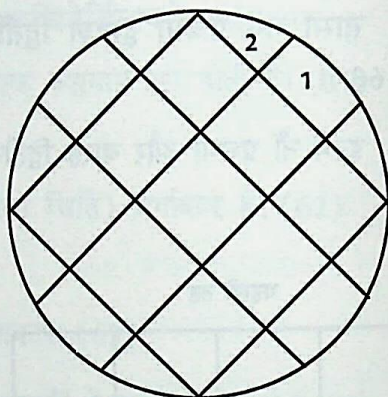
वृताकार गार्हपत्य चिति

वर्ग ईंट - 22अं, 23 तिल X 22 अं, 23 तिल - 9
प्रधि की ईंट 1- 22 अं, 23 तिल X 12 अं, 24 तिल - 4
प्रधि की ईंट 2- 22 अं, 23 तिल X 12 अं, 24 तिल X 24 अं, 32 तिल - 8 कुल ईंटें = 21

अपरं प्रस्तारं तथोपदध्याद्यथा प्रध्यनीकेषु स्रक्तयो भवन्ति ॥ 72 ॥

दूसरी तह में ईंटें ऐसी रखें की वर्ग के सिरे (पहली तह के) प्रधियों के मध्य में आयेंगे। (72)

धिष्ण्या एकचितीकाश्चतुरस्राः परिमण्डला वा ॥ 73 ॥

धिष्ण्याएँ एक तह की होती हैं और वे वर्गाकार या वृत्ताकार चिनें। (73)

तेषामाग्नीध्रीयं नवधा विभज्यैकस्याः स्थानेऽश्मानमुपदध्यात् ॥ 74 ॥

इसमें अग्नीध्रीय (धिष्ण्या) नौं भागों में विभाग कर (मध्य की) एक ईंट के जगह (इसके आकार का) पत्थर रखें। (74)

[वर्गाकार अग्निध्रीय धिष्ण्या में मध्य वर्ग मे यह पत्थर रखते हैं। वृत्ताकार धिष्ण्या में आठ अंगुल व्यास का वृत्ताकार पत्थर केन्द्र में रखकर अतिरिक्त मण्डल के समान आठ विभाग करते हैं।)

अथ होतुर्धिष्ण्यं नवधा विभज्य पूर्वार्धं स्त्रिभागानेकैकं द्वेधा विभजेत् ॥ 75 ॥

अब (वर्गाकार) होतु की धिष्ण्या के नौं भाग करें और पूर्व की तरफ तीन भागों के दो विभाग करें। (75)

[कुल बारह ईंटें रखते हैं। होतु के मण्डलाकार धिष्ण्या के समान बारह भाग करते हैं। जमीन पर यह आकृति निकालें और ईंटों का नाप लें।]

अथेतरान्नवधा नवधा विभज्य मध्यमपूर्वौ द्वौ भागौ समस्येत् ॥ 76 ॥

इतर (वर्गाकार) धिष्ण्याएँ नौं भागों में विभाग कर मध्य के पूर्व की ओर के दो भागों का योग करें। (76)

[कुल आठ ईंटें हैं। मण्डलाकार धिष्ण्या के आठ समान भाग करें।]

अथ मार्जालीयं त्रेधा विभज्य पूर्वापरौ भागौ पञ्चधा विभजेत् ॥ 77 ॥

अब मार्जालीय (धिष्ण्या के उत्तर-दक्षिण) तीन भाग करें। पूर्व के भाग के (दो) विभाग व पश्चिम के भाग के (तीन) विभाग ऐसे पांच विभाग करें। (77)

[वृत्ताकर मार्जालीय धिष्ण्या के छः समविभाग करें।)

उख्यभस्मना सꣳसृज्येष्टकाः कारयेदिति ॥ 78 ॥

उख्यभस्म (गीली मिट्टी में) छिड़कर ईंटें बनाएं। (78)

संवत्सरभृत एवैतदुपपद्यते न रात्रिभृतः ॥ 79 ॥

यज्ञ का काल साल भर का (या मास भर का) हो तो यह नियम प्रयोज्य है न कि केवल एक रात भर के (यज्ञ काल के लिये उपयोजित ईंटों के लिए)। (79)

एवमस्या मन्त्रवती चितिक्लृप्तिः ॥ 80 ॥

चिति मन्त्रपूत करने की यह युक्ति है। (80)

छन्दश्चितं त्रिषाहस्रस्य पुरस्तात् चिन्वीत ॥ 81 ॥

तीन सहस्र ईंटों के (अग्नि के) बाद अगले अग्नि की रचना (केवल) मन्त्रों से करें। (81)

बौ. शु. सू. (2.79)
वर्गाकृति
धिष्ण्या
(वृत्ताकृति)
24 अं
24 अं
पत्थर
1
2
3
4
5
6
7
8
पत्थर
8 अं
24 अं
आग्नीध्रीय धिष्ण्या
4 अं
8 अं
1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
11
12
होतु की धिष्ण्या
8 अं
16 अं
1
2
3
4
5
6
7
8
इतर धिष्ण्या
8 अं
8 अं
8 अं
1
2
3
4
5
6
मार्जालीय धिष्ण्या
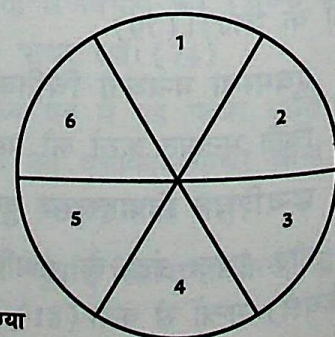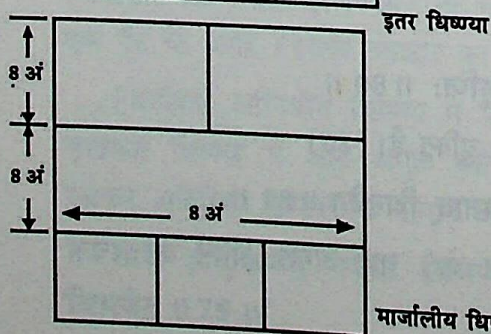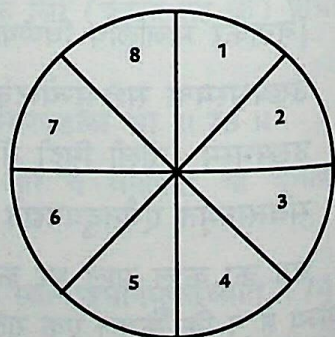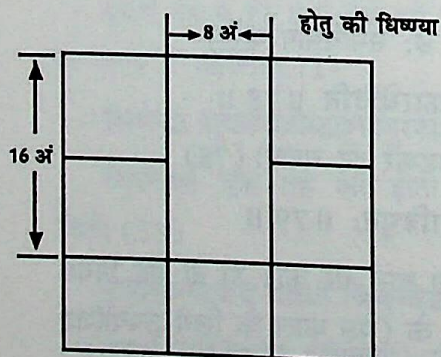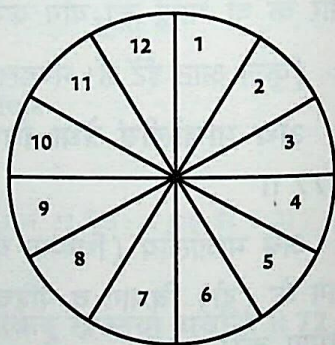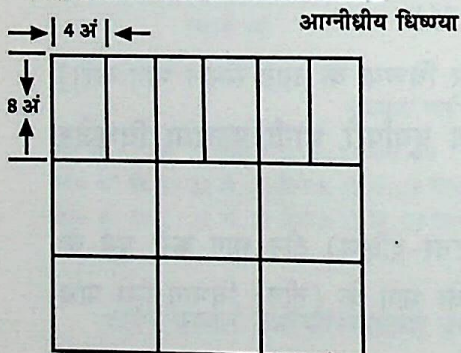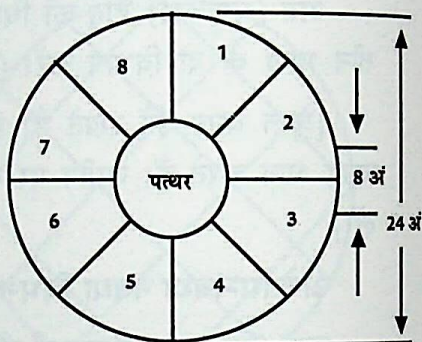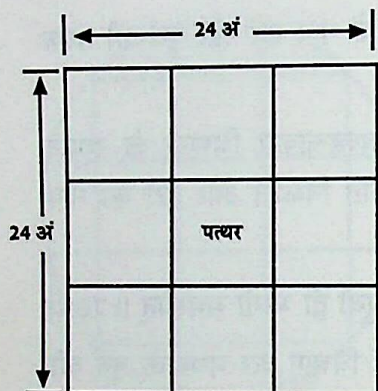
[अगली चौथी अग्निचिति चार सहस्र ईंटों की न चिनें बल्कि खाली मन्त्र रट के ईंटों से रचने की चेष्टा करें। ऐसी चिति को छन्दचिति कहते हैं।)

कामविवेकात् ॥ 82 ॥

क्योंकि वह कामना के साथ होता है। (82)

तस्य रूपꣳश्येनाकृतिर्भवतीति प्रकृतित्वात् ॥ 83 ॥

इसका (अग्निचिति का) आकार निसर्गतः श्येन के आकार जैसा होता है। (83)

अध्याय तीन

अथ वै भवति श्येनचितं चिन्वीत स्वर्गकाम इति ॥ 1 ॥

अब जिसे स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा है उसने श्येनचिति चिनना चहिये ऐसा नियम है। (1)

आकृतिद्वैविध्यम् ॥ 2 ॥

(श्येनचिति) दो आकार की होती है। (2)

चतुरस्रात्मा ॥ 3 ॥

(एक प्रकार में) आत्मा वर्गाकार होता है। (3)

श्येनाकृतिश्च ॥ 4 ॥

(दूसरे प्रकार में आत्मा) श्येन (पंछी के) आकार जैसा होता है। (4)

विज्ञायते ॥ 5 ॥

बताया जाता है कि (5)

उभयं ब्राह्मणम् ॥ 6 ॥

दोनों ब्राह्मण हैं। (6)

पञ्च दक्षिणायाꣳ श्रोण्यामुपदधाति पञ्चोत्तरस्यां वस्तो वय इति दक्षिणेꣳस उपदधाति वृष्णिर्वय इति उत्तरे व्याघ्रो वय इति दक्षिणे पक्ष उपदधाति सिꣳहो वय इत्युत्तरे पुरुषो वय इति मध्य इति च ॥ 7 ॥

(चतुरस्र श्येनचित में) पांच (ईंटें) दक्षिण श्रोणी पर रखें, पांच उत्तर श्रोणी पर रखें। दक्षिण अंस पर वस्तो वय......'यह मन्त्र रटकर पांच ईंटें रखें। वृष्णिर्वय......'रट के उत्तर अंस पर (पांच ईंटें) रखें। व्याघ्रो वय......' रट के (पांच ईंटें) दक्षिण पंख में रखें। 'सिंहो वय...... ' रट

के (पांच ईंटें) उत्तर पंख में रखें और 'पुरुषो वय.........'(यह मन्त्र) रट के (पांच ईंटें) आत्मा के मध्य भाग में रखें। (7)

अथापरं वयसां वा एष प्रतिमया चीयते यदग्निरिति ॥ 8 ॥

अब अन्य (ब्राह्मण से), यह जो अग्नि है वह पंछी के आकार जैसा चिनें। (8)

उत्पततां छाययेत्यर्थः ॥ 9 ॥

उड़ते हुऐ (श्येन पंछी के) छाया जैसा (आकार) ऐसा इसका अर्थ है। (9)

समचतुरस्त्राभिरग्निं चिन्वीत दैव्यस्य च मानुषस्य च व्यावृत्त्या इति मैत्रायणीय ब्राह्मणम् ॥ 10 ॥

वर्गाकार ईंटों से अग्नि (चिति) चिनें। (ईंटें) देवों के लिये और मनुष्यों के लिये विरूद्ध (आकार की) होनी चाहिये ऐसा मैत्रायणीय ब्राह्मण है। (10)

[मनुष्य के घर के लिये आयताकार ईंटें लेते हैं, इसीलिये देवों के लिये वर्गाकार ईंटें लेनी चाहिये।]

तस्येष्टकाः कारयेत् चतुर्थेन पञ्चमेन पष्ठेन दशमेनेति ॥ 11 ॥

इसके (चिति के) लिये (पुरुष नाप के) चौथे, पांचवें, छठें और दसवें भागों की ईंटें बनाएँ। (11)

[ईंटें 30x30 अंगुल, 24x24 अंगुल, 20x20अंगुल, 12x12 अंगुल नापों की वर्गाकार हैं।]

अथाग्निं विमिमीते ॥ 12 ॥

अब अग्नि का नाप और विन्यास कहते हैं। (12)

यावान् पुरुष उर्ध्वबाहुस्तावदन्तराले वेणोश्छिद्रे करोति ॥ 13 ॥

हाथ ऊपर किये हुए पुरुष (यजमान के) ऊँचाई के दूरी पर बांस पर दो छिद्र बनाते हैं। (13)

मध्ये तृतीयम् ॥ 14 ॥

(इस अंतर के) मध्य पर तीसरा छिद्र बनाते हैं। (14)

यदमुत्र स्पन्द्यया करोति तदिह वेणुना करोति ॥ 15 ॥

जो (विन्यास) वहाँ (अध्याय एक में) रस्सी से करते हैं वह यहाँ बांस से करते हैं। (15)

तस्यात्मा ॥ 16 ॥ समचतुरस्त्रश्चत्वारः पुरुषाः ॥ 17 ॥

इसका (अग्निचिति का) आत्मा चार वर्ग पुरुषों का वर्गाकार है। (17)

पक्षः समचतुरस्त्रः पुरुषः ॥ 18 ॥

पंख एक वर्ग पुरुष का वर्गाकार है। (18)

स तु दक्षिणतोऽरत्निना द्राघीयान् ॥ 19 ॥

दक्षिण की ओर उसमे एक अरत्नि से वृद्धि करें। (19)

एतेनोत्तरपक्षो व्याख्यातः ॥ 20 ॥

इसी से उत्तर की तरफ होने वाले पंख का (नाप) कहा गया। (20)

पुच्छꣳसमचतुरस्त्रः पुरुषः ॥ 21 ॥

पूँछ एक वर्ग पुरुष की वर्गाकार है। (21)

तमवस्तात्प्रादेशेन वर्धयेत् ॥ 22 ॥

वह पीछे एक प्रादेश से बढाअें (22)

एवं सारत्निप्रादेशः सप्तविधः संपद्यते ॥ 23 ॥

ऐसा अरत्नि और प्रादेश सहित सप्तविध (सात वर्ग पुरुष का क्षेत्रफल) संपादित होता है। (23)

[आत्मा = 4 वर्गपुरुष, दो पंख $= 2\frac{2}{5}$ वर्ग पुरुष, और पूँछ $= 1\frac{1}{10}$ वर्ग पुरुष। कुल 7½ वर्ग पुरुष का क्षेत्रफल।]

उपधाने पक्षाग्रादुत्तरतः पुरुषतृतीयवेलायाम् ॥ 24 ॥ चतस्त्रः पञ्चम्यः तासामभितो द्वे द्वे पादेष्टके ॥ 25 ॥

ईंटें रखते समय (दक्षिण) पंख के अग्र से उत्तर की तरफ पुरुष के एक तिहाई दूरी पर चार पंचमी (24x24 अंगुल) ईंटें और इनके दोनों ओर दो दो पाद (12x12 अंगुल) ईंटें रखें। (24, 25)

तत्राऽष्टौ चतुर्थ्यः ॥ 26 ॥

वहाँ आठ चतुर्थी (30x30 अंगुल) ईंटें रखें। (26)

पक्षशेषᳪषड्भागीयाभिः प्रच्छादयेत् ॥ 27 ॥

पंख का शेष भाग षड्भागीया (20x20 अंगुल) ईंटों से ढँकें। (27)

एतेनोत्तरः पक्षो व्याखातः ॥ 28 ॥

इसी से उत्तर पंख की (भी ईंटों की व्यवस्था) कही गई। (28)

पूर्वापरयोः पुच्छपार्श्वयोश्चतुर्भागीया उपदध्यात् ॥ 29 ॥

पूँछ के पूर्व और पश्चिम की ओर चतुर्थी (30x30 अंगुल) ईंटें रखें। (29)

दक्षिणोत्तरयोः पादेष्टकाः ॥ 30 ॥

दक्षिण और उत्तर की ओर पाद (12x12 अंगुल) ईंटें रखें। (30)

शेषमग्निं पञ्चमभागीयाभिः प्रच्छादयेत् ॥ 31 ॥

उर्वरित अग्नि पंचमी (24x24 अंगुल) ईंटों से ढँकें। (31)
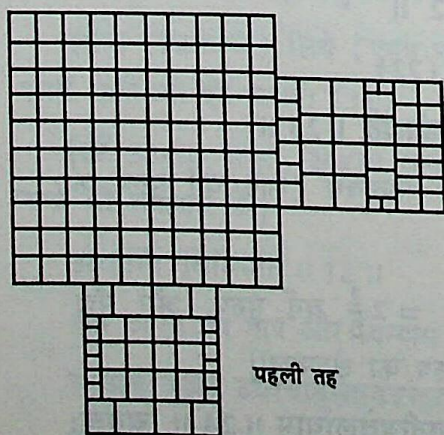
पहली तह (अ. 3, सू. 24-32)
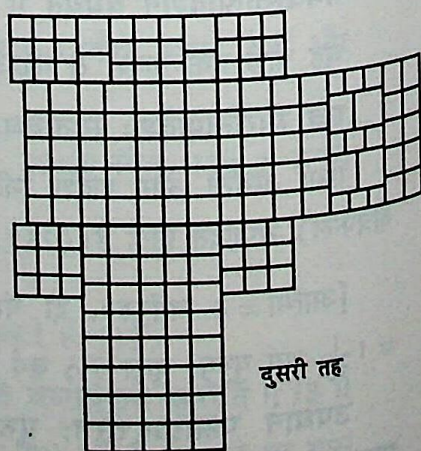
दूसरी तह (अ. 3, सू. 33-38)

ईंटें	चतुर्थी 30x30 अं	पंचमी 24x24 अं	षष्ठी 20x20 अं	दशमी 12x12 अं
पहली तह				
आत्मा	–	100	–	–
पंख	16	8	36	8
पूँछ	8	12	–	12
कुल ईंटें	24	120	36	20 = 200
दूसरी तह				
आत्मा	4	60	45	–
पंख	8	40	18	–
पूँछ	–	25	–	–
कुल ईंटें	12	125	63	– = 200

एष द्विशतः प्रस्तारः ॥ 32 ॥

यह दो सौ (ईंटों) की तह। (32)

अपरस्मिन्प्रस्तारे ॥ 33 ॥

दूसरी तह में- (33)

पक्षाग्रादुत्तरतोऽर्धव्यायामवेलायां तिस्रस्तिस्रः षष्ठ्यो द्वे द्वे द्विपदे इति विपर्यासमुपदध्यात् ॥ 34 ॥

(दक्षिण) पंख के अग्र से उत्तर की तरफ आधे व्यायाम दूरी पर तीन तीन षष्ठी (20x20 अंगुल) और दो दो चतुर्थी (30x30 अंगुल) ईंटें रखें। फिर ये ईंटें व्योम क्रम से रखें। (34)

[दक्षिण पंख के अग्र से आधे व्यायाम दूरी पर पहले 20x20 अंगुल की तीन ईंटें पंख के पूर्व की बाजू के पास रखें, इनके पीछे (पश्चिम की तरफ) 30x30 अंगुल की दो ईंटें, बाद में 20x20 अंगुल की तीन ईंटें, फिर 30x30 अंगुल की दो ईंटें और पश्चिम की बाजू के पास फिर 20x20 अंगुल की तीन ईंटें रखें।

तथोत्तरे ॥ 35 ॥

ऐसा (ईंटों की ऐसी व्यवस्था) उत्तर पंख में भी करें। (35)

दक्षिणस्याꣳश्रोण्यां नव षष्ठ्यश्चतुरस्रकृताः ॥ 36 ॥

(आत्मा के) दक्षिण श्रोणी पर नौं षष्ठी (20x20 अंगुल) वर्गाकार ईंटें रखें। (36)

तथोत्तरस्याम् ॥ 37 ॥

ऐसे ही उत्तर श्रोणी पर (करें)। (37)

नव नव षष्ठ्यो द्वे द्वे द्विपदे इति दक्षिणादꣳसाद्विपर्यासमुपदध्यात् ॥ 38 ॥

दक्षिण अंस नौं-नौं षष्ठी (20x20 अंगुल) ईंटें और बाद में दो-दो चतुर्थी (30x30 अंगुल) ईंटें रखें। उत्तर अंस से (ये ईंटें) व्योम क्रम से रखें। (38)

शेषमग्निं पञ्चमभागीयाभिः प्रच्छादयेत् ॥ 39 ॥

उर्वरित अग्नि पंचमीं ईंटों से ढँकें। (39)

एष द्विशतः प्रस्तारो व्यत्यासं चिनुयाद्यावतः प्रस्ताराꣳश्चिकीर्षेत् ॥ 40 ॥

यह दो सौ (ईंटों) की (दूसरी) तह। जितनी तह रचने की वे एक दूसरी के ऊपर क्रमशः उलट सीधी रखें। (40)

अथापरः ॥ 41 ॥

अब दूसरी (प्रकार की श्येनचिति)। (41)

पुरुषस्य पञ्चम्यः ॥ 42 ॥

पुरुष के पाँचवें भाग की (24x24 अंगुल) ईंटें। (42)

ता एवैकतोऽध्यर्धाः ॥ 43 ॥

इनके (पंचमी ईंटों के) डेढ़ गुनी एक भुजा वाली अध्यर्धा (36x24 अंगुल) ईंटें। (43)

तासामर्ध्याः ॥ 44 ॥

इनकी (पंचमीं ईंटों की) आधी (एक भुजा वाली) अर्ध्या (12x24 अंगुल) ईंटें। (44)

पाद्याश्च ॥ 45 ॥

और पाद (चौथाई 12x12 अंगुल) ईंटें। (45)

उपधाने ॥ 46 ॥ पूर्वापरयोः पक्षपार्श्वयोः अर्धेष्टका उदीचीरुपदध्यात् ॥ 47 ॥

ईंटें रखते समय, पंख के पूर्व और पश्चिम की ओर अर्ध्या ईंटें (24x12 अंगुल) उत्तराभिमुख रखें। (46,47)

तथोत्तरे ॥ 48 ॥

ऐसी ही (ईंटों की व्यवस्था) उत्तर की तरफ करें। (48)

दक्षिणोत्तरयोः पुच्छपार्श्वयोश्चतस्रश्चतस्र अध्यर्ध्या उदीचीः ॥ 49 ॥

पूँछ के दक्षिण और उत्तर की ओर चार चार अध्यर्धा (36x24 अंगुल) ईंटें उत्तराभिमुख रखें। (49)

पुच्छस्यावस्ताच्चतस्रोऽर्धेष्टका उदीचीः ॥ 50 ॥

पूँछ में पीछे की तरफ चार अर्ध्या (24x12 अंगुल) ईंटें उत्तराभिमुख रखें। (50)

तासामभितो द्वे पादेष्टके ॥ 51 ॥

इनके दोनों ओर (पूंछ के श्रोणीयों में) दो पाद (12x12 अंगुल) ईंटें रखें। (51)

जघनेन पुच्छाप्यययोरेकैकामर्धेष्टकां प्राचीम् ॥ 52 ॥

पूँछ और आत्मा के जोड़ के पीछे दोनों सिरों पर अर्ध्या (24x12 अंगुल) ईंटें पूर्वाभिमुख रखें। (52)

शेषमग्निं पञ्चमभागीयाभिः प्रच्छादयेत् ॥ 53 ॥

उर्वरित अग्नि पंचमी (24x24 अंगुल) ईंटों से ढकें। (53)
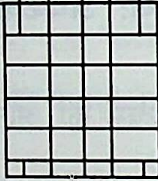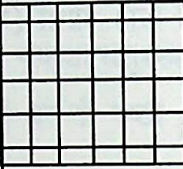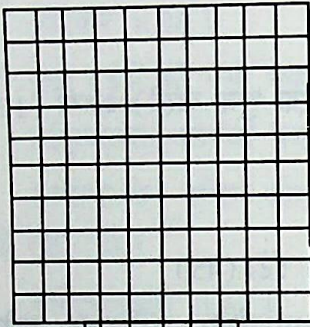
पहली तह

(अ. 3, सू. 47-54)
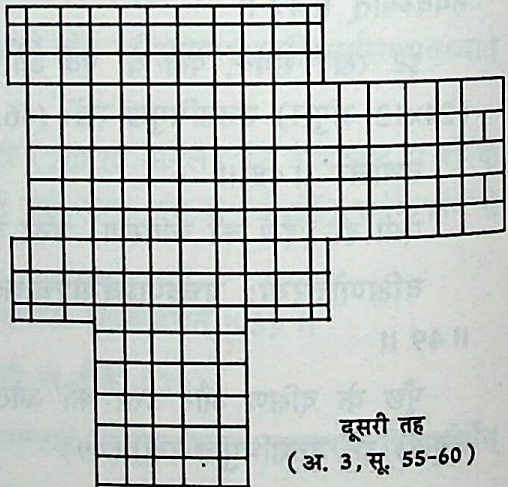
दूसरी तह

(अ. 3, सू. 55-60)

ईंटें	पंचमी 24x24 अं	अध्यर्धा 36x24 अं	अर्ध्या 12x24 अं	पाद 12x12 अं
पहली तह				
आत्मा	100	–	–	–
पंख	48	–	24	–
पूँछ	12	8	6	2
कुल ईंटें	160	8	30	2 = 200
दूसरी तह				
आत्मा	91	–	21	4
पंख	44	6	4	–
पूँछ	30	–	–	–
कुल ईंटें	165	6	25	4 = 200

एष द्विशतः प्रस्तारः ॥ 54 ॥

यह दो सौ (ईंटों) की तह। (54)

अपरस्मिन्प्रस्तार आत्मस्त्रक्तिषु चतस्त्रः पादेष्टका उपदध्यात् ॥ 55 ॥

दूसरी तह में आत्मा के चारों सिरों पर चार पाद ईंटें रखें। (55)

तासामभितो द्वे द्वे अर्धेष्टके ॥ 56 ॥

इनके दोनों ओर दो दो अर्ध्या ईंटें रखें। (56)

पूर्वस्मिन्ननीके पञ्च ॥ 57 ॥

पांच अर्ध्या ईंटें आत्मा के पूर्व बाजू के संपर्क में रखें। (57)

पक्षाग्रयोस्तिस्त्रस्तिस्त्रोऽध्यर्धा उदीचीः ॥ 58 ॥

पंखों के अग्रों पर तीन तीन अध्यर्धा ईंटें उत्तराभिमुख रखें। (58)

तासामन्तरालेष्वेकैकामर्धेष्टकां प्राचीम् ॥ 59 ॥

इन अध्यर्धा ईंटों के बीच में एक-एक अर्ध्या ईंट पूर्वाभिमुख रखें। (59)

शेषमग्निं पञ्चमभागीयाभिः प्रच्छादयेत् ॥ 60 ॥

उर्वरित अग्नि पंचमी ईंटों से ढँकें। (60)

एष द्विशतः प्रस्तारो व्यत्यासं चिनुयाद्यावतः प्रस्तारांश्चिचकीर्षेत् ॥ 61 ॥

यह दो सौ (ईंटों) की (दूसरी) तह। जितनी तह रचने की वे एक दूसरे पर क्रमशः उलट सीधी रखें। (61)

अध्याय चार

अथ वक्रपक्षो व्यस्तपुच्छः ॥ 1 ॥

अब बांकदार पंख और फैली पूँछ (की अग्निचिति)। (1)

तस्येष्टका कारयेत् पुरुषस्य चतुर्थ्यः ॥ 2 ॥

इसके लिये पुरुष के एक चौथाई भाग से (30x30 अंगुल) ईंटें करें। (2)

तासामर्ध्याः पाद्याश्च ॥ 3 ॥

इनकी अर्ध्या और पाद ईंटें भी (करें)। (3)

नित्यमक्ष्णयापच्छेदनमनादेशे ॥ 4 ॥

अलग न कहा हो तो ईंट सदैव अण्क्षया पर तोड़कर (इसके अर्ध्या पाद इत्यादि प्रकार) बनाइयें। (4)

पादेष्टकाश्चतुर्भिः परिगृण्हीयात् ॥ 5 ॥

चार भुजाओं की पाद ईंटें लें। (5)

अर्धपदेन पदेनाध्यर्धपदेन पदसविशेषेणेति ॥ 6 ॥

(चतुर्भुज पाद ईंट की एक भुजा) आधे पद की (7½ अंगुल), (दूसरी) भुजा एक पद की (15 अंगुल), (तीसरी) भुजा डेढ़ पद की (22½ अंगुल), (और चौथी) भुजा एक सविशेष पद की ($15 \times \sqrt{2} =$ 21 अंगुल 7 तिल) लें। (6)

[इस ईंट का क्षेत्रफल = $7\frac{1}{2} \times 15 + \frac{1}{2}\ (15 \times 15) = 225$ वर्ग अंगुल]

चतुर्थी ईंट का क्षेत्रफल = $30 \times 30 = 900$ वर्ग अंगुल।

$\frac{900}{225} = 4$ इसलिये यह चतुर्भुज ईंट पाद ईंट है।]
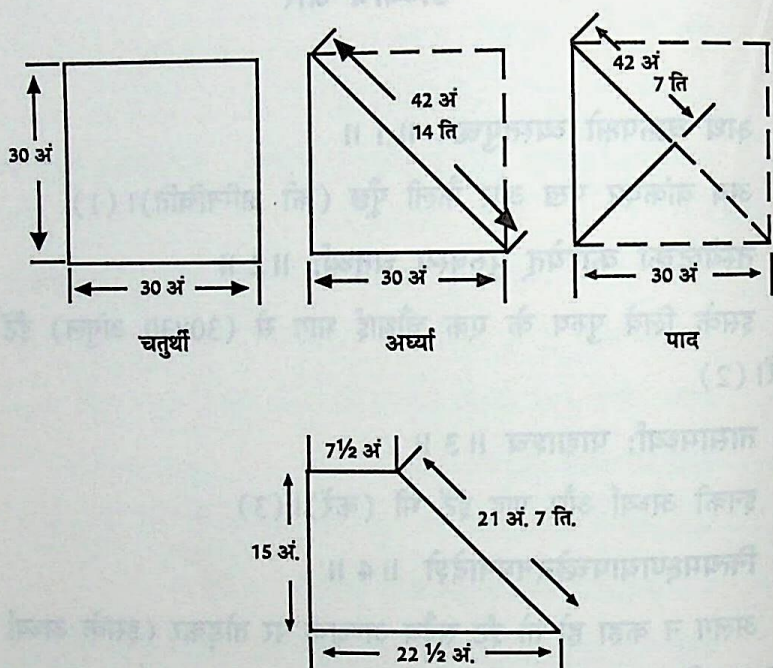
ते द्वे यथा दीर्घसꣳश्लिष्टे स्यातां तथार्धेष्टकां कारयेत् ॥ 7 ॥

ये दो ईंटें इनकी लम्बी भुजाऐं एक दूसरे के पास रखकर अर्ध्या ईंट बनाइयें। (7)

[दो पाद ईंटों से बनी यह ईंट चतुर्थी ईंट के क्षेत्रफल के आधे क्षेत्रफल की होती है। इसे हंसमुखी ईंट कहते हैं (सूत्र 4.27)]
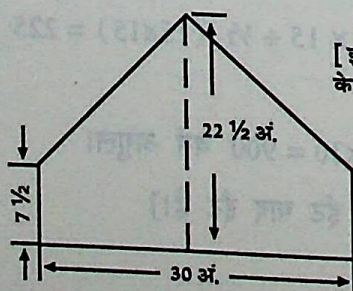
हंसमुखी ईंट (सूत्र 4.27)

अथाग्निं विमिमीते। आत्मा द्विपुरुषायामो दशपदव्यासः ॥ 8 ॥

अब अग्नि का नाप लें (और विन्यास करें)। आत्मा दो पुरुष (240 अंगुल) लंबा और दस पद (150 अंगुल) चौड़ा है। (8)

तस्य दक्षिणादꣳसादुत्तरतोऽध्यर्धप्रक्रमे लक्षणं करोति ॥ 9 ॥

इसके (आत्मा के) दक्षिण अंस से उत्तर की तरफ डेढ़ प्रक्रमों पर (45 अंगुल) चिन्ह लगायें (9)

एवमपरतः ॥ 10 ॥

ऐसा ही पश्चिम की तरफ करें। (10)

[दक्षिण अंस से पश्चिम की तरफ 45 अंगुलों पर चिन्ह लगाएं।]

तयोरुपरिष्टात्स्पन्द्यां नियम्याꣳसमपच्छिन्द्यात् ॥ 11 ॥

उनके (चिन्हों के) ऊपर रस्सी रखकर अंस (सिर) निकाल दें। (11)

एतेनेतरासाꣳस्त्रक्तीनामपच्छेदा व्याख्याताः ॥ 12 ॥

इससे (आत्मा के) इतर सिरे भी निकालने की (रीति) कही गयी है। (12)

स आत्मा। ॥ 13 ॥

वह आत्मा है। (13)

शिरोऽर्धषष्ठपदायाममर्धपुरुषव्यासम्। तस्याꣳसौ प्रक्रमेण प्रक्रमेणापच्छिन्द्यात् ॥ 14 ॥

शीर्ष, 5½ पद (82½ अंगुल) लंबा और आधा पुरुष (60 अंगुल) चौड़ा है। इसके अंस एक एक प्रक्रम से (30 अंगुलों से) निकाल दें। (14)

पुच्छस्य षट्पदा प्राची द्विपुरुषोदीची ॥ 15 ॥

पूँछ की प्राची (पूर्व-पश्चिम लम्बाई) छः पद (90 अंगुल) और उदीची (उत्तर-दक्षिण लम्बाई) दो पुरुष (240 अंगुल) है। (15)

तस्य पूर्वे स्रक्ती त्रिभिस्त्रिभिः प्रक्रमैरपच्छिद्यात्। ॥ 16 ॥

इसके (पूँछ के) पूर्व की ओर के सिरे तीन-तीन प्रक्रमों से (90 अंगुलों से) निकाल दें। (16)

पक्षो द्वादशपदायामो दशपदव्यासः ॥ 17 ॥

पंख बारह पद (180 अंगुल) लम्बा और दस पद (150 अंगुल) चौड़ा है। (17)

तस्य मध्यात् प्राञ्चि षट्पदानि प्रक्रम्य शङ्कुं निहन्यात् ॥ 18 ॥

इसके (पंख के) मध्य से पूर्व की तरफ छः पद (90 अंगुल) अंतर जाकर वहाँ खुंटि ठोकें। (18)

श्रोण्योरेकैकम् ॥ 19 ॥

(पंख के) दोनों श्रोणीयों पर एक-एक (खुंटि ठोकें)। (19)

अथैनाꣳस्पन्द्यया परिचिनुयात् ॥ 20 ॥

अब इन्हे (इन तीन खुंटियों को) रस्सी से बाँधें। (20)

अन्तःस्पन्द्यमपच्छिद्य तत्पुरस्तात् प्राञ्चं दध्यात् ॥ 21 ॥

रस्सी के अन्दर का भाग निकालकर वह आगे पूर्व की तरफ रखें। (21)

स निर्णामः ॥ 22 ॥

यह (पंख का) बांक। (22)

एतेनोत्तरस्य पक्षस्य निर्णामो व्याख्यातः ॥ 23 ॥

इस से उत्तर पंख का बांक भी कहा गया। (23)

पक्षाग्रयोः प्रक्रमप्रमाणानि पञ्च-पञ्च चतुरस्राणि अनूचीनानि कृत्वा सर्वाण्यवाञ्चमक्ष्णयापच्छिन्द्यादर्धान्युद्धरेत् ॥ 24 ॥

पंख के अग्र के पास प्रक्रम (30 अंगुल) नाप के पांच-पांच वर्ग एक दूसरे के सम्पर्क में खींचें और नीचे जाने वाले अक्ष्णयों से उनके (दो) भाग करें, (प्रत्येक के) आधे भाग निकाल दें। (24)

एवर्ठ्ठंसारत्निप्रादेशः सप्तविधः संपद्यते ॥ 25 ॥

ऐसा अरत्नि और प्रादेश सहित सप्तविध (सात वर्ग पुरुष क्षेत्रफल का अग्नि) संपादित होता है। (25)

उपधाने शिरसोऽप्यये चतुर्थीमुपदध्यात् ॥ 26 ॥

ईंटें रखते समय शीर्ष और आत्मा के जोड़ के पास चतुर्थी ईंटें रखें। (26)

हर्ठ्ठंसमुखीं पुरस्तात् ॥ 27 ॥

आगे (पूर्व की तरफ) हंसमुखी (ईंटें रखें)। (27)

पादेष्टके अभितः ॥ 28 ॥

इसके दोनों ओर पाद ईंटें रखें। (28)

तयोरवस्तादभितस्तिस्रस्तिस्रश्चतुरस्रपाद्याः ॥ 29 ॥

इन (दोनों ईंटों के) पीछे दोनों ओर तीन-तीन चतुर्भुज पाद ईंटें (सूत्र 4.6) रखें। (29)

शेषे पादेष्टकाः ॥ 30 ॥

(शीर्ष के) उर्वरित (जगह पर) पाद ईंटें रखें। (30)

अपि वा शिरसोऽ ग्रेहर्ठ्ठंसमुखीमुपदध्यात् तस्या अवस्ताच्चतुर्थी - मुपदध्यात् पादेष्टकेऽभितस्तयोरवस्तादभितः तिस्रस्तिस्रश्चतुरस्रपाद्याः शेषे पादेष्टकाः ॥ 31 ॥

अथवा शीर्ष के अग्रभाग में हंसमुखी रखें। इसके पीछे चतुर्थी ईंट रखें। (हंसमुखी और चतुर्थी ईंटों के) दोनों ओर दो (त्रिभुज) पाद ईंटें रखें। इनके पीछे और दोनों ओर तीन-तीन चतुर्भुज पाद ईंट रखें। (शीर्ष के) उर्वरित भाग में पाद ईंटें रखें। (31)

शिरसोऽवस्तात्पञ्च पादेष्टका व्यतिषक्ता उपदध्यात् ॥ 32 ॥

शीर्ष के पीछे पांच पाद ईंटें उलट सीधी रखें। (32)

[पांच ईंटों में तीन ईंटों के शिरोकोण पूर्व की तरफ और दो ईंटों के शिरोकोण पश्चिम की तरफ होते हैं।

तथा पुच्छस्य पुरस्तात् ॥ 33 ॥

ऐसी ही पूँछ के आगे (ईंटों की व्यवस्था होती है)। (33)

यद्यदपच्छिन्नं तस्मिन्नर्धेष्टकाः पादेष्टकाश्चोपदध्यात् ॥ 34 ॥

जहाँ-जहाँ (कोई) भाग निकाल दिया है (सूत्र 4.14, 4.16) वहाँ अर्ध्या और पाद ईंटें रखें। (34)

शेषमग्निं चतुर्भागीयाभिः प्रच्छादयेत् ॥ 35 ॥

उर्वरित अग्नि चतुर्थी ईंटों से ढँकें। (35)

पाद्याभिः सार्ध्याभिः संख्या पूरयेत् ॥ 36 ॥

पाद और अर्ध्या ईंटों से (दो सौ) संख्या पूरी करें। (36)

अपरस्मिन्प्रस्तारे हꣳसमुखीश्चतस्रश्चतसृभिः पादेष्टकाभिः संयोजयेद्यथा दीर्घचतुरस्रꣳसंपद्यते तत्तिर्यक् स्वयमातृण्णावकाश उपदध्यात् ॥ 37 ॥

दूसरी तह में (आत्मा में) चार हंसमुखी ईंटें चार (त्रिभुज) पाद ईंटों के साथ ऐसी रखें कि आयत बनेगा। वह (आयत) स्वयमातृण्णा के जगह पर आडा रखें। (37)

हꣳसमुख्यौ प्रतीच्यौ पुच्छाप्ययेऽर्धपदेनात्मनि विशये ॥ 38 ॥

पूँछ और आत्मा के जोड़ पर पश्चिमाभिमुख दो हंसमुखी ईंटें पूँछ में अर्धपद आयेंगी ऐसी रखें। (38)

तयोरवस्तादभितस्तिस्रः पादेष्टकाः प्राङ्मुखीरुपदध्यात् ॥ 39 ॥

इन दोनों ईंटों के पीछे दोनों ओर तीन पाद ईंटें पूर्वाभिमुख रखें। (39)

पुच्छस्यावस्तात्पञ्चदश पादेष्टका व्यतिषक्ता उपदध्यात् ॥ 40 ॥

पूँछ के पीछे 15 पाद ईंटें उलट सीधी रखें। (40)

पादेष्टके अर्धेष्टकेति पक्षपत्राणां प्राचीर्व्यत्यासं चिनुयात् ॥ 41 ॥

पंख के पर के लिये पाद और अर्ध्या ईंटें पूर्वाभिमुख उलट सीधी चिनें। (41)

विशये यदपच्छिन्नं तस्मिन्नर्धेष्टकाः पादेष्टकाश्चोपदध्यात् ॥ 42 ॥

जोड़ के पास जहाँ कोई भाग निकाल दिया है वहाँ पाद और अर्ध्या ईंटें रखें। (42)

शेषमग्निं चतुर्भागीयाभिः प्रच्छादयेत्पाद्याभिः साध्याभिः संख्यां पूरयेत् ॥ 43 ॥

उर्वरित अग्नि चतुर्थी ईंटों से ढँकें। अर्ध्या ईंटों के साथ पाद ईंटों से (दो सौ ईंटों की) संख्या पूरी करें। (43)

श्येनचिति (प्रकार 1)

शीर्ष का दूसरा प्रकार (अ. 4 सू. 31)
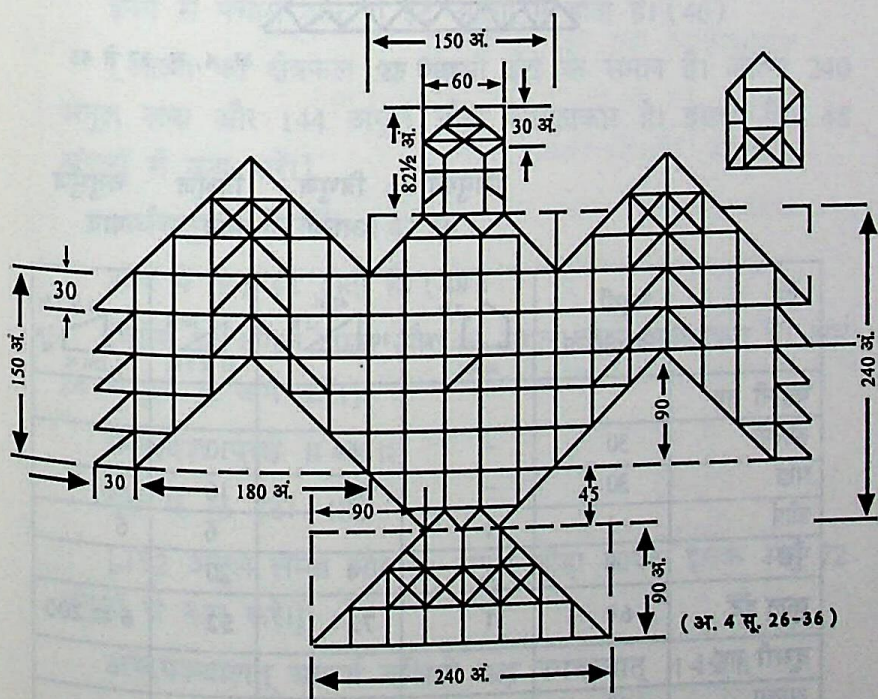
आत्मा = 150 x 150 + ½ (60 x 150) x 45 x 2= 22500 + 9450 चौ. अं.
पंख = 2 [150 x 180 + ½ x 30 x 30 x 5] = 2 [27000 + 2250] चौ. अं.
शीर्ष = 60 x 52.5 + ½ X 60 x 30 = 3150+900 = 4050 चौ. अं.
पुच्छ = ½ (240 + 60) x 90 = 13500 चौ. अं.
कुल क्षेत्रफल = 108000 चौ. अं. = 7 ½ चौ. पु.

दूसरी तह

अ. 4, सू. 37 ते 43

ईंट	चतुर्थी 30x30 अं.	हंसमुखी (21 अं., 7 ति., 7½, 30 अं.)	त्रिभुज अर्ध्या (42 अं., 14 ति., 30)	त्रिभुज पाद (30 अं., 21 अं. 7 ति.)	चतुर्भुज पाद (21 अं. 7 ति., 7½ अं., 15, 22½ अं.)
पहली तह					
आत्मा	30	–	6	10	–
पंख	30	–	62	16	–
शीर्ष	1	1	–	6	6
पूँछ	8	–	4	20	–
कुल ईंटें	**69**	**1**	**72**	**52**	**6 = 200**
दूसरी तह					
आत्मा	12	4	28	4	–
पंख	48	–	28	34	–
शीर्ष	–	–	10	–	–
पूँछ	8	2	4	18	–
कुल ईंटें	**68**	**6**	**70**	**56**	**– = 200**

अथापरः ॥ 44 ॥

अब दूसरी (प्रकार की श्येनचिति)। (44)

पुरुषस्य पञ्चमीभिः शतमशीतिः सप्तार्धं च सारत्निप्रादेशः सप्तविधः संपद्यते ॥ 45॥

पुरुष के पांचवें भाग के 187½ ईंटों से अरत्नि और प्रादेश सह सप्तविध (सात वर्ग पुरुष क्षेत्रफल) संपादित होता है। (45)

[$\frac{120}{5}$ = 24 अंगुल, 24 x 24 अंगुल वर्ग ईंटें।

24X24X187½ = 108000 वर्ग अंगुल = 7½ वर्ग पुरुष।]

तासां पञ्चाशद् द्वे च आत्मनि ॥ 46 ॥

इनमें से पचास और दो ईंटें आत्मा में होती हैं। (46)

[आत्मा का क्षेत्रफल 52 पंचमीं ईंटों के समान है। आत्मा 240 अंगुल लंबा और 144 अंगुल चौड़ा आयताकार है। इसके सिरे 48 अंगुलों से कम करें।]

अर्धचतुर्थाः शिरसि ॥ 47 ॥

शीर्ष में 3½ ईंटें होती हैं। (47)

[शीर्ष 54 अंगुल लम्बा और 48 अंगुल चौड़ा आयताकार है। अंस 24 अंगुलों से कम करें।]

पञ्चदश पुच्छे ॥ 48 ॥

पूँछ में 15 ईंटें। (48)

[192 अंगुल लम्बा और 72 अंगुल चौड़ा आयत, इसके अंस 72 अंगुलों से कम करें।]

अष्टपञ्चाशत् साध्या दक्षिणे पक्ष उपदध्यात् ॥ 49 ॥

आधी ईंट के साथ 58 ईंटें दक्षिण पंख में रखें। (49)

[216 अंगुल लंबा और 144 अंगुल चौड़ा आयत। इसका बांक 72 अंगुल हैं।]

तथोत्तरे ॥ 50 ॥

ऐसा ही उत्तर पंख में। (50)

अर्धव्यायामेन स्रक्तीनामपच्छेदः ॥ 51 ॥

(आत्मा की) सिरे आधे व्यायाम से (48 अंगुलों से) निकाल दें। (51)

संनतं पुच्छम् ॥ 52 ॥

पूँछ (ऐसा) साँकडा करें। (52)

पक्षयोस्त्रिभिस्त्रिभिररत्निभिरपनामः ॥ 53 ॥

दोनों पंख तीन-तीन अरत्नियों के (72 अंगुलों के) बांकदार करें। (53)

अध्यर्ध्याभिः षट् षट् पत्राणि कुर्यात् ॥ 54 ॥

अध्यर्धा ईंटों से छः छः पर बनाइयें। (54)

आकृतिः शिरसो नित्या ॥ 55 ॥

शीर्ष का आकार पहले जैसा ही रखें। (55)

अथेष्टकानां विकाराः ॥ 56 ॥

अब ईंटों के प्रकार। (56)

पुरुषस्य पञ्चम्यस्ता एवैकतोऽध्यर्धाः ॥ 57 ॥

पुरुष के पाचवें भाग की पंचमी ईंटें। इनकी एक बाजू डेढ़ गुनी बढ़ाकर अध्यर्धा (36x24 अंगुल) ईंटें। (57)

ता एवैकतः सपादाः ॥ 58 ॥

इनकी ही (पंचमी ईंटों की) एक बाजू एक चौथाई से बढ़ाकर सपादा। (30x24 अंगुल) ईंटें। (58)

पञ्चमभागीयायाः साध्या: पाद्याः ॥ 59 ॥

पंचमी ईंटों की अर्ध्या के सह पाद ईंटें। (59)

तथाध्यर्ध्यायाः॥ (60)

ऐसे ही अध्यर्धा (ईंटों की अर्ध्या और पाद ईंटें)। (60)

तयोश्चाष्टमभागौ तथा श्लेषयेद्यथा तिस्रः स्रक्तयो भवन्ति ॥ 61 ॥

पंचमी और इसकी अध्यर्धा (ईंटों की) एक अष्टमांश (क्षेत्रफल की ईंटें) ऐसी जोड़े की उनके तीन सिरे होंगे। (61)

[इस त्रिभुज ईंट को उभयी कहते हैं।]

पञ्चमभागीयायाः चाष्टम्यः॥ 62 ॥

और पंचमी ईंटों की आठवें भाग की अष्टमी ईंटें। (62)

[पंचमी ईंट का क्षेत्रफल x $\frac{1}{8}$ = अष्टमी ईंट का क्षेत्रफल।]
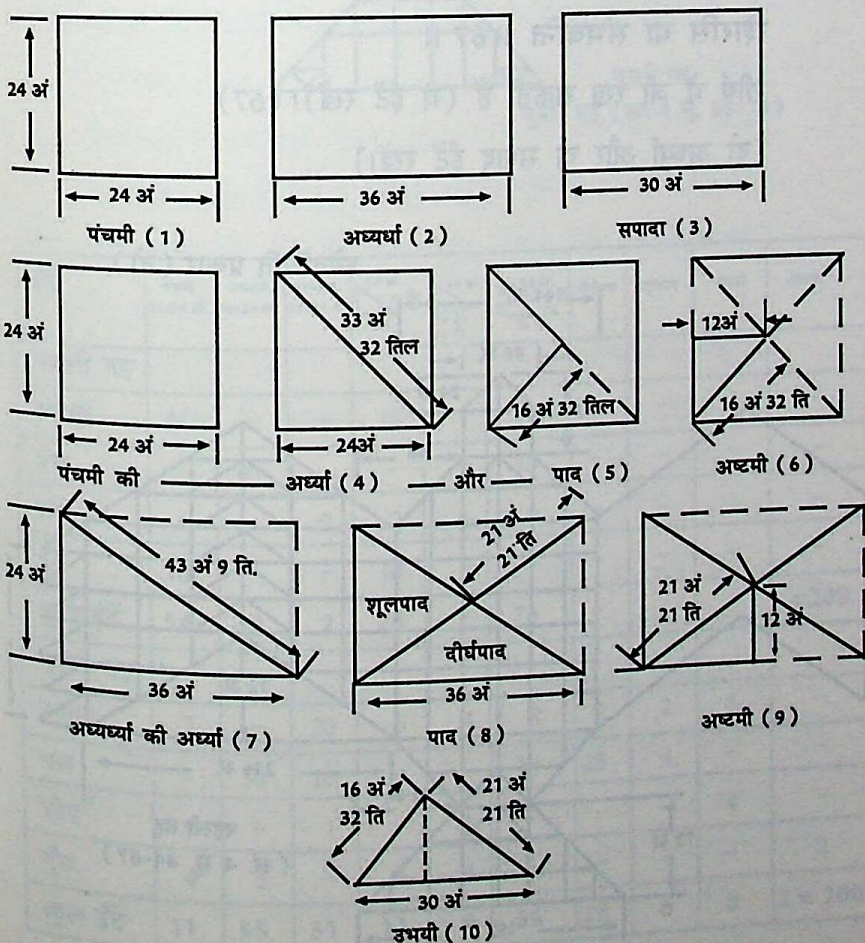
तानि दश ॥63॥

ये दस (प्रकार की) ईंटें। (63)

आत्मनि पञ्चमभागीयाः साध्यर्धा उपदध्यात् ॥64॥

आत्मा में अध्यर्धा (ईंटों के) साथ पंचमी (ईंटें) रखें। (64)

तथा पुच्छे ॥65॥

ऐसे ही पूँछ में। (65)

पक्षयोश्चाध्यर्धाः साध्यर्धाः ॥66॥

दोनों पंखों में अध्यर्धा (ईंटों के) साथ अध्यर्धा ईंटें रखें। (66)

शिरसि या संभवन्ति ॥67॥

शीर्ष में जो रख सकती हैं (वे ईंटें रखें)। (67)

[दो अध्यर्धा और दो सपाद ईंटें रखें।]

श्येनचिति प्रकार (दो)

पहली तह
(अं. 4 सू. 44-67)

पहली तह

दूसरी तह (आ 4 सू. 68-74)

ईंटें	पंचमी 24x24 अं.	अध्यर्धा 36x24 अं.	सपादा 30x24 अं.	त्रिकोण (33 अं., 32 ति., 24 अं.)	त्रिकोण (24 अं., 16 अं. 32 ति.)	त्रिकोण (43 अं., 9 ति, 24 अं., 36 अं.)	दीर्घपाद	शूलपाद	उभयी	अष्टमी
पहली तह										
आत्मा	44	–	–	16	–	–	–	–	–	–
पंख	–	40	–	–	–	76	–	–	–	–
शीर्ष	–	–	2	2	–	–	–	–	–	–
पूँछ	10	–	–	10	–	–	–	–	–	–
कुल ईंटें	54	40	2	28	–	76	–	–	–	=200
दूसरी तह										
आत्मा	7	–	20	6	4	8	2	2	4	–
पंख	–	50	10	–	–	30	26	4	–	–
शीर्ष	–	–	1	–	1	–	–	–	4	–
पूँछ	4	5	–	6	4	–	–	–	–	2
कुल ईंटें	11	55	31	12	9	38	28	6	8	2 = 200

अपरस्मिन्प्रस्तारे पूर्वयोः पक्षाप्ययोरेकैकामुभयीमुपदध्यात् ॥ 68 ॥

दूसरी तह में आत्मा और पंख के जोड़ पर पूर्व की तरफ एक-एक उभयी ईंट रखें। (68)

एकैकामपरयोः ॥ 69 ॥

एक-एक (उभयी ईंट) पश्चिम की तरफ रखें। (69)

द्वे द्वे शिरसः पार्श्वयोः ॥ 70 ॥

शीर्ष के दोनों ओर दो-दो (उभयी ईंटें) रखें। (70)

पुच्छस्यावस्तादध्यर्ध्याः प्राचीर्यथावकाशम् ॥ 71 ॥

पूँछ के पीछे के भाग में अध्यर्धा ईंटें पूर्वाभिमुख जैसी जगह मिलें वैसी रखें। (71)

[पांच अध्यर्धा ईंटें रखें।]

पार्श्वयोः पाद्याः साष्टमभागाः ॥ 72 ॥

(अध्यर्धा ईंटों के) दोनों ओर अष्टमी ईंटों के साथ पाद ईंटें रखें। (72)

पक्षयोश्चाध्यर्ध्याः सावयवाः ॥ 73 ॥

दोनों पंखों में अध्यर्ध्या ईंटें इनके अवयवों के साथ (अध्यर्धा, अर्ध्या इत्यादि) रखें। (73)

शेषं यथायोगं यथासंख्यं यथाधर्मं चोपदध्यात् ॥ 74 ॥

उर्वरित क्षेत्र में जैसी व्यवस्था होगी, ईंटों की योग्य संख्या जैसी मिलेगी और नियमों का यथायोग्य पालन होगा ऐसी ईंटें रखें। (74)

कङ्कचित एतेनात्मा पुच्छं च व्याख्यातम् ॥ 75 ॥

कंकचिति का आत्मा और पूँछ इससे कही गई हैं। (75)

[कंकचिति का आत्मा और पूँछ दूसरे प्रकार के श्येनचिति के आत्मा और पूँछ जैसे होते हैं।]

शिरसि पंचोपदध्यात् ॥ 76 ॥

शीर्ष में पांच (ईंटें) रखें। (76)

[शीर्ष 72 अंगुल लम्बा और 48 अंगुल चौड़ा है। अंस 24 अंगुलों से कम करें।]

तस्याकृतिर्व्याख्याता ॥ 77 ॥

इसका (शीर्ष का) आकार कहा है। (77)

सप्तपञ्चाशद् दक्षिणे पक्ष उपदध्यात् ॥ 78 ॥

दक्षिण पंख में 57 (पंचमी) ईंटें रखें (78)

[216 अंगुल लम्बा और 144 अंगुल चौड़ा आयत]

तथोत्तरे ॥ 79 ॥

वैसा ही उत्तर (पंख में)। (79)

व्यायामेन सप्रादेशेन पक्षयोरपनामः ॥ 80 ॥

पंखों का बांक एक प्रादेश के साथ एक व्यायाम (96 + 12 =108 अंगुल) है। (80)

पञ्चमभागीयाध्यर्धाभिः षट् षट् पत्राणि कुर्यात् ॥ 81 ॥

पंचमी (ईंटों के) अध्यर्धा (ईंटों से) छः छः पर करें। (81)

अध्यर्धावशिष्यते ॥ 82 ॥

एक अध्यर्धा ईंट शेष रहती है। (82)

[आत्मा में 52 ईंटें, पूँछ में 15, पंखों में 57x2 ऐसी कुल 186 ईंटें होती हैं। 7½ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल के लिये 187½ पंचमी ईंटें लगती हैं (सूत्र 4.45)। एक अध्यर्ध्या ईंट शेष रहती हैं।]

तया पुच्छस्यावस्तात्पादावरत्निमात्रावरत्न्यन्तरालौ प्रादेशव्यासौ भवतः ॥ 83 ॥

उस पूँछ के पीछे एक अरत्नि लम्बे, एक प्रदेश चौड़े और एक अरत्नि दूरी पर होने वाले दो पाँव (डेढ़ ईंट के क्षेत्रफल के समान) होते हैं। (83)

तयोरवस्तादभितो द्वौ द्वावष्टमभागौ प्राग्भेदावुपदध्यात् ॥ 84 ॥

इनके पीछे दोनों ओर दो-दो (पंचमी की) अष्टमी ईंटें इनके कर्ण वायव्य-आग्नेय और नैऋत्य-ईशान्य दिशाओं की तरफ आयेंगें ऐसी रखें। (84)

एवꣳसारत्निप्रादेशः सप्तविधः संपद्यते ॥ 85 ॥

अरत्नि और प्रादेश के साथ ऐसा सप्तविध (सात वर्ग पुरुष क्षेत्रफल) संपादित होता है। (85)

[यह कंकचिति का विन्यास हुआ। पंचमी ईंटें केवल विन्यास के लिये इस्तेमाल की गई हैं]

अथेष्टकांना विकाराः पञ्चमभागीयाः सावयवाः ॥ 86 ॥

अब ईंटों के (विभिन्न) प्रकार, पुरुष के पांचवे भाग की इनके सब अवयवों के सहित (अध्यर्ध्या, अर्ध्या, पाद) ईंटें। (86)

पादेष्टकां चतुर्भिः परिगृण्हीयात् ॥ 87 ॥

चार भुजाओं की पाद ईंटें लें। (87)

अर्धप्रादेशेनाध्यर्धप्रादेशेन प्रादेशेन प्रादेशसविशेषेण इति ॥ 88 ॥

(चतुर्भुज पाद ईंट की एक बाजू) अर्धप्रादेश (छः अंगुल) (दूसरी) डेढ़ प्रादेश (18 अंगुल) (तीसरी) एक प्रादेश (12 अंगुल) (और चौथी) एक सविशेष प्रादेश ($12 \times \sqrt{2} = 16$ अंगुल 33 तिल) लम्बी होती हैं। (88)

[ईंट का क्षेत्रफल $= 12 \times 6 + \frac{1}{2}(12 \times 12) = 144$ वर्ग अंगुल) $\frac{24 \times 24}{144} = 4$ इसीलिये यह पाद ईंट है]

अध्यर्धेष्टकां चतुर्भिः परिगृण्हीयादर्धव्यायामेन द्वाभ्यामरत्निभ्यां अरत्नि सविशेषेणेति ॥ 89 ॥

चतुर्भुज अध्यर्धा ईंट लें। (उसकी एक बाजू) अर्धव्यायाम (48 अंगुल) दो भुजाऐं एक अरत्नि (24 अंगुल) (और चौथी बाजू) अरत्नि

की सविशेष ($24 \times \sqrt{2} = 33$ अंगुल 32 तिल) लम्बी होती है। (89)

[क्षेत्रफल = 24x24 + ½ (24x24) = 1½ वर्ग अरत्नि]

ताः षट् ॥ 90॥

ये छः (प्रकार की ईंटें)। (90)

चतुर्भुज अध्यर्धा ईंट
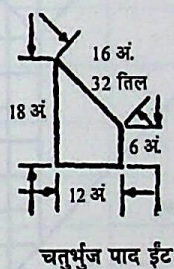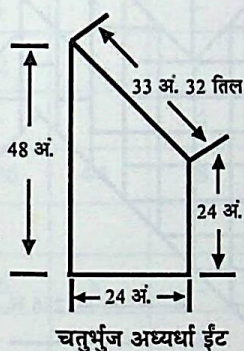
चतुर्भुज पाद ईंट

तासां चतुरस्रपाद्याः साष्टमभागाः पादयोरुपधाय शेषं यथायोगं यथासंख्यं यथाधर्मं चोपदध्यात् ॥ 91 ॥

इनमें से चतुर्भुज पाद ईंटें अष्टमी ईंटों के साथ दोनों पाँव पर रखें और शेष अग्नि में जैसी व्यवस्था होगी, ईंटों की योग्य संख्या जैसी मिलेंगी और नियमों का यथायोग्य पालन होगा ऐसी ईंटें रखें। (91)

अलजचित एतेनात्मा शिरः पुच्छं च व्याख्यातं पादावपोद्धृत्य ॥ 92 ॥

इसी से अलजचिति का आत्मा, शीर्ष और पूँछ कहे गये हैं। इसे पाँव नहीं हैं। (92)

त्रिषष्टिर्दक्षिणे पक्ष उपदध्यात् ॥ 93 ॥

दक्षिण पंख में 63 (पंचमी ईंटें) रखें। (93)

[240 अंगुल लम्बा और 144 अंगुल चौड़ा आयत प्राप्त होता है]

कंक चिति (अं. 4 सूत्र 75-91)

144 अं.
48 अं.
24 अं.
72 अं.
240 अं.
108 अं.
216 अं.
72 अं.
24 अं.
192 अं.

पहली तह

दूसरी तह
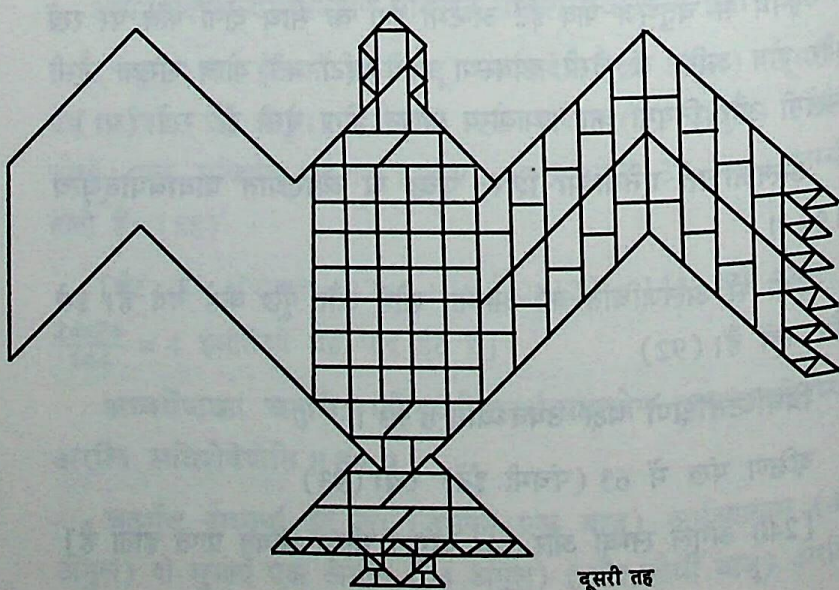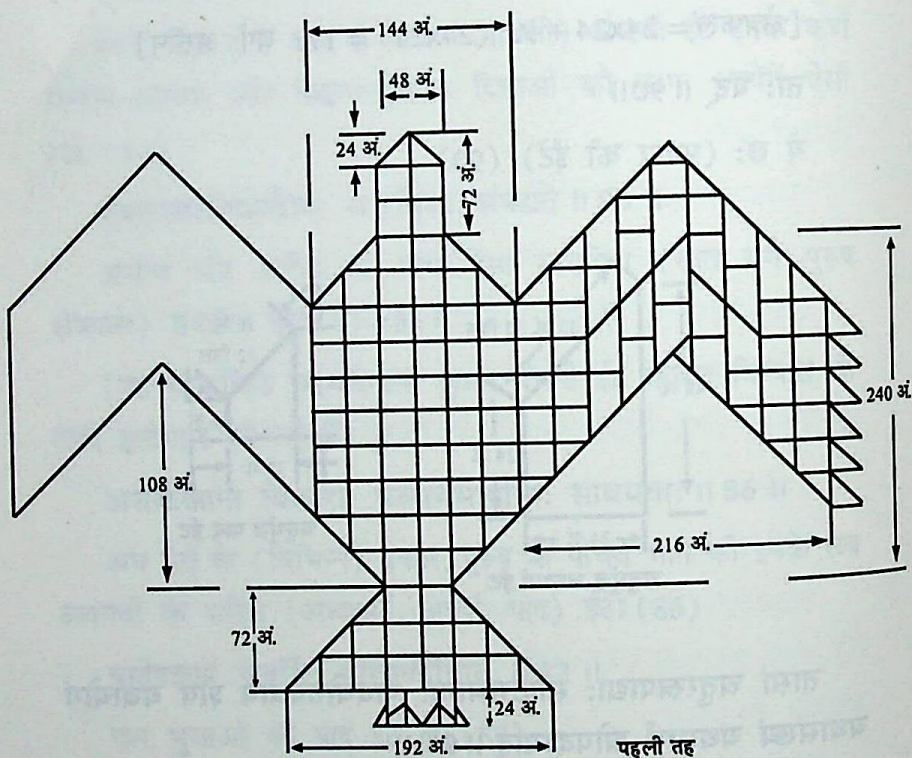
ईंटें	पंचमी	अर्ध्या	पाद	अष्टमी	अध्यर्धा	चतुर्भुज अध्यर्धा	चतुर्भुज पाद
पहली तह							
आत्मा	48	8	–	–	–	–	–
पंख	42	28	4	–	–	38	–
शीर्ष	4	2	–	–	–	–	–
पूँछ	12	6	–	–	–	–	–
पाँव	–	–	4	–	–	–	4
कुल ईंटें	106	44	8	–	–	38	4 = 200
दूसरी तह							
आत्मा	36	8	2	–	–	4	–
पंख	–	12	24	–	–	72	–
शीर्ष	–	–	9	–	–	2	–
पूँछ	–	4	13	–	–	6	–
पाँव	–	–	–	4	–	–	4
कुल ईंटें	36	24	48	4	–	84	4 = 200

तथोत्तरे ॥ 94 ॥

ऐसे ही उत्तर (पंख) में। (94)

पुरुषेण पक्षयोरपनामः ॥ 95 ॥

दोनों पंखों का बांक एक पुरुष (120 अंगुल) है। (95)

अपरस्मादपनामात्प्राञ्चमरत्निं मित्वा तस्मिन्स्पन्द्यां नियम्यापरं पक्षपत्रापच्छेदमन्वायच्छेत् ॥ 96 ॥

पंख के बांक से पश्चिम दिशा से पूर्व की तरफ एक अरत्नि अंतर नापें। (याने अरत्नि लम्बी बाजू के छः वर्ग निकालें।) वहाँ रस्सी रखकर

पश्चिम की तरफ पंख के पर के लिये (उन वर्गों के) अक्ष्णया से दो (दो) भाग करें। (96)

एवं पञ्च पञ्चम्यः साध्यर्धा उद्धृता भवन्ति ॥ 97 ॥

इसी से 5½ पंचमी ईंटें (पंखों से) घटती हैं। (97)

पादेष्टकामपनाम उपधाय ॥ 98 ॥

बांक के पास पाद ईंट रखकर। (98)

तासां चतुरस्त्रपाद्याः साष्टमभागा अपोद्धृत्य शेषा यथायोगं यथासंख्यं यथाधर्मं चोपदध्यात् ॥ 99 ॥

इनमें से (कंकचिति के लिये जो) चतुर्भुज पाद ईंटें और अष्टमी ईंटें दी हैं वे निकाल दें (याने इस्तेमाल न करें)। शेष अग्नि में जैसी व्यवस्था होगी, ईंटों की योग्य संख्या जैसी मिलेगी और यथायोग्य नियमों का पालन होगा ऐसी ईंटें रखें। (99)

प्रउगचितं चिन्वीतेति ॥ 100 ॥

प्रउगचिति चिनते हैं। (100)

अलजचिति (अ. 4 सू. 92-99)
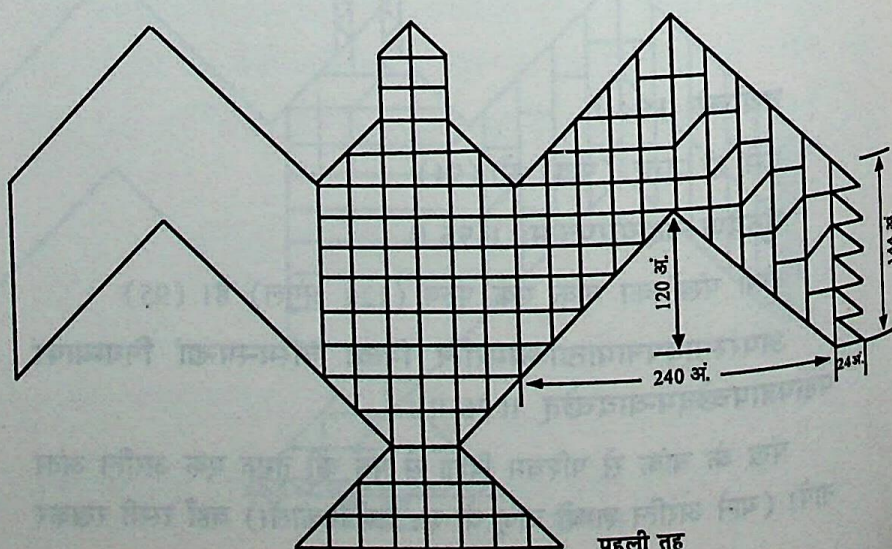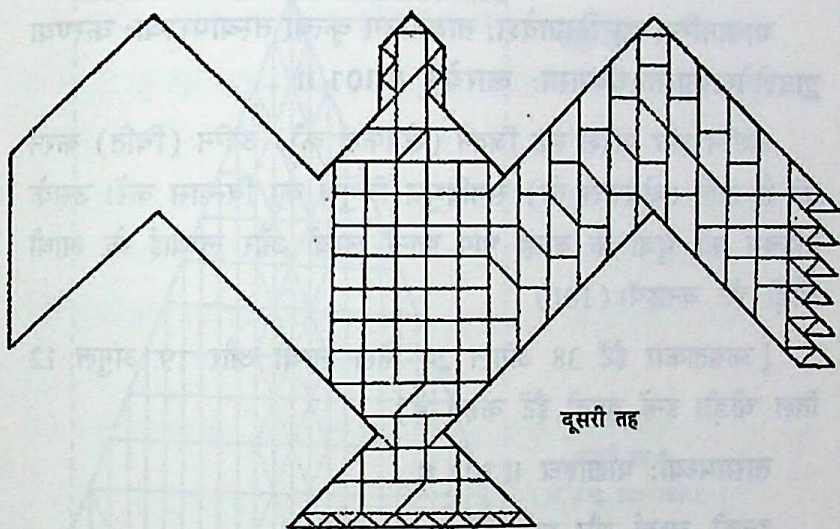
ईंटें	पंचमी	अर्घ्या	पाद	चतुर्भुज अध्यर्धा
पहली तह				
आत्मा	48	8	–	–
पंख	48	30	–	42
शीर्ष	4	2	–	–
पूँछ	12	6	–	–
कुल ईंटें	112	46	–	42 = 200
दूसरी तह				
आत्मा	37	4	2	4
पंख	14	8	26	70
शीर्ष	–	–	9	2
पूँछ	3	2	17	2
कुल ईंटें	54	14	54	78 = 200

यावानग्निः सारत्निप्रादेशः तावत्प्रउगं कृत्वा तस्यापरस्याः करण्या द्वादशेनेष्टकास्तदर्धव्यासाः कारयेत् ॥ 101 ॥

अरत्नि और प्रादेश सह जितने (क्षेत्रफल की) अग्नि (चिति) करने की है उतने (क्षेत्रफल के) समद्विभुज त्रिभुज का विन्यास करें। उसके पश्चिम की भुजा के बारह भाग इतनी लम्बी और लम्बाई के आधी चौड़ी ईंटें बनाइयें। (101)

[आयताकार ईंटें 38 अंगुल 24 तिल लम्बी और 19 अंगुल 12 तिल चौड़ी। इन्हें बृहती ईंटें कहते हैं]

तासामर्ध्याः पाद्याश्च ॥ 102 ॥

इनकी अर्ध्या और पाद ईंटें। (102)

तासां द्वे अर्धेष्टके बाह्य सविशेषे चुबुक उपदध्यात् ॥ 103 ॥

इन ईंटों में दो अर्ध्या ईंटें इनकी सविशेष बाजू बाहर आयेगी ऐसी ठोढ़ी के पास (पूर्व के सिर पर) रखें। (103)

अर्ध्याश्चान्तयोः ॥ 104 ॥

और अर्ध्या (ईंट) बाहर की ओर (रखें)। (104)

शेषमग्निं बृहतीभिः प्रच्छादयेत्। अर्धेष्टाकाभिः संख्यां पूरयेत् ॥ 105 ॥

उर्वरित अग्नि बृहती ईंटों से ढँकें। अर्ध्या ईंटों से (दो सौ की) संख्या पूरी करें। (105)

अपरस्मिन्प्रस्तारे अपरस्मिन्ननीके सप्तचत्वारिंशत् पादेष्टका व्यतिषक्ता उपदध्यात् ॥ 106 ॥

दूसरी तह में पश्चिम की बाजू के सम्पर्क में 47 (शूल) पाद ईंटें उलट सीधी रखें। (106)

चुबुक एकाम् ॥ 107 ॥

ठोढ़ी में एक (शूलपाद ईंट रखें)। (107)
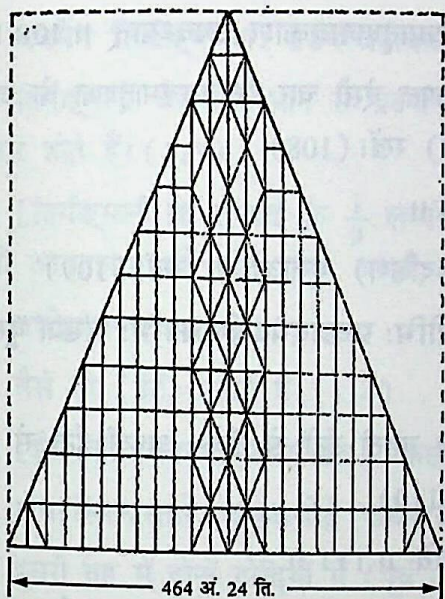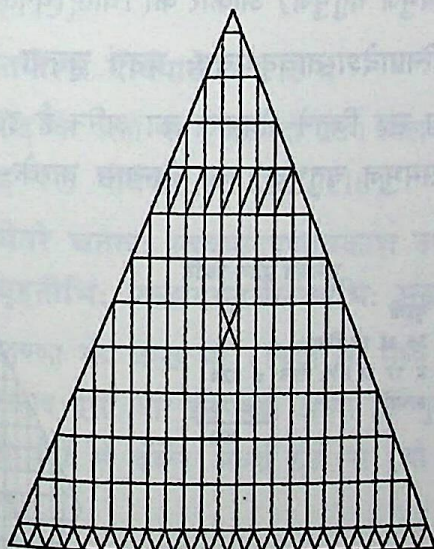
वीटा	बृहती 38 अ. 24 ति. X19 अ. 12 ति	अर्ध्या	दीर्घपाद	शूलपाद	बेरीज
पहली तह	88	112	-	-	200
दूसरी तह	114	34	2	50	200

दीर्घे चेतरे चतस्त्रः स्वयमातृण्णावकाश उपदध्यात् ॥ 108 ॥

दो दीर्घपाद और दो शूलपाद ऐसी चार ईंटें स्वयमातृण्णा के जगह पर (चिति के मध्य भाग में) रखें। (108)

अर्ध्याश्चान्तयोः ॥ 109 ॥

अर्ध्या ईंटें। (उत्तर और दक्षिण) भुजाओं पर रखें। (109)

शेषमग्निं बृहतीभिः प्राचीभिः प्रच्छादयेदर्धेष्टकाभिः संख्यां पूरयेत् ॥ 110 ॥

उर्वरित अग्नि पूर्वाभिमुख बृहती ईंटों से ढँकें। अर्ध्या ईंटों से (दो सौ की) संख्या पूरी करें। (110)

उभयतः प्रउगं चिन्वीतेति ॥ 111 ॥

उभयतः प्रउग (समभुज चतुर्भुज) आकार की चिति चिनते हैं। (111)

यावानग्निः सारत्निप्रादेशस्तावदुभयतः प्रउगं कृत्वा ॥ 112 ॥

अरत्नि और प्रादेश सह जितने क्षेत्रफल का अग्नि है इतने क्षेत्रफल का उभयतः प्रउग (समभुज चतुर्भुज) का विन्यास करके- (112)

पहली तह
(अं 4, सू. 114)

दूसरी तह
(अं 4, सू. 114-117)
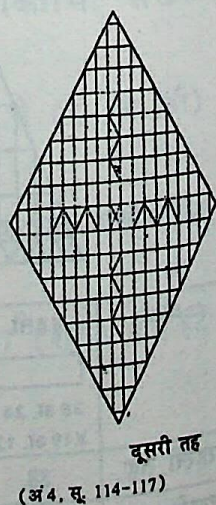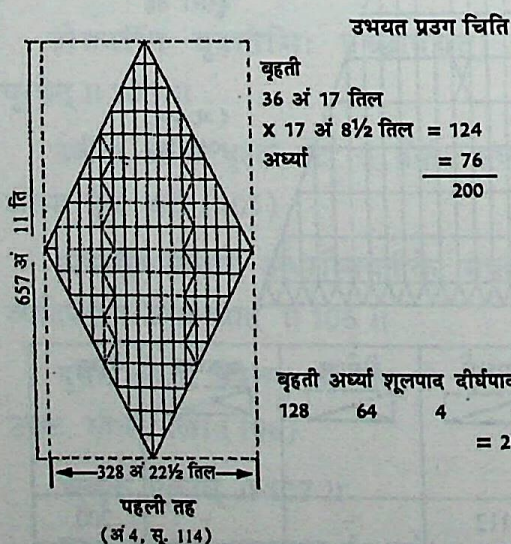
नवमेन तिर्यङ्मान्याः प्रउगचितोक्ता विकाराः ॥ 113 ॥

तिर्यङ्मानी के नौवें भाग से प्रउगचिति में कहे अनुसार ईंटों के प्रकार होते हैं। (113)

[तिर्यङ्मानी के लम्बाई के $\frac{1}{9}$ लम्बी और लम्बाई के आधी चौड़ी ऐसी आयताकार ईंटें और इनके अर्ध्या और पाद प्रकार की ईंटें लें।]

तथोपधानम् ॥ 114 ॥

वैसे ही (ईंटें) रखते हैं। (114)

[ईंटों की व्यवस्था प्रउगचिति में कही है वैसी यहाँ भी होती है।]

अपरस्मिन्प्रस्तारे चुबुकयोर्द्वे पादेष्टके उपदध्यात् ॥ 115 ॥

दूसरी तह में दोनों ठोड़ियों में (पूर्व और पश्चिम सिरो में) दो पाद ईंटें रखें। (115)

सन्ध्यन्तयोश्च दीर्घपाद्ये ॥ 116 ॥

और जोड़ के अंतों पर (जहाँ दो प्रउग मिलकर उभयतः प्रउग होता है इस जोड़ पर) दीर्घपाद ईंटें रखें। (116)

दीर्घे चेतरे चतस्रः स्वयमातृण्णावकाश उपदध्यादर्ध्याश्चान्तयोः शेषमिंग्न बृहतीभिः प्रच्छादयेदर्धेष्टकाभिः संख्यां पूरयेत् ॥ 117 ॥

स्वयमातृण्णा के जगह पर (चिति के मध्य भाग में) दो दीर्घपाद और दो शूलपाद ऐसी चार ईंटें रखें। अर्ध्या ईंटें भुजाओं पर रखें। उर्वरित अग्नि बृहती ईंटों से ढँकें। अर्ध्या ईंटों से (दो सौ की) संख्या पूरी करें। (117)

अध्याय पाँच

रथचक्रचितं चिन्वीतेति विज्ञायते ॥ 1 ॥

ज्ञात है कि रथचक्रचिति चिनते हैं। (1)

द्वयानि तु खलु रथचक्राणि भवन्ति ॥ 2 ॥

रथचक्र के सचमुच दो प्रकार होते हैं। (2)

साराणि च प्रधियुक्तानि च ॥ 3 ॥

अरा और प्रधि होने वाले। (3)

अविशेषात्ते मन्यामहे ऽन्यतरस्याकृतिरिति ॥ 4 ॥

किस विशिष्ट आकार की (रथचक्र) चिति रचने की इसके विषय में कुछ नियम दिया नहीं है इसलिये दोनों आकार की (चिति) होती है ऐसा हम मानते हैं। (4)

अथाग्निं विमिमीते यावानग्निः सारत्निप्रादेशस्तावतीं भूमिं परिमण्डलां कृत्वा तस्मिन्यावत्संभवेत्समचतुरस्रं कृत्वा ॥ 5 ॥

अब अग्नि (चिति) की नापें और विन्यास कहता हूँ। अरत्नि और प्रादेश सहित जितने क्षेत्रफल का अग्नि होगा इतने क्षेत्रफल का वृत्त खींचकर इसमें बड़े से बड़ा समायोजित वर्ग खींचें। (5)

तस्य करण्या द्वादशेनेष्टकाः कारयेत् ॥ 6 ॥

इस (वर्ग के) भुजा के बारहवें भाग से (वर्गाकार) ईंटें बनाइयें। (6)

[ये 144 ईंटें हुई]

तासाꣳषट् प्रधावुपधाय शेषमष्टधा विभजेत् ॥ 7 ॥

इनमें से छः (ईंटें) प्रधि में रखकर उर्वरित (प्रधि के क्षेत्रफल के) आठ भाग करें। (7)

[प्रत्येक प्रधि में 14 ईंटें होती हैं। चार प्रधियों में 56 ईंटें होगी। ईंटों की कुल संख्या 144+56 = 200 होती है]
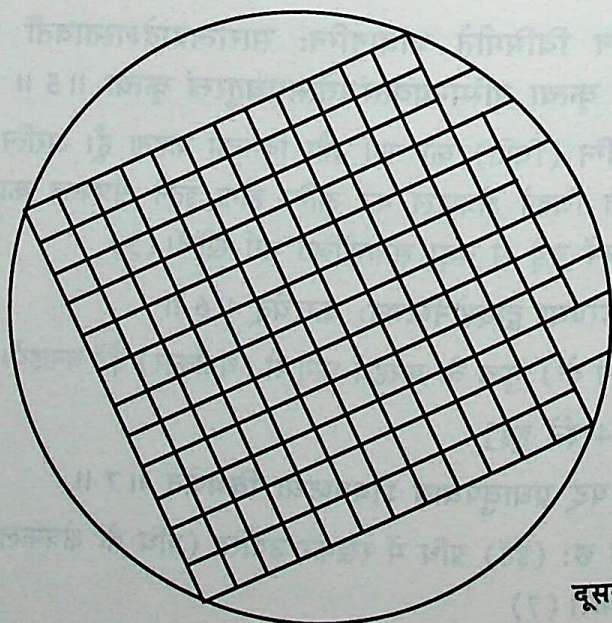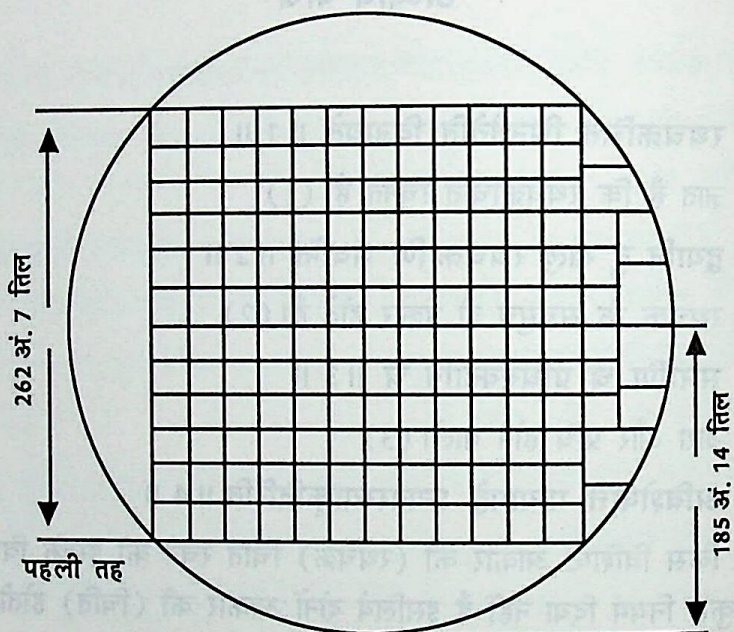
वर्गाकार ईंट 21 अं. 29 ति.x21 अं. 29 ति.	प्रधि की ईंट
144+6x4= 168	8x4=32

अपरं प्रस्तारं तथोपदध्याद्यथा प्रध्यनीकेषु स्रक्तयो भवन्ति ॥ 8 ॥

दूसरी तह में ईंटें ऐसी रखें की वर्ग की सिरे (नीचे की तह के) प्रधियों के मध्य भाग में आयेगी। (8)

अथापरः ॥ 9 ॥

अब दूसरी (रथचक्रचिति)। (9)

पुरुषार्धात्पञ्चदशेनेष्टकाः समचतुरस्राः कारयेन्मानार्थाः ॥ 10 ॥

चिति के उपन्यास के लिए आधे वर्ग पुरुष के (क्षेत्रफल के) $\frac{1}{15}$ भाग से वर्ग ईंटें करें। (10)

[1 वर्ग पुरुष = 14400 वर्ग अंगुल। ½ वर्ग पुरुष = 7200 वर्ग अंगुल। इसका $\frac{1}{15}$ भाग, $\frac{7200}{15}$ = 480 वर्ग अंगुल। इस वर्ग के भुजा की लम्बाई = 21 अंगुल 31 तिल।]

तासां द्वे शते पञ्चविꣳशतिश्च सारत्निप्रादेशः सप्तविधः सम्पद्यते ॥ 11 ॥

इन 225 ईंटों से अरत्नि और प्रादेशसहित सप्तविध (सात वर्ग पुरुष क्षेत्रफल का) अग्नि संपादित होता है। (11)

[480x225 = 108000 वर्ग अंगुल = 7½ वर्ग पुरुष।]

तास्वन्याः चतुःषष्टिमावपेत् ॥ 12 ॥

इसमें और 64 ईंटें डालें। (12)

ताभिः समचतुरस्रं करोति ॥ 13 ॥

इन (289 ईंटों से) वर्ग करें। (13)

तस्य षोडशेष्टका पार्श्वमानी भवति ॥ 14 ॥

इस वर्ग की पार्श्वमानी 16 ईंटों की होती है। (14)

त्रयस्त्रिꣳशदतिशिष्यन्ते ॥ 15 ॥

33 (ईंटें) शेष रहती हैं। (15)

ताभिरन्तान्सर्वतः परिचिनुयात् ॥ 16 ॥

यह (ईटें) वर्ग के दोनों और रखें। (16)

[पूर्व की पार्श्वमानी के पास और उत्तर की तिर्यङ्मानी के पास सोलह-सोलह ईंटें रखें और पूर्व उत्तर सिरे में एक ऐसी इन 33 ईंटों की रचना करें।]

नाभिः षोडशमध्यमाः ॥ 17 ॥

मध्य भाग के सोलह ईंटों से नाभि (होती है)। (17)

[नाभि के वृत्त का क्षेत्रफल = 16X480 = 7680 वर्ग अंगुल।]

चतुष्षष्टिरराश्चतुष्षष्टिर्वैदिः ॥ 18 ॥

अरा 64 और खाली जगहें 64 हैं। (18)

नेमिः शेषाः ॥ 19 ॥

शेष ईंटों से नेमी करें। (19)

नाभिमन्ततः परिलिखेत् ॥ 20 ॥

नाभि अन्दर मण्डलाकार लिखें। (20)

नेमिमन्ततश्चान्तरतश्च परिलिख्य ॥ 21 ॥

नेमि कि अन्दर का और बाहर का वृत्त खींचकर। (21)

नेमिनाभ्योरन्तरालं द्वात्रिंशधा विभज्य विपर्यासं भागानुद्धरेत् ॥22॥

नेमि और नाभि के बीच की जगह के (क्षेत्र के) 32 भाग करें और एक छोड़कर एक भाग निकाल दें। (22)

एवमावाप उद्धृतो भवन्ति ॥ 23 ॥

इससे ज्यादा डाली हुईं (64 ईंटें) निकाली गईं। (23)

नेमिं चतुःषष्टिं कृत्वा व्यवलिख्य मध्ये परिकृषेत् ॥ 24 ॥

नेमि के (अन्दर और बाहर के वृत्तों के बीच की जगह के) 64 भाग करें, इनका विन्यास (भी) करें और (इन वृत्तों के) मध्य में तीसरा मण्डल निकालें। (24)
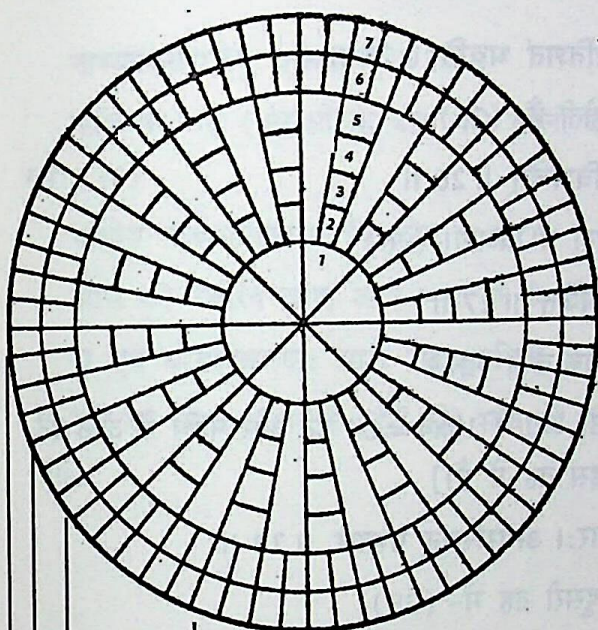
सार रथचक्रचिति
7
6
5
4
3
2
1
53 अं. 5 ति.
पहली तह
149 अं. 21 ति
164 अं.
199 अं. 15 ½ ति
15
16
13
12
11
10
9
8
39 अं.
30 ति
दूसरी तह
187 अं.
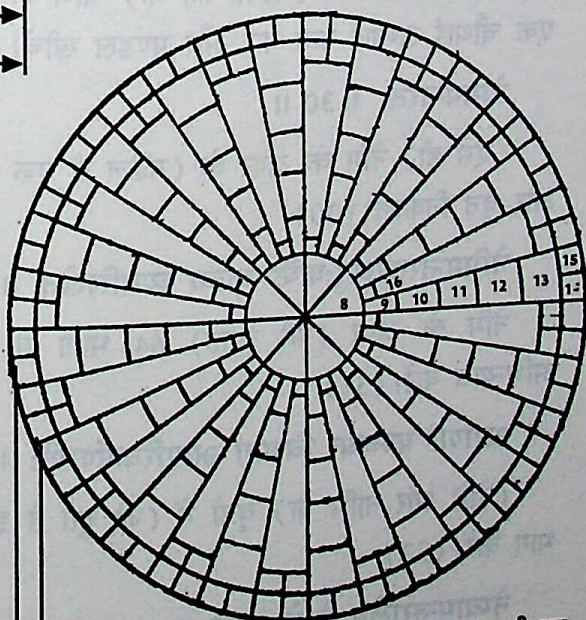
ता अष्टाविꣳशतिशतं भवति ॥ 25 ॥

वे 128 (ईंटें) होती हैं। (25)

अराꣳश्चतुर्धा विभजेत् ॥ 26 ॥

अरा को चार भागों में विभागें। (26)

नाभिमष्टधा विभजेत् ॥ 27 ॥

नाभि के आठ भाग करें। (27)

[नेमि में 128 ईंटें, अरा में 16x4 = 64 ईंटें और नाभि में आठ ईंटें ऐसी कुल 200 ईंटें इस तह में हैं।]

एष प्रथमः प्रस्तारः। अपरस्मिन् प्रस्तारे ॥ 28 ॥

यह पहली तह। दूसरी तह में- (28)

नाभिमन्ततश्चतुर्थवेलायां परिकृषेत् ॥ 29 ॥

नाभि के मध्य से (पहली तह के) नाभि के मण्डल तक दूरी की एक चौथाई लम्बाई कम करें और मण्डल खीचें। (29)

नेमिमन्तरतः ॥ 30 ॥

(ऐसे ही) नेमि के अंदर के (मंडल से एक चौथाई दूरी कम करें और वृत्त निकालें। (30)

नेमिमन्तरतश्चतुःषष्टिं कृत्वा व्यवलिखेत् ॥ 31 ॥

नेमि के अंदर (की जगह) 64 भागों में विभागें और उनका अभिन्यास करें। (31)

अराणां पञ्चधा विभाग आपरिकर्षणयोः ॥ 32 ॥

(नेमि और नाभि के) वृत्तों में (जो दूरी है इसके) अरा के पांच भाग करें। (32)

नेम्यामन्तरालेषु द्वे द्वे ॥ 33 ॥

नेमि के पास (अराओं के बीच के) खाली जगह में दो दो ईंटें रखें। (33)

नाभ्यामन्तरालेषु एकैकाम् ॥ 34 ॥

नाभि के पास (अराओं के बीच के) खाली जगह में एक-एक ईंट रखें। (34)

यच्छेषं नाभेस्तदष्टधा विभजेत् ॥ 35 ॥

नाभि की उर्वरित जगह आठ भागों में विभाजित करें। (35)

स एष षोडशकरणः सारो रथचक्रचित् ॥ 36 ॥

यही वह सोलह प्रकार के (ईंटों की) सांचे की आरांसहित रथचक्रचिति। (36)

अध्याय छः

द्रोणचितं चिन्वीतेति विज्ञायते ॥ 1 ॥

बताया जाता है कि द्रोणचिति चिनते हैं। (1)

द्वयानि खुल द्रोणानि भवन्ति ॥ 2 ॥

द्रोण के सचमुच दो प्रकार हैं। (2)

चतुरश्राणि च परिमण्डलानि च ॥ 3 ॥

वर्गाकार और वृत्ताकार। (3)

अविशेषात्ते मन्यामहे। अन्यतरस्याकृतिरिति ॥ 4 ॥

इसका विशिष्ट आकार कहा नहीं गया है इसलिये दोनों आकार की (चिति) होती है ऐसा हम मानते हैं। (4)

अथाग्निं विमिमिते चतुरस्त्र आत्मा भवति ॥ 5 ॥

अब अग्नि के नाप और विन्यास कहता हूँ। आत्मा वर्गाकार है। (5)

तस्य त्रयः पुरुषास्त्रिभागोनाः पार्श्वमानी भवति। ॥ 6 ॥

इसकी (वर्ग की) पार्श्वमानी तीन पुरुषों से तिहाई कम ($2\frac{2}{3}$ पुरुष = 320 अंगुल) इतनी है। (6)

पश्चात्सरुर्भवति ॥ 7 ॥

पीछे दंडी है। (7)

तस्यार्धपुरुषो दशाङ्गुलानि च प्राची ॥ 8 ॥

इसकी (दंडी की) प्राची (पूर्व-पश्चिम लम्बाई) आधा पुरुष और दस अंगुल (70 अंगुल) है। (8)

त्रिभागोनः पुरुष उदीचीति ॥ 9 ॥

(दंडी की) दक्षिण-उत्तर लम्बाई एक पुरुष से तिहाई कम ($\frac{2}{3}$ पुरुष = 80 अंगुल) इतनी है। (9)

एवर्ठ्ंसारत्निप्रादेशः सप्तविधः सम्पद्यते ॥ 10 ॥

इससे अरत्नि और प्रादेश सहित सप्तविध (सात वर्ग पुरुष का) अग्नि संपादित होता है। (10)

तस्येष्टकाः कारयेत् पुरुषस्य षष्ठ्यस्ता एवैकतोध्यर्धाः। तासामर्ध्यास्तिर्यग्भेदाः पुरुषस्य चतुर्थ्य इति ॥ 11 ॥

इसके (चिति के) लिये पुरुष के छठे भाग की (20x20 अंगुल) एक बाजू डेढ़ गुनी ऐसी अध्यर्धा (20x30 अंगुल), इसकी अर्ध्या (20x10 अंगुल), तिर्यङ्मानी से दो विभाग की हुई ऐसी और पुरुष के चौथाई भाग की (30x30 अंगुल) ईंटें बनाईयें। (11)

तासां त्सरुश्रोण्यन्तरालयोः षट् षट् षष्ठीरुपधाय शेषमग्निं बृहतीभिः प्रच्छादयेत्। ॥ 12 ॥

दंडी और दोनों श्रोणियों के बीच की जगह में छः छः षष्ठी ईंटें (20x20 अंगुल) रखकर शेष अग्नि बृहती (20x30 अंगुल) ईंटों से ढँकें। (12)

अर्धेष्टकाभिः संख्यां पूरयेत् ॥ 13 ॥

अर्ध्या ईंटों से (दो सौ की) संख्या पूरी करें। (13)

अपरस्मिन्प्रस्तारे दक्षिणेऽर्ठ्ंसेऽध्यर्धामुदीचीमुपदध्यात्। ॥ 14 ॥

दूसरी तह में (आत्मा के) दक्षिण अंस में अध्यर्धा ईंट (20x30 अंगुल) उत्तरभिमुख रखें। (14)

तथोत्तरे। ॥ 15 ॥

वैसा ही उत्तर (अंस) में। (15)

पूर्वस्मिन्ननीके षड्भागीया उपदध्यात्। ॥ 16 ॥

पूर्व की बाजू के पास षष्ठी (20x20 अंगुल) ईंटें रखें। (16)

दक्षिणोत्तरयोश्चतुर्भागीयाः। ॥ 17 ॥

दक्षिण और उत्तर की भुजाओं के पास चतुर्थी (30x30 अंगुल) ईंटें रखें। (17)

त्सरोः पुरस्तात्पार्श्वयोर्द्वे चतुर्भागीये उपदध्यात्। ।18।।

दंडी के अगले भाग में दोनों ओर दो चतुर्थी ईंटें रखें। (18)

तयोरवस्तादभितो द्वे द्वे अध्यर्धे विषूची ।।19।।

इनके पीछे दोनों और दो-दो अध्यर्धा ईंटें क्रमशः दक्षिण और उत्तर दिशाओं की तरफ रखें। (19)

[विषूची-दक्षिणोत्तरायते]

तयोरवस्तान्मध्यदेशे द्वे षष्ठ्यौ प्राच्यौ ।। 20 ।।

इनके पीछे मध्य भाग में दो षष्ठी ईंटें पूर्व की तरफ रखें। (20)

शेषमग्निं बृहतीभिः प्रच्छादयेत् ।। 21 ।।

उर्वरित अग्नि (का क्षेत्र) बृहती (20x30 अंगुल) ईंटों से ढँकें। (21)

अर्धेष्टकाभिः संख्यां पूरयेत् ।। 22।।

अर्ध्या ईंटों से (दो सौ की) संख्या पूरी करें। (22)
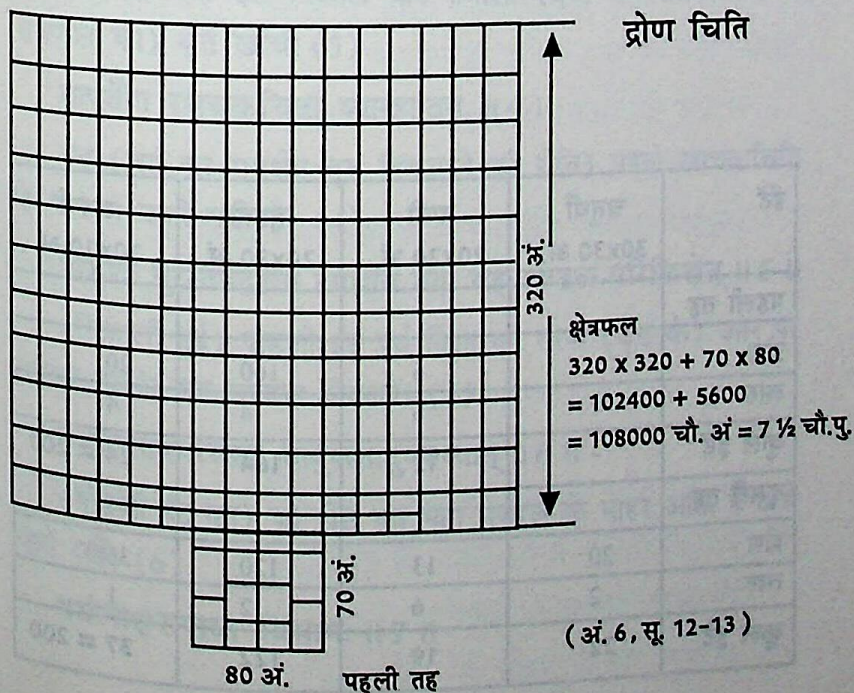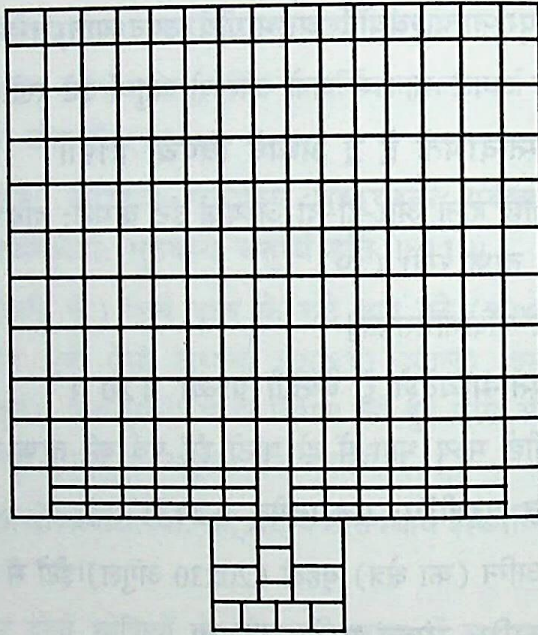
दूसरी तह

(अं. 6, सू. 14-22)

ईंटें	चतुर्थी 30x30 अं.	षष्ठी 20x20 अं.	बृहती 20x30 अं.	अर्ध्या 20x10 अं.
पहली तह				
द्रोण	–	6	160	20
त्सरु	–	6	4	4
कुल ईंटें	–	12	164	24 = 200
दूसरी तह				
द्रोण	20	13	120	36
त्सरु	2	6	2	1
कुल ईंटें	22	19	122	37 = 200

अध्याय सात

अथापरः ॥ 1 ॥

अब दूसरी (द्रोणचिति)। (1)

पुरुषस्य षोडशीभिर्विंᳬशशतᳬसारत्निप्रादेशः सप्तविधः सम्पद्यते ॥ 2 ॥

एक वर्ग पुरुष (क्षेत्रफल के) सोलहवे भाग की (नाप की) 120 ईंटों से अरत्नि और प्रादेशसहित सप्तविध(सात वर्ग पुरुष क्षेत्रफल) संपादित होता है। (2)

[एक वर्ग पुरुष = 14400 वर्ग अंगुल। $\frac{1}{16}$ वर्ग पुरुष = $\frac{14400}{16}$ = 900 वर्ग अंगुल। 30x30 अंगुल की ईंट। 900x120 = 108000 वर्ग अंगुल = 7½ वर्ग पुरुष]

तासामेकामपोद्धृत्य शेषाः परिमण्डलं करोति ॥ 3 ॥

इनमें से एक ईंट निकाल कर उर्वरित (ईंटों के क्षेत्रफल इतना क्षेत्रफल का) वृत्त खींचें। (3)

तत्पूर्वेण रथचक्रचिता व्याख्यातम् ॥ 4 ॥

यह (वर्ग का समक्षेत्र वृत्त निकालने की रीति) पहले रथचक्रचिति के बारे में कही गयी है। (4)

षोडशीं पुरस्ताद्विशय उपधाय तया सह मण्डलं परिलिखेत् ॥ 5 ॥

(निकाली हुई) षोडशी ईंट पूर्व दिशा की तरफ (वृत्त के) ओर पर रखकर इसके सह मण्डल निकालें। (5)

यदवस्तादपच्छिन्नं तत्पुरस्तादुपदध्यात् ॥ 6 ॥

(षोडशी ईंट का) जो पीछे का भाग मण्डल के बाहर आता है उन्हें आगे रखें। (6)

प्रधीनाᳬसप्तधा विभागः ॥ 7 ॥

(प्रत्येक) प्रधियों के सात विभाग करें। (7)

[30x30 अंगुल की छः ईंटें प्रत्येक प्रधि में रखकर उर्वरित जगह के सात भाग करें।]

प्रधिमध्यमाः प्रक्रमव्यासा भवन्ति ॥ 8 ॥

प्रधियों के मध्य में रखने की ईंटें एक प्रक्रम (30 अंगुल) चौड़ी हैं। (8)

[रथचक्रचिति जैसा वृत्त में बड़े से बड़ा वर्ग समायोजित करें और वहाँ 144 ईंटें रखें।]

चतुरस्त्राणामर्ध्याभिः संख्यां पूरयेत् ॥ 9 ॥

वर्गाकार अर्ध्या ईंटों से (दो सौ ईंटों की) संख्या पूरी करें। (9)

अपरस्मिन्प्रस्तारे ॥ 10॥

दूसरी तह में। (10)

प्रधिमध्यमामोष्ठ उपधाय यदवस्तात्तद् द्वेधा विभजेत् ॥ 11 ॥

प्रधि के मध्य में होने वाली (30x30 अंगुल) ईंट ओष्ठ में रखकर इसके पीछे के भाग के दो विभाग करें। (11)

स एष नवकरणो द्रोणचित् परिमण्डलः ॥ 12 ॥

यह वह नौं (प्रकार के) ईंटों की वृत्ताकर द्रोणचिति। (12)

समूह्यपरिचाय्यौ पूर्वेण रथचक्रचिता व्याख्यातौ ॥ 13 ॥

समूह्य और परिचाय्य यह (ईंटें रखने के प्रकार) पहले रथचक्रचिति के समय कहे है। (13)

समूह्यस्य दिक्षु चात्वालान्खानयित्वा तेभ्यः पुरीषꣳसमूह्योपदध्यात् ॥ 14 ॥

समूह्य में चारो दिशाओं की तरफ चात्वाल (नाम के गड्ढ़े) खोदकर उनकी गिली मिट्टी समूह्य पद्धति से रखें। (14)

परिचाय्य इष्टकानां देशभेदः ॥ 15 ॥

परिचाय्य यह ईंटें रखने की अलग पद्धति है। (15)

ताथ्ंसर्वाभिः प्रदक्षिण परिचिनुयात् ॥ 16 ॥

वहाँ सब ईंटें प्रदक्षिण क्रम से चिनें। (16)
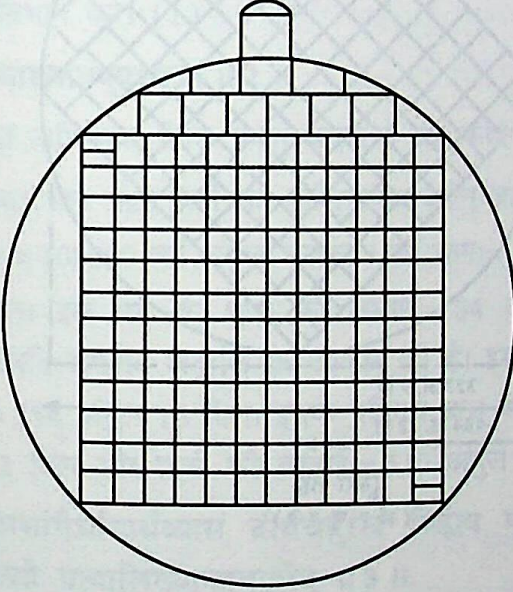
पहली तह

(अं. 7 , सू. 10-12)
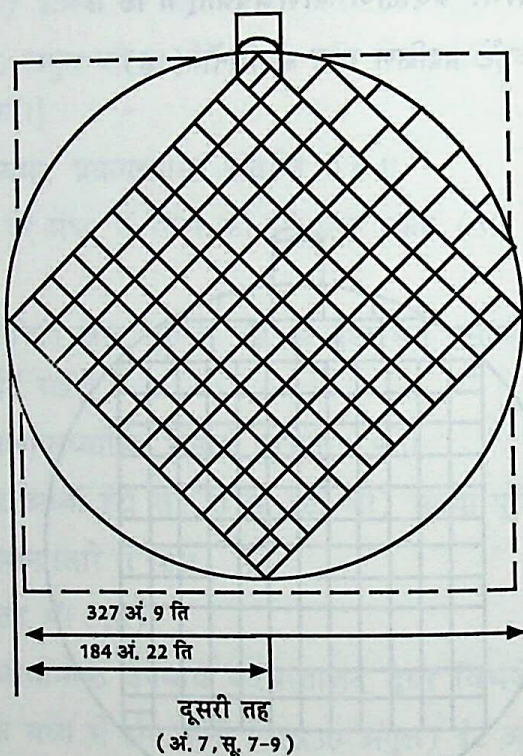
दूसरी तह
(अं. 7, सू. 7-9)

ईंटें	वर्ग की ईंटें 21 अं. 25 ½ वि. x 21, 25 ½	अर्ध्या	बृहती ईंटों के दो विभाग 30x30 अं.	अन्य
पहली और दूसरी तह				
वर्ग	142	4	–	–
ओष्ठ	–	–	2	–
प्रधि	–	–	6 x 4 = 24	7 x 4 = 28
कुल ईंटें	142	4	26	28 = 200

अध्याय आठ

श्मशानचितं चिन्वीतेति विज्ञायते। सर्वमग्निं चतुरस्त्रान्पञ्च-दशभागान्कृत्वा ॥ 1 ॥

ज्ञात है कि श्मशानचिति चिनते हैं। अग्नि के सब (क्षेत्र के) पंद्रह वर्गों में विभाग करें। (1)

तेषामाख्यातमुपधानम् ॥ 2 ॥

इनका अभिन्यास किस प्रकार करना है वह कहा है। (2)

(इनका याने पंद्रह वर्गों का अभिन्यास। अग्नि का क्षेत्रफल = 7½ वर्ग पुरुष = 108000 वर्ग अंगुल। इसका 15वाँ भाग = $\frac{108000}{15}$ = 7200 वर्ग अंगुल। इस वर्ग के भुजा की लम्बाई = 84 अंगुल, 28 तिल। श्मशान चिति समलंब चतुर्भुज के आकार की है। इसके पूर्व बाजू की लम्बाई = 254 अंगुल 16 तिल। इसके पश्चिम बाजू की लम्बाई = 169 अंगुल 22 तिल और प्राची की लम्बाई = 510 अंगुल 32 तिल।)

त्रिभिर्भागैर्भागार्धव्यासं दीर्घचतुरस्त्रं विहृत्य पूर्वस्याः करण्या अर्धाच्छ्रोणी प्रत्यालिख्यान्तावुद्धरेत् ॥ 3 ॥

तीन भाग लम्बाई (254 अंगुल 16 तिल) और आधा भाग (42 अंगुल 14 तिल) चौड़ाई ऐसे आयत का विन्यास करें। पूर्व बाजू का मध्यबिन्दु और दोनों श्रोणी रेखाओं से जोड़ें और बाहर के भाग निकाल दें। (समद्विभुज त्रिभुज मिलता है।)। (3)

तस्य दशधा विभागः ॥ 4 ॥
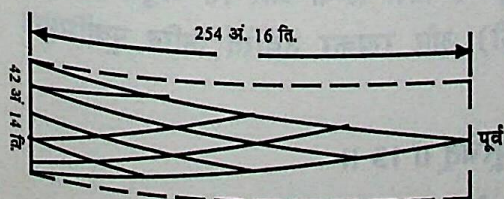
इसके दस विभाग करें। (4)

तानि विꣳशतिः सर्वेऽग्निः सम्पद्यते ॥ 5 ॥

ऐसे बीस (त्रिभुजाओं से) सब अग्नि संपादित होता है। (5)

अपरस्मिन्प्रस्तारे ॥6॥

दूसरी तह में। (6)

प्रउगमध्येऽनूचीनं विभजेत् ॥7॥

त्रिभुज मध्य भाग में उलट सीधा विभागें। (7)

तस्य षड्धा विभागः ॥8॥

इसके छः विभाग करें। (8)

ते द्वे पार्श्वयोरुपदध्यात् ॥9॥

वे दो (त्रिभुज जिनके छः भाग किये हैं वे अग्नि के) दोनों। (दक्षिण और उत्तर) की ओर रखें। (9)

भागतृतीयायामाश्चतुर्थव्यासाः कारयेत् ॥10॥

भाग के एक तिहाई लम्बी और एक चौथाई चौड़ी ऐसी ईंटें बनाईयें। (10)

(ईंट 28 अंगुल 9 तिल लम्बी और 21 अंगुल 7 तिल चौड़ी है।)

तासामर्ध्यास्तिर्यग्भेदाः ॥11॥

इनमे से सरल रेखा से भेद करके अर्ध्या ईंट बनाईयें। (11)

(ईंटें अक्ष्णया पर भेदकर त्रिभुज ईंटें न बनाईयें, आयताकार अर्ध्या ईंटें बनाईयें)।

ता अन्तयोरुपधाय शेषमग्निं बृहतीभिः प्राचीभिः प्रच्छादयेत् ॥12॥

ये (अर्ध्या ईंटें, 28 अंगुल 9 तिल लम्बी और 10 अंगुल 20 तिल चौड़ी, पूर्व और पश्चिम की) ओर रखकर उर्वरित अग्नि पूर्वाभिमुख बृहती ईंटों से ढँकें। (12)

अर्धेष्टकाभिः संख्यां पूरयेत् ॥13॥

अर्ध्या ईंटों से (दो सौ की) संख्या पूरी करें। (13)

ऊर्ध्वप्रमाणमग्नेः पञ्चमेन वर्धयेत् ॥ 14 ॥

अग्नि की ऊँचाई में पांचवें भाग से वृद्धि करें। (14)

तत्सर्वं त्रैधा विभज्य द्वयोर्भागयोश्चतुर्थेन वा नवमेन वा चतुर्दशेन वेष्टकाः कारयेत् ॥ 15 ॥

(इस वृद्धि की हुई) ऊँचाई के तीन भाग करें और दो भागों के ¼, $\frac{1}{9}$ या $\frac{1}{14}$ भागों से ईंटों की ऊँचाई रखें। (15)

[अग्निचिति की ऊँचाई 32 अंगुल है, उसके $\frac{1}{5}$ याने $6\frac{2}{5}$ अंगुलों के योग से अग्नि की ऊँचाई $38\frac{2}{5}$ अंगुल होती है। $38\frac{2}{5} = \frac{192}{5}$ अंगुल। इनका $\frac{2}{3}$ भाग = $\frac{128}{5}$ अंगुल। ईंटों की ऊँचाई क्रमशः $\frac{128}{20}$, $\frac{128}{45}$ और $\frac{128}{70}$ अंगुल। अनुक्रम से हजार, दो हजार या तीन हजार ईंटों से चिने हुए अग्निचिति के ईंटों की यह ऊँचाई है।)

ताभिश्चतस्रो वा नव वा चतुर्दश वा चितीरुपधाय शेषमवाञ्चमक्ष्णयापच्छिन्द्यात् अर्द्धमुद्धरेत् ॥ 16 ॥

इन ईंटों से चार, नौं या 14 तह का अग्नि करने के बाद ऊँचाई के रह गये भाग के (सब ऊँचाई का $\frac{1}{3}$ भाग) नीचे जाने वाले कर्ण से समान भाग करें, उनमे से आधा भाग निकाल दें। (16)

तस्य नित्यो विभागः। यथायोगमिष्टकानाऱ्ं-ह्रासवृद्धिः ॥ 17 ॥

इसके विभाग अचूक नहीं होंगे तब ईंटों के नाप जैसे चाहिये वैसे कम ज्यादा करें। (17)।
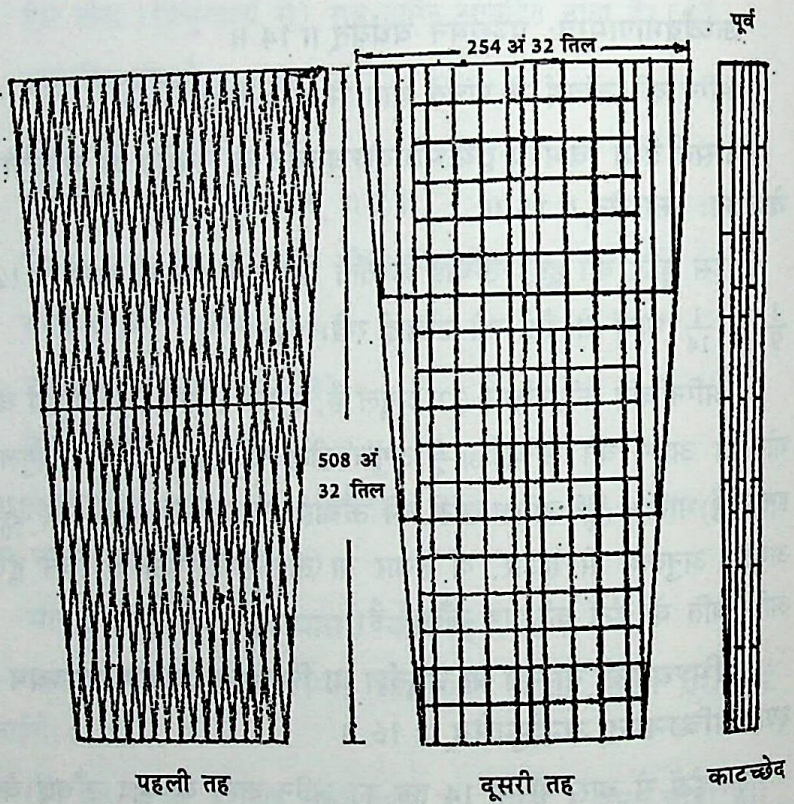
पूर्व
254 अं 32 तिल
508 अं
32 तिल
पहली तह
दूसरी तह
काटच्छेद

अध्याय नौ

कूर्मचितं चिन्वीत यः कामयेत ब्रह्मलोकमभिजयेयमिति विज्ञायते ॥ 1 ॥

ज्ञात हैं कि जिसे ब्रह्मलोक पर विजय प्राप्त करनी है उसे कूर्मचिति चिननी चाहिए। (1)

द्वयाः खलु कूर्मा भवन्ति वक्राङ्गाश्च परिमण्डलाश्च ॥ 2 ॥

कूर्मचिती के सचमुच दो प्रकार हैं। वक्र अवयवों की और वृत्ताकार। (2)

अविशेषात्ते मन्यामहे। अन्यतरस्याकृतिरिति ॥ 3 ॥

इसका विशिष्ट आकार कहा नहीं गया है, इसलिये दोनों आकार की (चिति) होती है ऐसे हम मानते हैं। (3)

अथाग्निं विमिमीते। चतुरस्त्र आत्मा भवति। तस्य दश प्रक्रमाः पार्श्वमानी भवति ॥ 4 ॥

अब अग्नि की नापें (और विन्यास) कहता हूँ। आत्मा वर्गाकार है। इसकी पार्श्वमानी दस प्रक्रम (300 अंगुल) लम्बी है। (4)

तस्य द्वाभ्यां द्वाभ्यां प्रक्रमाभ्याꣳस्त्रक्तीनामपच्छेदः ॥ 5 ॥

इसके (वर्ग के) सिरे दो-दो प्रक्रमों से कम करें। (5)

पूर्वस्मिन्ननीके प्रक्रमप्रमाणानि चत्वारि चतुरस्त्राणि कृत्वा तेषां ये अन्त्ये ते अक्ष्णयापच्छिन्द्यात् ॥ 6 ॥

(आत्मा के) पूर्व की बाजू के पास (और मध्य में) एक प्रक्रम (30 अंगुल) लम्बी भुजा के चार वर्ग एक दूसरे के संपर्क में रखकर इनमें से बाहर के (दो वर्गों के) अक्ष्णया से विभाग करें और (आग्नेय और ईशान्य की ओर के) त्रिभुज निकाल दें। (6)

एवं दक्षिणत एवं पश्चादेवमुत्तरतः ॥ 7 ॥

ऐसी ही दक्षिण, पश्चिम और उत्तर की ओर करें। (7)

स आत्मा ॥ 8 ॥

यह आत्मा। (8)

शिरः पञ्चपदायाममर्धपुरुषव्यासम् ॥ 9 ॥

शीर्ष पांच पद (75 अंगुल) लम्बा और आधा पुरुष (60 अंगुल) चौड़ा है। (9)

तस्याꣳसौ प्रक्रमेण प्रक्रमेणापच्छिन्द्यात् ॥ 10 ॥

इसके दोनों अंस एक-एक प्रक्रम से (30 अंगुलों से) कम करें। (10)

स्रक्त्यपच्छेदे पादानुन्नयेत् ॥ 11 ॥

कम किये हुए सिरो के पास (सूत्र 5) पाँव बढाईयें। (11)

तस्य द्विपदाक्ष्णया तिरश्ची तद्द्विगुणायाममेनूची ॥ 12 ॥

इसकी (पाँव की) चौड़ाई दो पदों के (30 अंगुल) वर्ग के अक्ष्णया इतनी ($\sqrt{1800}$ अंगुल) है और इसके (चौड़ाई के) दुगुनी (इसकी) लम्बाई ($2\sqrt{1800}$ अंगुल) है। (12)

तस्य द्विपदाक्ष्णया पूर्वमꣳसमपच्छिन्द्यात् ॥ 13 ॥

इसके (आयत के) पूर्व के अंस दो पद लम्बी भुजा के वर्ग के अक्ष्णया से कम करें। (13)

एतेनेतरेषां पादानामपच्छेदा व्याख्याताः ॥ 14 ॥

इसके इतर पाँवों का अपच्छेद (कम करना) कहा गया। (14)

अपरयोः पादयोरपरावꣳसावपच्छिन्द्यात् ॥ 15 ॥

पश्चिम की ओर के पाँवों के पश्चिम सिरे (अंस) निकाल दें। (15)

एवꣳसारत्निप्रादेशः सप्तविधः सम्पद्यते ॥ 16 ॥

ऐसा अरत्नि और प्रादेश सहित सप्तविध (सात वर्ग पुरुष क्षेत्रफल) संपादित होता है। (16)

तस्येष्टकाः कारयेत्पुरुषस्य चतुर्थ्यः। तासामर्ध्याः पाद्याश्च ॥ 17 ॥

इसके लिये पुरुष के एक चौथाई भाग के (30x30 अंगुल) वर्गाकार ईंटें बनाइयें। इनकी अर्ध्या और पाद ईंटें भी। (17)

अध्यर्धापाद्याश्चतुर्भिः परिगृण्हीयात्प्रक्रमेण द्वाभ्यां पदाभ्यां पदसविशेषेणेति। ॥ 18 ॥

पाद ईंट की चतुर्भुज अध्यर्धा ईंट बनाने के लिये एक भुजा एक प्रक्रम लम्बी, दो भुजाएं दो पद और (चौथी) भुजा पद के सविशेष इतनी (19 अंगुल 33 तिल) लम्बी लें। (18)

[पाद ईंट का क्षेत्रफल = ¼ (900) = 225 वर्ग अंगुल।

पद ईंट की अध्यर्धा = 225 + ½ (225) वर्ग अंगुल।

चतुर्भुज पाद ईंट का क्षेत्रफल = 15x15 + ½ (15x15) = 225 + ½ x 225 वर्ग अंगुल।]

ते द्वे यथादीर्घसꣳश्लिष्टे स्यातां तथैकां कारयेत् ॥ 19 ॥

ऐसी दो ईंटें उनकी लम्बी भुजाऐं एक दूसरे के संपर्क में रखकर एक ईंट बनाइयें। (19)

द्विपदाक्ष्ण्यार्धेन समचतुरस्रामेकाम् ॥ 20 ॥

दो पद लम्बी भुजा के वर्ग के अक्षणया के आधी लम्बी भुजा की एक वर्ग ईंट बनाइयें। (20)

उपधाने शिरसोऽग्रे चतुरस्रामुपदध्यात् ॥ 21 ॥

ईंटें रखते समय शीर्ष के अग्र के पास एक वर्ग ईंट रखें। (21)

हꣳसमुख्याववस्तात् ॥ 22 ॥

दो हंसमुखी ईंटें इसके पीछे रखें। (22)

पञ्च पञ्च चतुरस्रा द्वे द्वे पादेष्टके इति पादेषूपदध्यात् ॥ 23 ॥

(हर एक) पाँव में पांच-पांच वर्ग ईंटें और दो-दो पाद ईंटें रखें। (23)

यद्यदपच्छिन्नं तस्मिन्नर्धेष्टका उपदध्यात् ॥ 24 ॥

जहाँ जहाँ (कोई) जगह निकाल गई है (सिरों के पास) वहाँ अर्ध्या ईंटें रखें। (24)

शेषमग्निं चतुर्भागीयाभिः प्रच्छादयेत् ॥ 25 ॥

शेष अग्नि चतुर्थी (30x30 अंगुल) ईंटों से ढँकें। (25)

अर्धेष्टकाभिः संख्यां पूरयेत् ॥ 26 ॥

अर्ध्या ईंटों से (दो सौ की) संख्या पूरी करें। (26)

अपरस्मिन्प्रस्तारे शिरसोऽग्रे हꣳसमुखीमुपदध्यात् पादेष्टके अभितः ॥ 27 ॥

दूसरी तह में शीर्ष के अग्र में हंसमुखी (ईंट) रखें। इसके दोनों ओर दो पाद ईंट रखें। (27)

तयोरवस्तादभितो द्वे द्वे अध्यर्धापाद्ये विषूची ॥ 28 ॥

इनके पीछे दोनों ओर दो-दो पाद ईंटों की अध्यर्धा ईंटें उलट सीधी रखें। (28)

तयोरवस्तादभितश्छेदसꣳहिते द्वे पादेष्टके॥ 29 ॥

इनके पीछे दोनों ओर दो पाद ईंटें ऐसी रखें की इनकी बाजू अग्नि की बाजू पर आयेगी। (29)

[छेद संहिते-जहाँ अपच्छेद है वहाँ।]

द्वे द्वे द्विपदे तिस्रस्तिस्रोऽर्धेष्टका इति पादेषूपदध्यात् ॥ 30 ॥

(प्रत्येक) पाँव पर दो-दो द्विपद ईंटें और तीन-तीन अर्ध्या ईंटें रखें। (30)

यद्यदपच्छिन्नं तस्मिन्नर्धेष्टकाः पादेष्टकाश्चोपदध्यात् ॥ 31 ॥

जहाँ जहाँ (कोई) जगह निकाली गई है वहाँ अर्ध्या और पाद ईंटें रखें। (31)

शेषमग्निं चतुर्भागीयाभिः प्रच्छादयेत् ॥ 32 ॥

शेष अग्नि चतुर्थी ईंटों से ढँकें। (32)

अर्धेष्टकाभिः संख्यां पूरयेत् ॥ 33 ॥

अर्ध्या ईंटों से (दो सौ की) संख्या पूरी करें। (33)

वक्राङ्ग कूर्माचिति

पहली तह

(अ. 9, सू. 1-26)

दूसरी तह

(अ. 9, सू. 27–32)
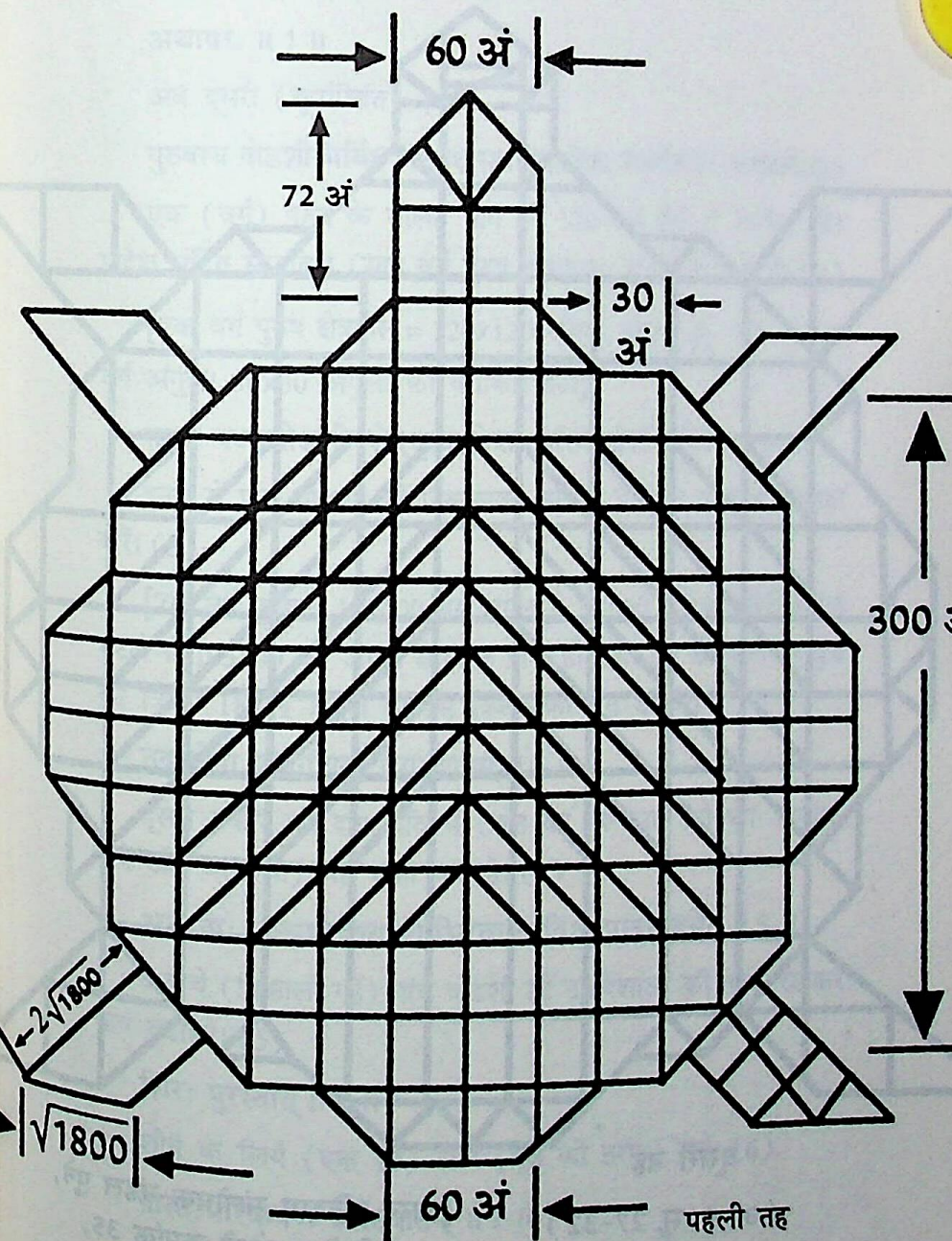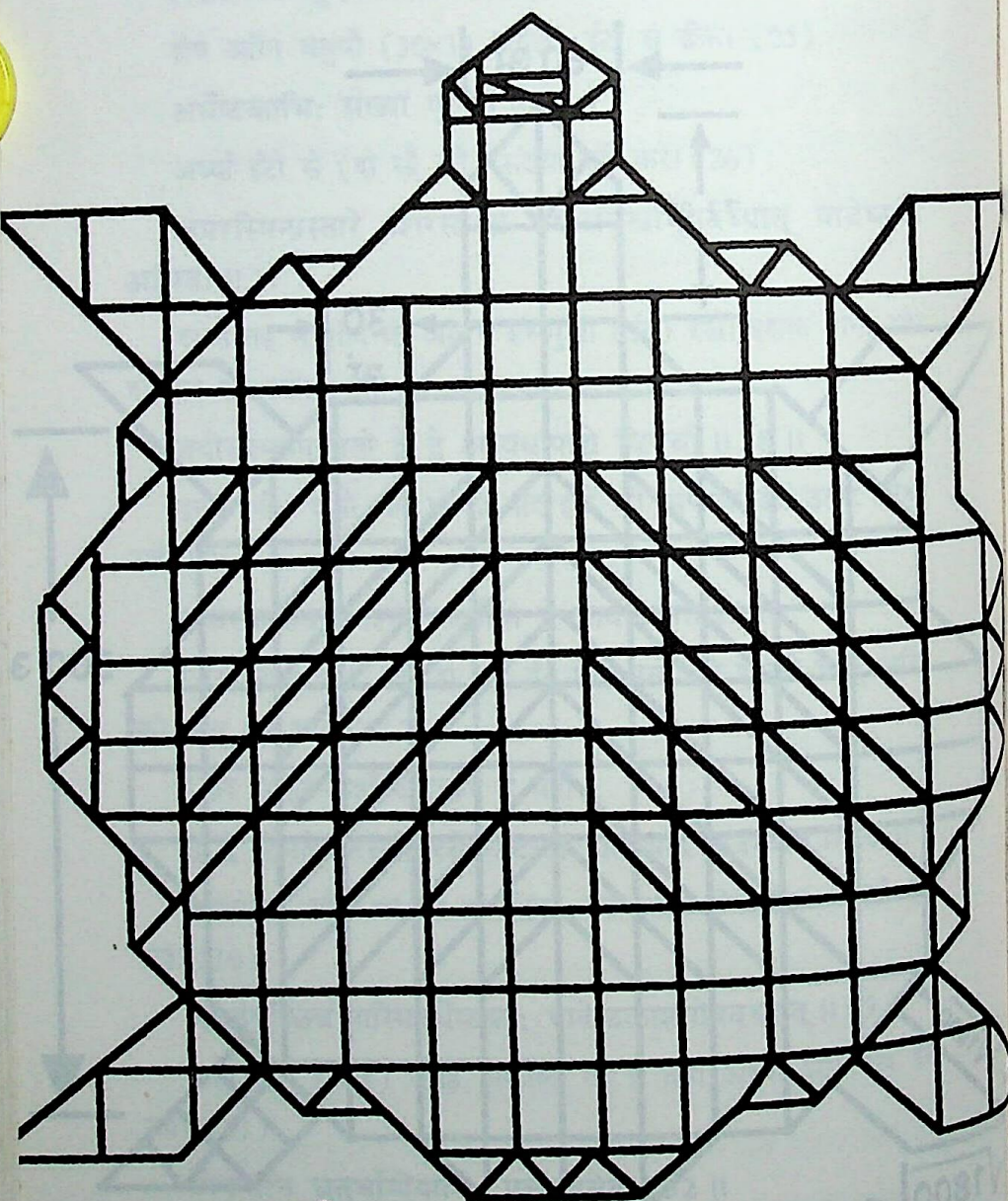
[भारत इतिहास संशोधक मंडल पुने, हस्तलिखित पोथी क्रमांक 35, 342 से कुछ सुधार कर]

अध्याय दस

अथापरः ॥ 1 ॥

अब दूसरी (कूर्मचिति)। (1)

पुरुषस्य षोडशीभिर्विंशं शशतं सारत्निप्रादेशः सप्तविधः सम्पद्यते॥2॥

एक (वर्ग) पुरुष के सोलह भाग की 120 वर्ग ईंटों से अरत्नि और प्रादेश सहित सप्तविध (सात वर्ग पुरुष क्षेत्रफल) संपादित होता है। (2)

[एक वर्ग पुरुष क्षेत्रफल = 120x120 अंगुल, इसका $\frac{1}{16}$ भाग = 900 वर्ग अंगुल। 30x30 अंगुलों की वर्गाकार ईंटें।]

तासां पञ्चषोडशीरपोद्धृत्य शेषाः परिमण्डलं करोति ॥ 3 ॥

इनमें से पांच षोडशी ईंटें निकालकर उर्वरित ईंटों के समक्षेत्र मण्डल करें। (3)

[7½ वर्ग पुरुष = 108000 वर्ग अंगुल से 5x900 = 4500 वर्ग अंगुल घटाने से 103500 वर्ग अंगुल क्षेत्रफल प्राप्त होता है। इस क्षेत्रफल के वृत्त की त्रिज्या 181½ अंगुल है। इस त्रिज्या का वृत्त खींचें।]

तदुत्तरेण द्रोणचिता व्याख्यातम् ॥ 4 ॥

दूसरी प्रकार की द्रोणचिति में (वृत्त का विन्यास, ईंटों का आकार, नापें और व्यवस्था) यह कहा गया है। (4)

अथ ताः पञ्चषोडश्यास्ताभिरवान्तरदिक्षु पादानुन्नयेत् ॥ 5 ॥

अब वे (निकाली गई) पांच षोडशी ईंटें उपदिशाओं की तरफ रखकर पांव बढाइयें। (5)

शिरः पुरस्तात् ॥ 6 ॥

शीर्ष के लिये (एक ईंट) आगे (पूर्व की तरफ) रखें। (6)

तासां परिकर्षणं व्याख्यातम् ॥ 7 ॥

इन (ईंटों के) मण्डल से छेद देना कहा गया है। (7)

[परिमण्डल द्रोणचिती में सूत्र 7.5-6 देखें।]

प्रधीनाꣳसप्तधा विभागः। प्रधिमध्यमाः प्रक्रमव्यासा भवन्ति ॥ 8 ॥

प्रधियों के सात विभाग करें। प्रधियों के मध्य भाग में एक प्रक्रम चौड़ी (वर्गाकार ईंटें) होती हैं। (8)

यदतिरिक्तꣳसंपद्यते तच्चतुरस्राणामध्यर्धाभिः योयुज्येत॥ 9 ॥

यदि ईंटें। (दो सौ की संख्या से) अधिक हो तो चतुर्भुज अध्यर्धा ईंटें इस्तेमाल करें। (और कुल दो सौ की ईंटें इस तह में रखें)। (9)

अपरस्मिन्प्रस्तारे ॥ 10 ॥

दूसरी तह में (10)

पादानाꣳशिरोवद्विभागः शिरसः पादवत् ॥ 11 ॥

पाँवों के विभाग (पहली तह के) शीर्ष के विभाग जैसे करें और शीर्ष के विभाग (पहली तह के) पाँवों के विभाग जैसे करें। (11)

व्यत्यासं चिनुयाद्यावतः प्रस्ताराꣳशिचकीर्षेत् ॥ 12 ॥

जितनी तह चिननी हो उतनी एक दूसरी पर उलट सीधी रखें। (12)
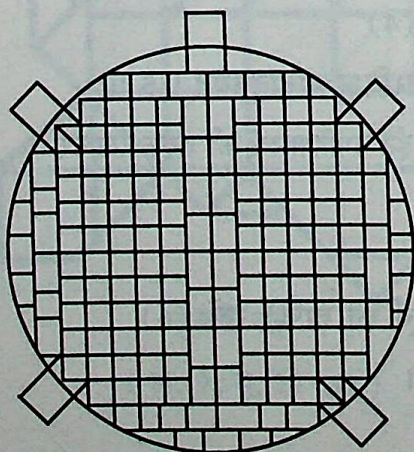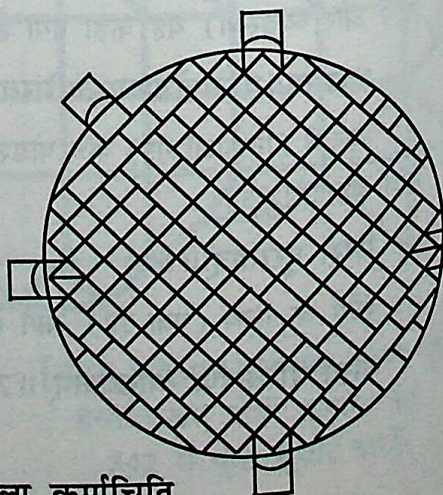
परिमण्डला कूर्माचिति

ईंटें	वर्गाकार ईंटें 21 अं 11 तिल x 21 अं 11 तिल	अध्यर्धा	अर्ध्या	षोडशी	अन्य
वृत्त समायोजित वर्ग	118	16	4	-	-
प्रधि	-	-	-	24	28
शीर्ष	-	-	-	-	2
पाँव	-	-	-	-	8
कुल ईंटें	118	16	4	24	38=200

कूर्मस्यान्ते तनुपुरीषमुपदध्यात् ॥ 13 ॥

कूर्म (चिति के) किनारे पर गिली मिट्टी कम रखें। (13)

मध्ये बहुलम ॥ 14 ॥

मध्य में अधिक। (14)

एतदेव द्रोण विपरीतम् ॥ 15 ॥

द्रोणचिति में इससे उलटा करें। (15)

अथ हैक एकविधप्रभृतीन्प्रउगादीन्ब्रुवते ॥ 16 ॥

अब किसी के मत से प्रउग आदि चिति एक विध इत्यादि (1½ वर्ग पुरुष से 6½ वर्ग पुरुष तक) होती हैं ऐसा कहते हैं। (16)

समचतुरस्त्रानेक आचार्याः ॥ 17 ॥

कई आचार्यों के मतानुसार वर्गाकार होती हैं। (17)

तस्य करण्या द्वादशेनेष्टकाः कारयेत्। तासामर्ध्याः पाद्याश्च ॥ 18 ॥

इसके (अग्निचिति के) बाजू के बारह भाग की ईंटें बनाईयें। इनकी अर्ध्या और पाद ईंटें भी। (18)

अथाश्वमेधेकस्याग्नेः पुरुषाभ्यासो नारत्निप्रादेशानाम् ॥ 19 ॥

अब अश्वमेध (यज्ञ) की अग्नि (चिति) में पुरुष से वृद्धि होती है, परन्तु अरत्नि और प्रादेश की वृद्धि नहीं होती। (19)

प्राकृतो वा त्रिगुणः ॥ 20 ॥

(अश्वमेध के अग्निचिति का क्षेत्रफल) अग्निचिति इतना या इससे तीन गुना रखते हैं। (20)

त्रिस्तावोऽग्निर्भवतीत्येकविꣳशोऽग्निर्भवतीत्युभयं ब्राह्मणमुभयं ब्राह्मणम् ॥ 21॥

(अश्वमेध के अग्निचिति का क्षेत्रफल) तीन गुना होता है, 21½ वर्ग पुरुष होता है, ये दोनों ब्राह्मण है। (21)

[बौधायन शुल्बसूत्र संपन्न हुए इसीलिये अंतिम शब्दों की द्विरुक्ती की है।]

बौधायन शुल्बसुत्रों में उल्लेखित नाप

अंगुल प्रमाण इकाई (Standard Unit) है और अन्य परिमाण साधित नापें (Derived Unit) हैं। यजमान या अध्वर्यू की ऊँचाई (हाथ ऊपर उठाकर ली हुई) एक पुरुष याने 120 अंगुल मानकर अन्य नापों की लम्बाई निश्चित करते हैं। यह नाप काम्य चिति का नाप लेने के समय उपयोजित करते हैं।

1 अंगुल	=	14 अणू के दाने (1.4)		
	=	34 तिल के दाने, इनके कुल चौड़ाई इतना (1.5) = 1.9 से.मी.		
1 क्षुद्रपद	=	10 अंगुल (1.6)	=	19 से.मी.
1 प्रादेश	=	12 अंगुल (1.7)	=	22.8 से.मी.
1 पृथ	=	13 अंगुल (1.8)	=	24.7 से.मी.
	=	1 उत्तर युग		
1 पद	=	15 अंगुल (1.9)	=	28.5 से.मी.
1 ईषा	=	188 अंगुल (1.10)	=	357.2 से.मी.
1 अक्ष	=	104 अंगुल (1.11)	=	197.6 से.मी.
1 युग	=	86 अंगुल (1.12)	=	163.4 से.मी.
1 जानु	=	32 अंगुल (1.13)	=	60.8 से.मी.
1 शम्या	=	1 बाहू = 36 अंगुल (1.14)	=	68.4 से.मी.
1 प्रक्रम	=	2 पद = 30 अंगुल (1.15)	=	57.0 से.मी.
1 अरत्नि	=	2 प्रादेश = 24 अंगुल (1.16)	=	45.6 से.मी.
1 पुरुष	=	5 अरत्नि = 120 अंगुल (1.17)	=	228 से.मी.
1 व्याम	=	5 अरत्नि = 120 अंगुल (1.20)	=	228 से.मी.
1 व्यायाम	=	4 अरत्नि = 96 अंगुल (1.29)	=	182.4 से.मी.
1 विराट्	=	10 पद = 150 अंगुल (1.78)	=	285.0 से.मी.

पद, युग, प्रक्रम, अरत्नि और शम्या की नापें बदल सकती हैं। (1.18)।

बौधायन शुल्बसूत्रों के भौमितिक शब्द

अंस	–	वर्ग या कोई भी सरल रेखाकृति भौमितिक आकृति की ईशान्य और आग्नेय सिरे (1.34)
अंहीयस्	–	छोटा (1.41)
अक्ष्णय	–	कर्ण (1.46)
अक्ष्णया रज्जू	–	कर्ण के नाप की रस्सी (1.46)
अणिमत्	–	छोटा (1.55)
अणिमतः करणी	–	छोटी भुजा (1.55)
अतिशिष्येत्	–	अधिक रहेगा (1.58)
अनित्य	–	सूक्ष्म (1.60)
अनीक	–	बाजू, ओर (3.57)
अनूची	–	एक दूसरे के संपर्क में (1.67)
अन्वायच्छेत्	–	खींचें, तानें (4.96)
अंत	–	ओर (1.23)
अंतरतः	–	अंदर, अंदर के (बाजू से) (5.32)
अंतराल	–	बीच की जगह, अंतर (3.59)
अतःस्पन्द्यम्	–	रस्सी के अंदर का भाग (4.21)
अपच्छिद	–	कम करना, निकाल देना (1.56)
अपनामः	–	(पंख का) बांक, झुकाव (4.53)
अपर	–	पश्चिम, पीछे का (1.15)
अपर-दक्षिणम्	–	पश्चिम – दक्षिण नैर्ऋत्य (6.14)
अपरिमित	–	पहले कहे हुए नाप में इनका एकक नाप का योग करने पर आने वाला नाप या संख्या

द्वादशदीक्षा अपरिमिता वा याने दीक्षा बारह या तेरह हैं। (1.99)

अपायम्य	–	खींचकर, तानकर (1.68)
अभितः	–	दोनों ओर (1.37)
अभ्यापातयेत्	–	(प्राची) पर रखें। (1.58)
अरा	–	अरा (5.34)
अर्ध	–	आधा (1.34)
अध्यर्धा	–	डेढ़ गुना (1.42) प्रमाण ईंटों के डेढ़ गुना क्षेत्रफल की ईंट
अवशिष्य	–	छोड़कर (1.97)
अवस्तात्	–	पीछे, पश्चिम की तरफ (2.22)
आगन्तुकम्	–	आगन्तुक (1.68)
आददीत	–	योग करें (1.107)
आपरिकर्षण	–	वृत का कम करना (5.34)
आयाम	–	लम्बाई (1.88)
आलिख	–	(रेखा) लिखें (1.22)
आवापेन	–	योग करके (1.54)
इतरत्र	–	दूसरी जगह (1.55)
इष्ट	–	ईष्ट, इच्छित (1.44)
उत्तर	–	उत्तर की दिशा, बाईं बाजू (1.28)
उत्तरत	–	उत्तर की तरफ, बाएँ तरफ (2.5)
उत्तरोत्तर	–	क्रमशः (2.5)
उदक्	–	(दक्षिण से) उत्तर की तरफ (1.94)
उद्धरेत्	–	घटाएँ, व्यवकलित करे। (5.59)
उद्धृता	–	निकाली हुई, घटाई हुई (4.97)

उपदध्यात्	–	रखें। (2.42)
उपधाने	–	(ईंटें) रखते समय (3.24)
उपर	–	नीचे का भाग, यूप का जमीन में जो भाग गाढ़ते है। (1.113)
उपरिष्टात्	–	ऊपर (1.39)
उपलब्धिः	–	सिद्धता, प्रत्यक्ष प्रमाण (1.49)
उपसंहरेत्	–	लाऐं। (1.51)
उभयतःप्रउगः	–	समभुज चतुर्भुज (1.57)
उन्नयेत्	–	(लम्बाई में) वृद्धि करें। (9.11)
उल्लिखेत	–	चिन्ह लगाएँ (1.50)
उन	–	कम (1.32)
ऊर्ध्वप्रमाण	–	ऊँचाई (2.13)
ऋजुलेखा	–	सरल रेखा (2.32)
कनीयस्	–	छोटा (1.50)
करणी	–	भुजा (1.55)
कृतान्त	–	खींचें हुई आकृति की भुजा (2.10)
खण्ड	–	टुकडा (1.54)
चतुर्भागीया	–	(पुरुष के) चौथाई भाग की (30x30 अंगुल) ईंट (4.35)
चतुर्भागोना	–	चौथाई भाग से कम (1.32)
चतुरस्त्रः	–	चतुर्भुज, मुख्यतः वर्ग (1.22)
चतुरस्त्रकरणी	–	वर्ग की भुजा (1.60)
चतुःस्त्रक्तिः	–	चार सिरों वाला (1.83)
चिकीर्षन्	–	करनी हो तो (1.22)
चिन्वीत	–	चिने। (2.18)

जघन्	–	पीछे का (पश्चिम का) भाग
ज्यायस्	–	बड़ा (2.18)
तावतीं	–	इतना (1.38)
तावत्यां	–	इतना (1.36)
तिर्यक्	–	चौड़ाई पर (1.46)
त्रिर्यङ्मानी	–	लम्बाई की भुजा (1.54)
तृतीयकरणी	–	प्रमाण बाजू वर्ग के क्षेत्रफल के तिहाई क्षेत्रफल के वर्ग की बाजू (1.47)
त्रिकरणी	–	प्रमाण भुजा के वर्ग के क्षेत्रफल के तीन गुने क्षेत्रफल के वर्ग की भुजा (1.46)
दक्षिण	–	दक्षिण दिशा, दाहिनी भुजा (1.28)
दध्यात्	–	रखें। (1.109)
दीर्घकरणी	–	आयत की अधिक लम्बाई की भुजा (1.87)
दीर्घचतुरस्त्र	–	आयत (1.36)
द्राघीयान्	–	वृद्धि करें, बढाईयें। (3.19)
द्विकरणी	–	प्रमाण भुजा के वर्ग के क्षेत्रफल के दो गुने क्षेत्रफल के वर्ग की भुजा (1.46)
द्विगुण	–	दुगुनी (1.30)
द्विस्तावतीम्	–	इसके दुगनी (1.45)
नाभि	–	पहिये की नाभि (5.19)
निर्जिहीर्षन्	–	व्यवकलित करना हो तो (1.51)
निरस्तम्	–	व्यवकलित करना (1.51)
निर्हरेत्	–	निश्चित करना (1.44)
निर्हारः	–	व्यवकलन (1.54)
निर्णाम	–	(पंख का) बांक (4.23)

नेमि	–	पहिये का बाहर का वृत्ताकार भाग (5.21)
न्यञ्छन	–	वर्ग की सिरे समकोण खींचने के लिये रस्सी के दो भाग करने वाला चिन्ह (1.33)
पञ्चमभागीया	–	पुरुष के पांचवे भाग की (24 x 24 अंगुल) ईंट
परिमाण	–	नाप (1.2)
परिणाह	–	परिमिति (1.113)
परिलिखेत्	–	लिखें। (1.23)
पश्चात्	–	पीछे (1.28)
पश्चात् तिरश्ची	–	पीछे की आडी बाजू (1.76)
प्रमाण	–	प्रमाण, नाप (1.3)
पृथु	–	चौड़ा (1.5)
पार्श्व	–	दोनों ओर (2.25)
पार्श्वमानी	–	आयत की चौड़ाई की भुजा (1.48)
पार्श्वसंधान	–	ओर का जोड़ (2.23)
पाश	–	गांठ (1.24)
पुरस्ताद्	–	आगे, पूर्व की तरफ (1.41)
पुरस्ताद् तिरश्ची	–	पूर्व की आडी बाजू (1.76)
पूरयेत्	–	पूरी करें। (8.12)
पूर्व	–	पूर्व दिशा, आगे, (1.27)
पूर्वेण	–	पहले (7.4)
पूर्वस्मिन्	–	पूर्व की तरफ (1.27)
पूर्वानीक	–	पूर्व बाजू के पास (3.57)
पूर्वापरयोः	–	पूर्व और पश्चिम की तरफ (3.47)
पृष्ठ्या	–	सममिति अंक्ष (1.35)

प्रस्तार – तह (2.65)

प्रच्छादयेत् – ढंकें (8.11)

प्रतिमुच्य – (रस्सी के सिरे) बाँधना (1.27)

प्रत्याददीत – बार बार करें। (2.6)

प्रधि – वृत्त में समायोजित बड़े से बड़ा वर्ग खींचने के बाद उसके बाहर वृत्त के चार भाग (2.71)

प्रउग – समद्विभुज त्रिभुज (1.56)

प्राग्भेद – पूर्वाभिमुख कर्ण (आयेगा ऐसा) (4.84)

प्राची – पूर्व पश्चिम (लम्बाई) और आकृति की सममिति अक्ष की रेखा (1.31)

बहिःस्पन्द्यम् – रस्सी के बाहर की जगह (1.56)

भूमि – क्षेत्रफल (1.36)

भेद – नीचे और ऊपर की तह के जोड़ एक के एक ऊपर दूसरा आने से भेद होता है। (2.22)

मण्डल – मण्डल, वृत्त (1.23)

मध्य – मध्य, केन्द्र (1.22)

मानयोग – नापें तथा विन्यास (1.86)

मिनुयात् – (नाप) नापें। (1.41)

यथाकाम – चाहत के अनुसार (1.18)

यावती – जितनी (138)

रज्जू – रस्सी (1.22)

लक्षण – चिन्ह (1.22)

लेखा – रेखा (1.22)

वर्धयेत् – वृद्धि करें। (1.61)

वर्षीयसः – बड़ी (बाजू) (1.50)

वितृतीय – एक तिहाई से कुछ कम (1.81)

विधा – प्रकार, वर्ग पुरुष (2.4)

विधाभ्यास – वर्ग पुरुष से वृद्धि करना (2.4)

विपर्यस्य – उलट करना (1.55)

विभजेत् – विभाग करें। (2.64)

विमिमीत – नापें ले। (1.107)

विशयस्था – जोड़ पर रखी हुई (2.34)

विशय – जोड़ (4.38)

विष्कम्भ – (वृत्त का) व्यास (1.23)

विष्कम्भान्त – व्यास के अंत (1.23)

विहरण – अभिन्यास

वृध्र – बड़ा (1.50)

व्यत्यासं चिनुयेत् – उलट सीधी चिने। (3.40)

व्यतिषक्ता – उलट सीधा (4.32)

व्यास – चौड़ाई (1.88)

व्यावृत्या – उलटा (3.10)

शंकु – खुंटि (1.23)

शेष – शेष, उर्वरित (1.55)

श्रोणी – चतुर्भुज के नैऋत्य और वायव्य की सिरे (1.35)

षड्भागोने – छठा भाग कम करके (1.42)

संख्या – संख्या (2.27)

संभुज्य	-	विभाजन करना (1.68)
संपूरयेत्	-	पूरी करे। (1.54)
संश्लिष्ट	-	एक दूसरे के संपर्क में (1.5)
संसर्गाः	-	छेद बिन्दूओं (1.28)
समचतुरस्त्र	-	वर्ग (1.52)
समस्यन्	-	योग करना हो तो (1.50)
सम्येतान्	-	काटना (1.25)
सम	-	समान (1.37)
स्रक्ति	-	सिर (2.25)
सविशेष	-	$\sqrt{2}$ की कीमत
सव्यावर्त लेखा	-	दाहिने तरफ मुडने वाली रेखा। (2.39)
सावयवः	-	(ईंटों की अर्ध्या पाद इत्यादि) प्रकार के साथ (4.73)
ह्रास वृद्धिः	-	कम अधिक (8.17)

2 मानव शुल्बसूत्र

विभाग 1 से 3

(शुल्ब, उत्तरेष्टक व वैष्णव)

हिन्दी भाषा

मानव शुल्बसूत्र

10.1.1

अथातः शुल्बँ व्याख्यास्यामः ॥ 1 ॥

अब रस्सी से अभिन्यास का व्याख्यान देता हूँ। (1)

रज्जुं पाशवतीँ समां निरायतां पृष्ठ्याँ यथार्थमुपकल्पयेत् ॥ 2 ॥

(सिरों पर) गांठ बाँधी हुई, सर्वत्र एक ही मोटाई की, खींचने पर जिसकी लम्बाई कम या अधिक नहीं होती ऐसी रस्सी पृष्ठ्या पर (पूर्व-पश्चिम जाने वाली मध्य रेखा) जैसी चाहिए वैसी रखें। (2)

अन्तरेण चित्रास्वाती श्रवणप्रतिश्रवणौ कृत्तिकाप्रतिकृत्तिके तिष्यपुनर्वसू च प्राग्देशोऽयं युगमात्रोदितयोः पाशाञ्च ॥ 3 ॥

चित्रा और स्वाती, श्रवण और प्रतिश्रवण, कृत्तिका और प्रतिकृत्तिका या तिष्य और पुनर्वसू इन तारों की जोड़ी क्षितीज से युग नाप से ऊपर आने के बाद इनके मध्य पर पूर्व दिशा होती है और उसकी (मध्य की) तरफ रस्सी की गांठ रखें। (3)

[1 युग = 86 अंगुल, सूत्र 10.1.2.1 देखें]

दार्शिक्याः शयाः षट् तानि सप्त सप्तदशैव तु।
एकं द्वे पञ्च तैर्मीत्वा समरैः परिलेखयेत् ॥ 4 ॥

दार्शिकि वेदि के विन्यास के लिए छः अरत्नि (144 अंगुल) लम्बी रस्सी लेकर पहला चिन्ह पश्चिम के सिरे से चार अरत्नि (96 अंगुल) दूरी पर लगायें (यह प्राची की लम्बाई)। दूसरा चिन्ह, अंस के लिए, पश्चिम के सिरे से एक अरत्नि (24 अंगुल) दूरी पर लगायें। तीसरा चिन्ह श्रोणी के लिये, (दूसरे चिन्ह से) आठ अंगुलों पर (याने पश्चिम के सिरे से 32 अंगुलों पर) लगायें। इस रस्सी से, इसके ऊपर किये हुए चिन्हों से, वेदि का विन्यास करें। वेदि की बाजू जितनी लम्बी त्रिज्या के मण्डल से चाप निकालें। वे जहाँ एक दूसरे को काटते हैं वे केन्द्र बिन्दु लेकर उन-उन त्रिज्याओं से (वेदि की भुजाऐं) चापाकार खींचे। (4)।

[वेदि की पूर्व-पश्चिम लम्बाई चार अरत्नि है। निरांछन के लिये और श्रोणियों के विन्यास के लिये पश्चिम के सिरे से 32 अंगुलों पर चिन्ह लगायें। इस चिन्ह के पूर्व की तरफ 8 अंगुल दूरी पर याने पश्चिम के सिरे से 40 अंगुलों पर चिन्ह लगायें। यह निरांछन। 40, 96 और 104 अंगुल भुजाओं का समकोण त्रिभुज 144 अंगुल लम्बी रस्सी से खींचते हैं। प्राची के पूर्व और पश्चिम अंतो पर (क और ख) रस्सी के सिरे बाँधें, रस्सी को निरांछन से पकडें और दक्षिण-पश्चिम की तरफ खींचें। जहाँ निरांछन आयेगा 'ग' वहाँ चिन्ह लगायें। खग = 40 अंगुल, 32 अंगुल के चिन्ह पर श्रोणी है वहाँ खुंटि (घ) ठोकें। रस्सी के सिरे अब उलट रखें यानि पश्चिम की ओर सिर पूर्व की तरफ, खुंटि क पर, और पूर्व की ओर का सिर पश्चिम की तरफ, खुंटि 'ख' पर, बाँधे और रस्सी निरांछन से पूर्व-दक्षिण की तरफ खींचें। निरांछन च पर आता है। 24 अंगुलों पर लगाया हुआ चिन्ह जहाँ आयेगा वहाँ अंस के लिये खुंटि (छ) ठोकें। इसी तरह से उत्तर की ओर के अंस और श्रोणी का अभिन्यास करें।]

अँसाच्छ्रोणौ रज्जवन्तं प्रतिष्ठाप्य प्राचीमनुलिखेदँसे प्रतिष्ठाप्य प्रतीचीँ समरे रज्जवन्तं प्रतिष्ठाप्य श्रोणेरध्यँसादनुलिखेत् ॥ 5 ॥

(दक्षिण) अंस से (दक्षिण) श्रोणी तक रस्सी के सिरे रखकर (याने 96 अंगुल लम्बी रस्सी लेकर) श्रोणी से (श्रोणी पर रखा हुआ रस्सी का सिर केन्द्र बिन्दु मानकर 96 अंगुल त्रिज्या से) पूर्व की तरफ वृत्त का चाप निकालें। अंस से (अंस केन्द्र बिन्दु मानकर 96 अंगुल त्रिज्या से) पश्चिम की तरफ वृत्त का चाप निकालें। ये दोनों चाप जहाँ एक दूसरे को काटते है (वह केन्द्र बिन्दु समझकर) वहाँ रस्सी का एक अंत रखें और (दक्षिण की) श्रोणी से (दक्षिण के) अंस तक वृत्त का चाप खींचे। (5)

[इस रीति से वेदि की दक्षिण भुजा चापाकार होती है।]

एवमुत्तरतः पुरस्तात् पश्चाच्च ॥ 6 ॥

ऐसी ही उत्तर, पूर्व और पश्चिम की और करें। (6)
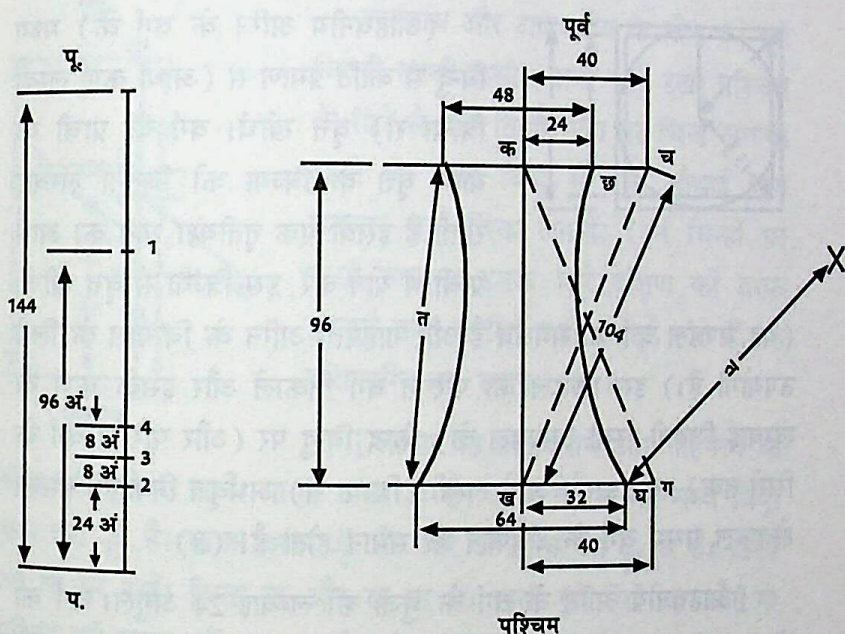
दार्शिकि वेदि (सूत्र 10.1.1.4-6)

अरत्निश्चतुरस्रस्तु पूर्वस्याग्नेः खरो भवेत्।
रथचक्राकृतिः पश्चाच्चन्द्रार्धेन तु दक्षिणे ॥ 7 ॥

पूर्व की ओर का (आहवनीय) अग्नि वर्गाकार है और इसकी लम्बाई एक अरत्नि है। पश्चिम की तरफ (गार्हपत्य) अग्नि रथ के पहिये जैसा वृत्ताकार है। परन्तु दक्षिण की ओर का अग्नि का (दक्षिणग्नि का) आकार आधे चाँद जैसा होता है। (7)

[तीन ही अग्नियों का क्षेत्रफल एक वर्ग अरत्नि है यह भी यहाँ सूचित किया है।]

मध्यात् कोटिप्रमाणेन मण्डलं परिलेखयेत्।
अतिरिक्तत्रिभागेन सर्वं तु सहमण्डलम् ॥
चतुरस्रे ऽक्ष्णया रज्जुर्मध्यतः संनिपातयेत्।
परिलेख्य तदर्धेनार्धमण्डलमेव तत् ॥ 8 ॥
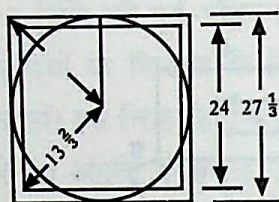
(आहवनीय अग्नि के वर्ग के) मध्य बिन्दु से कोटि प्रमाण से (आधा कर्ण लम्बी त्रिज्या से) वृत्त खींचें। वर्ग के प्राची के बाहर वृत्त के त्रिज्या की जितनी लम्बाई रहती है इसके एक तृतीयंश भाग का आधे प्राची में योग करें, इस त्रिज्या से वृत्त खींचें। (यह मण्डल वर्ग का समक्षेत्र है और गार्हपत्य अग्नि के विन्यास के लिये उपयोगी है।) इस मण्डल का परिगत वर्ग निकालें और इसके कर्ण के लम्बाई जितनी रस्सी (मण्डल के) केन्द्र बिन्दु पर (और परिगत वर्ग के सिरो तक) रखें। इसके आधे लम्बी (त्रिज्या से) अर्धवृत्त निकालें। इसका क्षेत्रफल प्रथम वर्ग के क्षेत्रफल के समान होता है। (8)

[आहवनीय अग्नि के वर्ग के भुजा की लम्बाई 24 अंगुल। वर्ग का क्षेत्रफल = 576 वर्ग अंगुल। इस वर्ग के कर्ण की लम्बाई = $\sqrt{24^2+24^2} = 34$ अंगुल। प्राची के बाहर आने वाले भाग की लम्बाई = 17-12 = 5 अंगुल। इसका तिहाई भाग = $\frac{5}{3} = 1\frac{2}{3}$ अंगुल।

गार्हपत्य अग्नि के वृत्त की त्रिज्या = $12 + 1\frac{2}{3} = 13\frac{2}{3}$ अंगुल।

इस वृत्त का क्षेत्रफल = $\frac{22}{7} \times (13\frac{2}{3})^2 = 587$ वर्ग अंगुल।

इस वृत्त के परिगत वर्ग के भुजा की लम्बाई = $27\frac{1}{3}$ अंगुल। इसके कर्ण के जितने व्यास के अर्धवृत्त का क्षेत्रफल = $\frac{22}{7} \times \frac{19.35 \times 19.35}{2}$ = 591 वर्ग अंगुल।

विभिन्न अग्नियों का क्षेत्रफल -

वर्गाकार आहवनीय अग्नि का क्षेत्रफल = 576 वर्ग अंगुल।

वृत्ताकार गहिपत्य अग्नि का क्षेत्रफल = 587 वर्ग अंगुल।

अर्धचंद्राकृति दक्षिणाग्नि का क्षेत्रफल = 591 वर्ग अंगुल।]

गार्हपत्याहवनीयावन्तरा रज्जुं निमायापरस्मिँस्तृतीये लक्षणं मध्यात् तुरीयमुत्सृज्य लक्षणं पाशान्तौ समाहृत्य दक्षिणतो दक्षिणाग्नेर्लक्षणम्

॥9॥
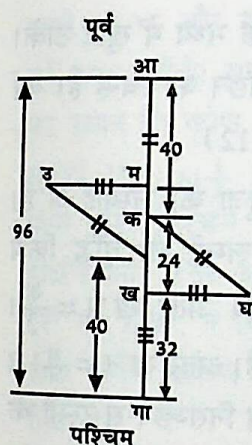
गार्हपत्य और आहवनीय के बीच की दूरी जितनी लम्बी रस्सी (प्राची पर) रखें। पश्चिम के सिरे से एक तिहाई भाग पर चिन्ह लगायें। रस्सी के मध्य बिन्दु से एक चौथाई भाग घटाकर वहाँ चिन्ह लगायें। (इन चिन्हों पर रस्सी रखकर। इसके सिरे दक्षिण की तरफ इकट्ठे करें। वे सिरे जहाँ इकट्ठे होते हैं वह दक्षिणाग्नि का स्थान। (9)।

[आ गा यह आहवनीय और गार्हपत्य के बीच की दूरी क्ष मानें। गा ख अंतर $\frac{क्ष}{3}$ है। आख का म यह मध्य बिंदु। कम दूरी $\frac{क्ष}{12}$ है। ख क अंतर $\frac{क्ष}{4}$ हैं। और अन्तर क आ $\frac{5}{12}$ क्ष है। रस्सी आ गा पर रखें। चिन्ह क और ख पर हैं। रस्सी की सिरें आ और गा दक्षिण की तरफ खींचकर इकट्ठे करें, घ बिंदु मिलता है। यह दक्षिणाग्नि का स्थान। त्रिभुज क ख घ में ख घ $\frac{1}{3}$क्ष, क ख ¼ क्ष और क घ $\frac{4}{12}$क्ष। $(ख घ)^2 + (क ख)^2 = क घ,^2$ $(\frac{क्ष}{3})^2 + (\frac{क्ष}{4})^2 = (\frac{5}{12}क्ष)^2$, क ख घ यह समकोण त्रिभुज है। आकृति में (उ) उत्कर का स्थान है]

एतदेव विपर्यस्य उत्तरत उत्करस्य लक्षणम् ॥ 10 ॥

यही रीत उलट करके उत्तर की तरफ उत्कर का स्थान प्राप्त करें। (10)

यावत्प्रमाणा रज्जुः स्यात् तावदेवागमो भवेत्। आगमार्धे भवेत् शङ्कुः शङ्कोरर्धे निराञ्छनम् ॥ 11 ॥

समन्तचतुरस्राणि विधिरेषः प्रकीर्तितः ॥ 12 ॥

जितने लम्बाई की प्रमाण रज्जू (वर्ग की भुजा) हो इतनी रज्जु की लम्बाई में वृद्धि करें। (वर्ग के
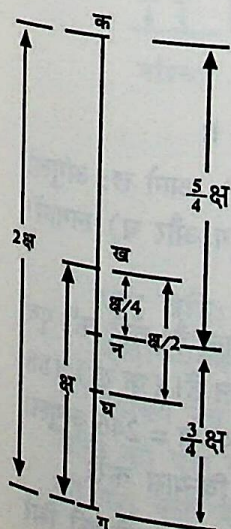
बाजू के दुगुनी लम्बी रस्सी लें) वृद्धि किये रस्सी के मध्य में खुंटि ठोकें। खुंटि और रस्सी का मध्य बिन्दु इनके मध्य में निरांछन का चिन्ह है। वर्ग के विन्यास की (सामान्य) रीति यहाँ कही है। (12)
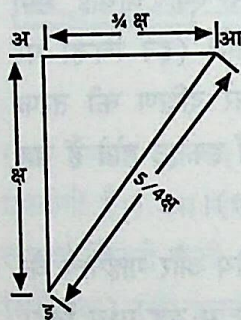
[मानों की वर्ग की भुजा की लम्बाई क्ष है। रस्सी (क ख ग) 2 क्ष लम्बी लें। वृद्धि किये रस्सी का मध्यबिन्दु घ है। अंतर ख घ $= \frac{क्ष}{2}$। इस दूरी का मध्यबिन्दू न है। अंतर ख न $= \frac{क्ष}{4}$। न निराञ्छन का चिन्ह है। इस निराञ्छन से रस्सी के $\frac{5}{4}$क्ष (क न) और $\frac{3}{4}$क्ष (ग न) ऐसे दो भाग होते हैं। इस रस्सी से क्ष, $\frac{3}{4}$क्ष और $\frac{5}{4}$क्ष लम्बी भुजाओं का इ अ आ यह समकोण त्रिभुज मिलता है। इस पद्धति से इच्छित लम्बी भुजाओं का वर्ग का विन्यास कर सकते हैं।]

10.1.2

अष्टाशीतिः शतमीषा तिर्यगक्षश्चतुःशतम् ।
षडशीतिर्युगं चास्य रथश्चारक्य उच्यते ॥ 1 ॥

ईषा 188 अंगुल, आडा अक्ष (धुरा) 104 अंगुल और युग 86 अंगुल हैं। ऐसे रथ को 'चारक्य' कहते हैं। (1)

ईषाया लक्षणं मीत्वा षट्सु नवसु च लक्षणे ।
त्रिचत्वारिंशके पाशो ऽङ्गुलानां नियोगतः ॥ 2 ॥

रस्सी पर ईषा (144 अंगुल) दूरी पर चिन्ह (ख), आगे छः अंगुलों पर और इसके आगे नौं अंगुलों पर चिन्ह (क्रमशः ग और घ) लगायें। इसके आगे 43 अंगुलों पर गांठ (च) बाँधें। (2)

[वेदि की प्राची (पूर्व-पश्चिम लम्बाई) 188 अंगुल है। वेदि की पूर्व भुजा 86 अंगुल लम्बी है और पश्चिम भुजा 104 अंगुल हैं। (क ख) 188 अंगुल, क ग = 194 अंगुल, क घ = 203 अंगुल और क च = 246 अंगुल। रस्सी 246 अंगुल लम्बी लें। 188 अंगुल प्राची का विन्यास करें।

क ग = 194 अंगुल, गच = 246−194 = 52 अंगुल। रस्सी की सिरे

प्राची पर क और ख खुंटियों को बाँधें। निरांछन (ग) से रस्सी दक्षिण की तरफ खींचें। समकोण त्रिभुज क ख छ मिलता है। छ दक्षिण श्रोणी का स्थान है। कोण क ख छ अचूक समकोण होने के लिये त्रिभुज की भुजाएं 188, $51\frac{1}{3}$ और $94\frac{2}{3}$ अंगुल चाहिये। इस रीति से उत्तर श्रोणी प्राप्त करें। पश्चिम बाजू की लम्बाई 104 अंगुल होगी। यही रीति से दक्षिण और उत्तर अंस प्राप्त करें। इसके लिये खूंटि क से 43 अंगुल दूरी पर ठोकें, न कि 52 अंगुल दूरी पर। 86 अंगुल लम्बी पूर्व भुजा प्राप्त होगी। चारक्य रथ के नापों वाली वेदि का विन्यास करने की यह रीति है।]
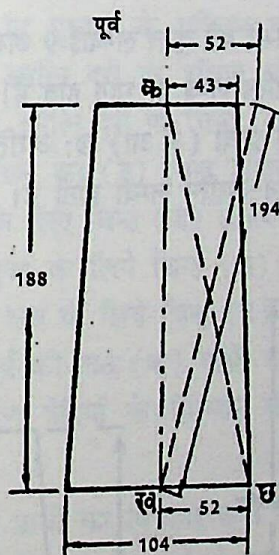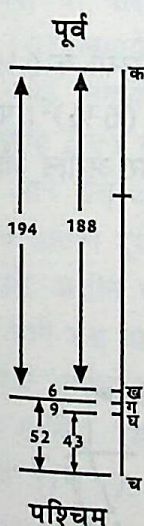
चारक्य वेदि
(सूत्र 10.1.2.1-2)

एषा वेदिः समाख्याता चारक्यरथसंमिता ।
ऐन्द्राग्न्यस्य पशोरेषा पशुष्वन्येषु षट्शया ॥ 3 ॥

चारक्य रथ जैसी नापों की वेदि का यह विन्यास कहा। इंद्र और अग्नि को पशु बली देने के लिये यह वेदि उपयोगी है। अन्य देवताओं को पशु बली देने के लिये वेदि की प्राची छः अरत्नि (144 अंगुल)

होती है। (3)

प्राच्यर्धः षडरत्निः स्यादर्धारत्नेर्निराञ्छनम् ।
अर्धे श्रोणी ततोऽर्धेऽँसावध्यर्ध इति पाशुकी ॥ 4 ॥

(पशुबंध यज्ञ के वेदि की) प्राची छः अरत्नि है। (रस्सी पर छः अरत्नि दूरी चिन्ह ख लगायें।) वहाँ से आधे अरत्नि दूरी पर निरांछन का चिन्ह लगायें। इसके आगे आधे अरत्नि दूरी पर श्रोणी के लिए और इसके आगे आधे अरत्नि दूरी पर अंस के लिए चिन्ह लगायें। वहाँ से डेढ़ अरत्नि दूरी पर (गांठ बाँधें)। यह पाशुकि वेदि के (विन्यास के) लिये रस्सी है। (4)

[रस्सी की कुल लम्बाई 9 अरत्नि है। निरांछन से रस्सी के 6 ½ और 2½ अरत्नि लम्बे दो भाग होते हैं। $(6)^2+(2½)^2 = (6 ½)^2$। पाशुकि वेदि की प्राची (अ आ) छः अरत्नि, पश्चिम बाजू चार अरत्नि और पूर्व बाजू तीन अरत्नि लम्बी होती है।
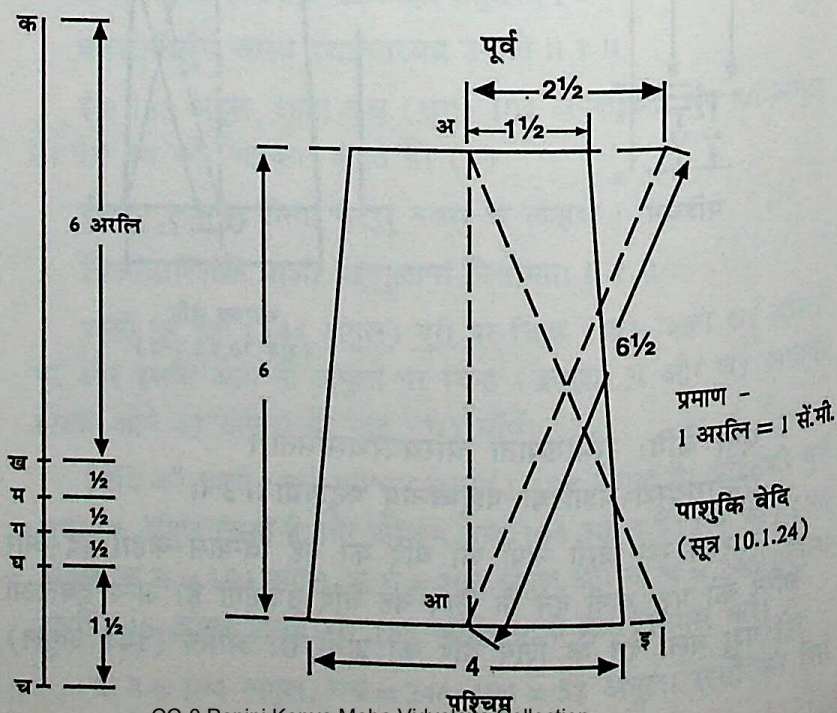
(अ आ) पर रस्सी के सिरे बाँधें और निरांछन से रस्सी दक्षिण की तरफ खींचें। दक्षिण श्रोणी (इ), दो अरत्नि दूरी पर प्राप्त होती है। इसी रीति से उत्तर श्रोणी का विन्यास करें। चार अरत्नि लम्बी पश्चिम भुजा प्राप्त होती है। यही रीति से तीन अरत्नि लम्बी पूर्व बाजू खींचें।

पाशदर्धशये श्रोणी द्वयोः पृष्ठ्यापरा द्वयोः।
प्राच्यर्धस्तु ततोऽध्यर्धे ततोऽध्यर्धे निराञ्छनम्।
अर्धे ऽँसोऽध्यर्ध एवान्यस्ततोऽध्यर्धे ऽँस उत्तरः।
अरत्नौ तु ततः पाशो वेदी मारुती वारुणी ॥ 5 ॥

रस्सी के पश्चिम सिरे से आधे अरत्नि दूरी पर श्रोणी के लिये चिन्ह (ग) लगायें। दो अरत्नि दूरी पर पृष्ठ्या के पश्चिम की ओर चिन्ह (घ) लगायें। इसके आगे दो अरत्नि दूरी पर दक्षिण श्रोणी के लिये चिन्ह (च) लगायें। वहाँ से डेढ़ अरत्नि दूरी पर चिन्ह (छ) और इसके आगे डेढ़ अरत्नि दूरी पर निरांछन का (न) चिन्ह लगायें। वहाँ से आधे अरत्नि दूरी पर दक्षिण अंस के लिए चिन्ह (ज) लगायें। इसके आगे डेढ़ अरत्नि दूरी पर पूर्व की भुजा के लिये चिन्ह (झ) लगाऐं। इसके आगे डेढ़ अरत्नि दूरी पर उत्तर अंस के लिये चिन्ह (ट) लगायें। आगे एक अरत्नि दूरी पर रस्सी की पूर्व की गांठ (क) बाँधें। यह (12 अरत्नि लम्बी) रस्सी मरुत् और वरुण वेदियों के विन्यास के लिये उपयोगी है। (5)

[प्रथम झ ख छः अरत्नि लम्बी प्राची का विन्यास करें। निरांछन न 12 अरत्नि लम्बी रस्सी के 7½ और 4½ अरत्नि ऐसे दो भाग करता है। 12 अरत्नि लम्बी रस्सी की सिरे प्राची के ख और झ खुंटियों को बाँधें और निरांछन से रस्सी दक्षिण की तरफ खींचें। तब ख झ न यह समकोण त्रिभुज प्राप्त होता है। $(6^2+4\ \frac{1}{2}^2=7\ \frac{1}{2}^2)$। न पर एक खुंटि ठोकें। बाद में रस्सी के सिरे बदलकर न निरांछन से रस्सी खींचकर समकोण त्रिभुज झ ख ह प्राप्त होता है। ह वरुण वेदि की दक्षिण श्रोणी है। ख पर रस्सी का दूसरा चिन्ह घ रखें और रस्सी ख ह पर रखें। रस्सी का पहला चिन्ह ग ख से उत्तर की तरफ ग पर आयेगा। यह मरुत् वेदि की उत्तर श्रोणी। रस्सी का तीसरा चिन्ह च ख के दक्षिण

की तरफ च यहाँ आयेगा यह मरुत वेदि की दक्षिण श्रोणी। चौथा चिन्ह (छ) च के दक्षिण की तरफ छ यहाँ आयेगा। वरुण वेदि के प्राची का पश्चिम सिर। छ ह अंतर एक अरत्नि है। छ त एक अरत्नि लेकर वरुण वेदि की उत्तर श्रोणी मिलती है। ऐसी दोनों वेदि की श्रोणियाँ प्राप्त करें।
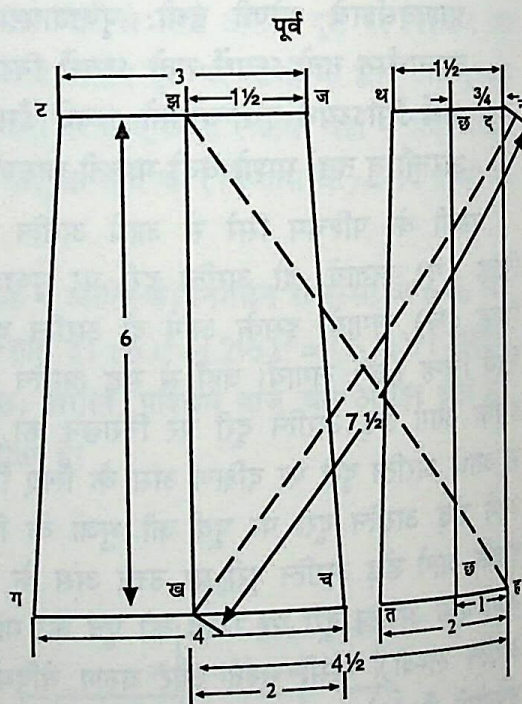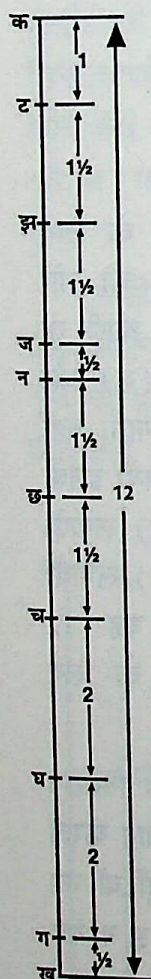
प्रमाण 1 अरत्नि = 1 सें.मी.

मरुत् आणि वरुण वेदि (सूत्र 10.1.2.5)
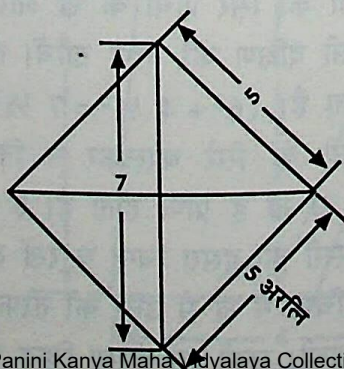
पैतृकि वेदि (सूत्र 10.1.2.6)

रस्सी का (झ) चिन्ह मरुत् वेदि के प्राची के पूर्व सिरे पर झ रखें और रस्सी ऐसी फैलाओं की उसका पूर्व सिर (क) उत्तर की तरफ और पश्चिम सिर चिन्ह दक्षिण की तरफ आयेंगें। रस्सी का (ट) चिन्ह ट पर आता है, यह मरुत् वेदि का उत्तर अंस। चिन्ह (ज) ज पर आता है, यह मरुत् वेदि का दक्षिण अंस। चिन्ह (छ) छ पर आता है, यह वरुण वेदि के प्राची का पूर्व सिर, वहाँ से ¾ अरत्नि दूरी पर थ और द ये क्रमशः वरुण वेदि के उत्तर और दक्षिण अंस है। इस रीति से दोनों वेदियों का विन्यास एक ही रस्सी की सहायता से कर सकते है।]

सर्वा दशशया रज्जुर्मध्ये चास्या निराञ्छनम्।

प्राच्यर्धं पञ्चमे कुर्याद् दिक्कुष्ठा पैतृकी स्मृता ॥ 6 ॥

दस अरत्नि लम्बी रस्सी लें। इसके मध्य बिन्दु पर निरांछन है। (प्राची सात अरत्नि लम्बी है) दो पांच अरत्नि दूरियों से आधे प्राची का (लम्ब अन्तर) प्राप्त होता है। पैतृकि (वेदि) के सिरे मुख्य दिशाओं की तरफ होते हैं। (9)

[रस्सी दस अरत्नि लम्बी है। निरांछन से इसके पांच अरत्नि के दो भाग होते हैं। प्राची सात अरत्नि लम्बी लें। इसके दोनों सिरो को (सिरो के खुंटियों को) दस अरत्नि लम्बी रस्सी की सिर बाँधें और निरांछन से रस्सी प्रथम दक्षिण की ओर, और बाद में उत्तर की ओर खींचें। इसी से मुख्य दिशाओं की तरफ सिरे होने वाला वर्ग मिलता है। $5^2+5^2 \risingdotseq 7^2$]

सर्वा सप्तशया रज्जुर्मध्ये चास्या निराञ्छनम्।

प्राच्यर्धं पञ्चमे कुर्याद् दिक्कुष्ठा पैतृकी स्मृता ॥ 7 ॥

सात अरत्नि लम्बी रस्सी लें। इसका मध्य बिन्दु निरांछन है। (वेदि के) आधे प्राची के लिये पांच अरत्नि दूरी पर चिन्ह लगायें। पैतृकि वेदि के सिरे प्रमुख दिशाओं की तरफ होते हैं। (7)

($3\frac{1}{2}^2+3\frac{1}{2}^2 \risingdotseq 5^2$)

10.1.3

प्राग्वँशं दशकं कुर्यात् पत्नीशालां चतुःशयाम्।
प्राग्वँशात् त्रिषु वेद्यन्तो वेद्यन्तात् प्रक्रमे सदः ॥ 1 ॥

प्राग्वंश (मण्डप) दस अरत्नि वर्गाकार है। पत्नीशाला चार अरत्नि वर्गाकार है। प्राग्वंश मंडप के (पूर्व भुजा से) तीन प्रक्रम (90 अंगुल) दूरी पर (महा-) वेदि की पश्चिम भुजा होती है। वेदि के पश्चिम भुजा से एक प्रक्रम (30 अंगुल) दूरी पर सदस् (की पश्चिम भुजा) रखते हैं। (1)

नवकं तु सदो विद्यात् चत्वारः सदसो ऽन्तरम्।
चत्वारस्त्रिका हविर्धानमर्धषष्ठस्तदनन्तरम् ॥ 2 ॥

सदस की प्राची नौं अरत्नि है। सदस और हविर्धान मण्डप के बीच चार प्रक्रमों का (120 अंगुल) अंतर रखते हैं। हविर्धान मण्डप चार के तीन गुना (12) प्रक्रमों का है। हविर्धान मण्डप और (उत्तर) वेदि के बीच 6½ प्रक्रम अंतर है। (2)

पदँ यूपावटे मीत्वा शेषमौत्तरवेदिकम्।
आग्नीध्रँ षडरत्न्येव षट्त्रिँशत्प्रक्रमा रज्जुः ॥ 3 ॥

यूप के गडढ़े के लिये एक पद (12 अंगुल) नापकर शेष उत्तर वेदि है। आग्निध्र मण्डप छः अरत्नि है और इनके विन्यास के लिये 36 प्रक्रम लम्बी रस्सी लें। (3)

लक्षिका द्वादश त्रिका। वेदिसदोहविर्धानानि मिनोत्येवानुपूर्वशः पञ्चदशकमेकविँशकं त्रिकमपरं। परतो ऽपरस्त्रिको द्वादशसु च पाशद उच्यते। सोमे रज्जुनिमानमुत्तमम् ॥ 4 ॥

(रस्सी पर) तीन प्रक्रमों के दूरी से बारह चिन्ह लगायें। वेदि, सदस और हविर्धान मण्डप इस क्रम से विन्यास करें। रस्सी के पश्चिम सिरे से 15 प्रक्रम दूरी पर, वहाँ से 21 प्रक्रम दूरी पर (36 प्रक्रम), इसके आगे तीन प्रक्रमों पर (39 प्रक्रम) और फ़िर तीन प्रक्रमों पर (41 प्रक्रम) चिन्ह लगायें। (रस्सी के पूर्व सिरे से) 12 प्रक्रम दूरी के चिन्ह को

पाशद कहते हैं। सोमयाग के (वेदि के और मण्डपों के विन्यास के) लिये यह (ऐसी चिन्हों से अंकित) रस्सी उत्तम मानते हैं। (4)

[रस्सी 54 प्रक्रम लम्बी है। 36 प्रक्रम लम्बी प्राची का विन्यास करें। 54 प्रक्रम लम्बी रस्सी के सिरे क और ख (यहाँ के खुंटियों) को बाँधें और 39 प्रक्रमों पर होने वाले चिन्ह से रस्सी दक्षिण की तरफ खींचें। दक्षिण श्रोणी ग प्राप्त होती है। $36^2 + 15^2 = 39^2$; क ख ग यह समकोण त्रिभुज है। इस रीति से उत्तर श्रोणी भी प्राप्त करें। रस्सी के सिरों की उलट पलट करें और 39 प्रक्रमों पर होने वाले चिन्ह से रस्सी दक्षिण की तरफ खींचें और 12 प्रक्रम के चिन्ह पर (पाशद) खुंटि ठोकें। यह दक्षिण अंस है। इसी रीति से उत्तर अंस प्राप्त करें। सोमयाग के महावेदि की प्राची 36 प्रक्रम, पूर्व भुजा 24 प्रक्रम और पश्चिम भुजा 30 प्रक्रम हैं। इसका क्षेत्रफल $\frac{1}{2} \times 36\,(24+30) = 972$ वर्ग प्रक्रम है।]
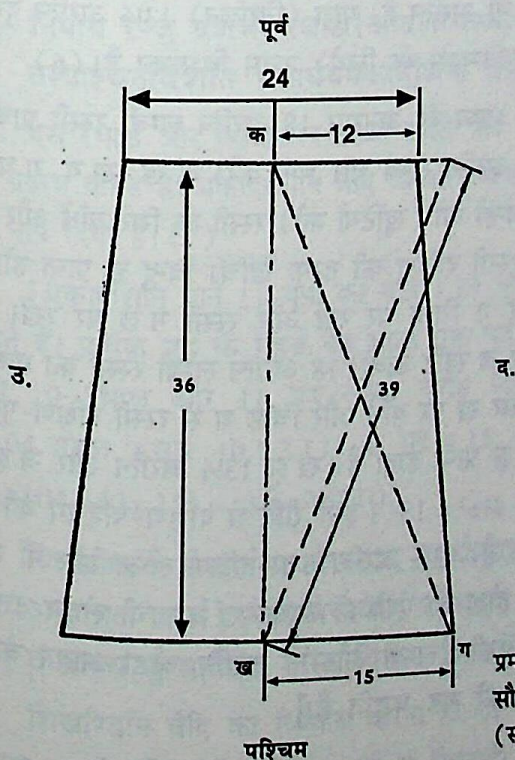
प्रमाण 6 प्रक्रम = 1 सें.मी.
सौमिकी वेदि
(सूत्र 10.1.24)

त्रिपदा पार्श्वमानी स्यात्तिर्यङ्मानी पदं भवेत्।
तस्याक्ष्णया तु या रज्जुः कुर्याद् दशपदां तया ॥ 5 ॥

पार्श्वमानी तीन पद (36 अंगुल) और तिर्यङ्मानी एक पद लें। इस (आयत) के कर्ण के लम्बाई जितनी रस्सी (वर्ग की भुजा) लेकर दस वर्ग पद क्षेत्रफल के वेदि का विन्यास करें। (5)

[$3^2+1^2=10$, वर्ग की लम्बाई = $\sqrt{10}$ पद। वर्गाकार वेदि का क्षेत्रफल = 10 वर्ग पद। दस वर्ग पद उत्तर वेदि के विन्यास की यह रीति है।]

पादादर्धं चतुर्दशे नवके तु ततः पुनः ।
अर्धचतुर्दशः पाशः सदसश्छेदनमुत्तमम् ॥ 6 ॥

14 अरत्नि में एक पाद कम इतनी सदस की आधी लम्बाई है। (याने सदस की आधी लम्बाई 13½ अरत्नि और पूरी लम्बाई 27 अरत्नि है।) इसकी चौड़ाई नौं अरत्नि है। पाश (निरांछन) 13½ अरत्नि दूरी पर है, यह सदस का (विन्यास के लिये) उत्तम विभाजन है। (6)

[शिवदास के भाष्य के अनुसार 18 अरत्नि लम्बी रस्सी प्राची पर रखें। रस्सी के 4½ अरत्नि लम्बे चार भाग करें। क ख, ख ग, ग घ और घ च। ख और घ चिन्हों को (खूंटियों को) रस्सी के सिरे बाँधें और रस्सी के मध्य बिन्दु से रस्सी दक्षिण की तरफ खींचें। बिन्दु छ प्राप्त होता है। रस्सी का एक सिर ग चिन्ह पर रखें और रस्सी ग छ पर रखें। 13½ अरत्नि के चिन्ह पर ज खुंटि ठोकें। 18 अरत्नि लम्बी रस्सी का एक सिर ज पर और दूसरा सिर ख पर बाँधें और चिन्ह घ से रस्सी दक्षिण-पूर्व की तरफ खींचें। बिन्दु झ प्राप्त होता है। ख झ 13½ अरत्नि और ज झ 4½ अरत्नि है। $13\frac{1}{2}^2 + 4\frac{1}{2}^2 = 18^2$ । इसी रीति से दक्षिण-पश्चिम की तरफ का बिन्दु ट मिलता है। 13½ अरत्नि उत्तर-दक्षिण लम्बा और नौं अरत्नि चौड़ा आयत प्राप्त होता है। ऐसा ही आयत ख घ प्राची लेकर उत्तर की तरफ खींचें। 27 अरत्नि लम्बा और नौं अरत्नि चौड़ा आयत के याने सदस के विन्यास की यह पद्धति है।]

प्रमाण - 3 अरत्नि = 1 सें.मी.
सदस का विन्यास
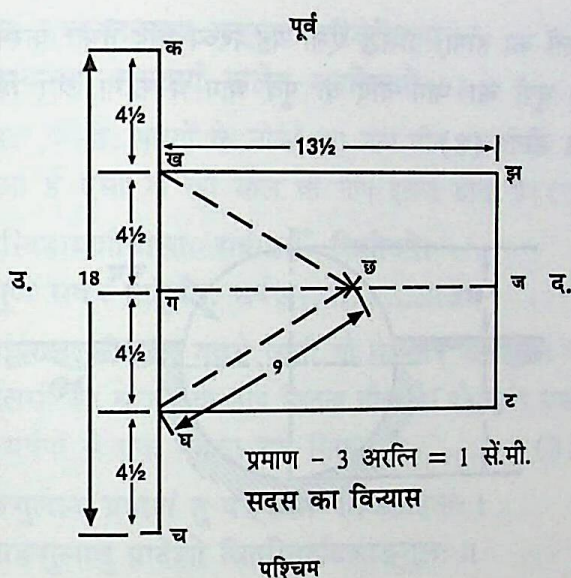
निमाय रज्जुं दशभी रथाक्षैरेकादशभिश्चोपरबुध्नमात्रैः
तस्याश्चतुर्विँशति भागधेयमेकादशिनीं प्रति वेदिमाहुः ॥ 7 ॥

दस रथाक्ष और ग्यारह पद लम्बी रस्सी नाप लें। उसके 24वें भाग को प्रक्रम कहते हैं। एकादाशिनि वेदि के अभिन्यास के लिये यह प्रक्रम का नाप दिया है। (7)

[एकादशिनि याने 11 यूपों की वेदि । हर यूप एक रथाक्ष दूरी पर गाढ़ते हैं। प्रत्येक यूप के गड्ढे का व्यास एक पद है। इसलिए यूपों के लिए 10 रथाक्ष और 11 पद लम्बी जगह लगती है। एक रथाक्ष = 104 अंगुल (सूत्र 10.1.2.1)। 1 पद = 15 अंगुल। 1 प्रक्रम = $\frac{1}{24}$ (11x104 +11x 15) = $48\frac{5}{6}$ अंगुल।)

शिखण्डिनी चेत्कर्तव्या वेद्यन्ताद् द्व्यर्धमुद्धरेत् ।
अष्टांगुलं तदर्धँ स्याद् देव्यवेदि प्रसिद्धये ।
तं प्राञ्चं तु समीक्षेत तांस्तु विद्यात् शिखण्डिनीम् ॥ 8 ॥

शिखण्डिनि वेदि का विन्यास करना हो तो वेदि के (पूर्व) बाजू से यूप अगले और पीछे ऐसे दो भागों में विभागें। इनमें से एक विभाग

आठ अंगुलों का होगा। प्रसिद्ध ऐसी यह दिव्य वेदि तैयार करने की यह पद्धति है। यूपों का भाग वेदि के पूर्व भाग में रहेगा और शिखण्डिनि वेदि तैयार होगी। (8)
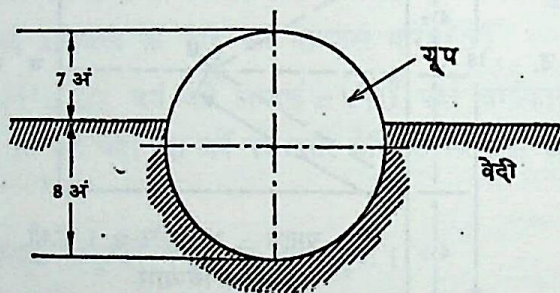
पञ्चकँ सप्तकं चैव एकमेकं ततः पुनः।
एषा वेदिः समाख्याता कौकिल्यास्त्वथ चारके ॥ 9 ॥

पांच और सात प्रक्रम और बाद में एक से कम करें, फिर एक से कम करें। इन नापों की वेदि को कौकिल्य और चारक (सौत्रामणि) वेदि कहते हैं। (9)

[इस वेदि की प्राची 5+7 = 12 प्रक्रम है। पश्चिम बाजू 1+1 = 2 प्रक्रमों से कम याने दस प्रक्रम लम्बी है। पूर्व बाजू दो प्रक्रमों से और कम याने आठ प्रक्रम है। इस वेदि का क्षेत्रफल $\frac{1}{2} \times 12 \times (10+8) = 108$ वर्ग प्रक्रम। इस वेदि का क्षेत्रफल सौमिकि वेदि के क्षेत्रफल से $\frac{1}{9}$ है, सूत्र 10.1.3.4 देखें।]

10.1.4

जन्मना रोगहीनो वा यजमानो भवेद्यदि।
कथं तत्र प्रमाणनि प्रयोक्तव्यानि कर्तृभिः ॥ 1 ॥

यजमान की ऊँचाई जन्मतः या किसी रोग से (सामान्य मान से) कम होगी तो विन्यास करने वालों ने किस और कौन प्रमाण से नापें लेने के। (1)

तुण्डं पुष्करनालस्य षड्गुणं परिवेष्टितम्।
त्रिहायण्या वत्सतर्या वालेन सममिष्यते ॥ 2 ॥

कमल के छः परागों के नोकों का नाप तीन साल की और जिन्हें बछडा हुआ है ऐसी गौं की बाल के नाप इतना होता है। (2)

त्रयस्त्रिहायणीवालाः सर्षपार्धँ विधीयते।
द्विगुणँ सर्षपं प्राहुर्यवः सर्षपार्...........॥ 3॥

तीन साल की और बछडे वाली गौ के तीन बालों का नाप आधे सर्षप (अलसी का बीज) के नाप जितना होता है। दो सर्षप एक मानकर ऐसे तीन सर्षपों से एक यवका नाप मिलता है............। (3)

अङ्गुलस्य प्रमाणं तु षड्यवाः पार्श्वसँहिताः।
दशाङ्गुलस्तु प्रादेशो वितस्तिर्द्वादशाङ्गुलः॥
द्विवितस्तिररत्निः स्याद् व्यायामस्तु चतुःशयः ॥ 4 ॥

छः यवों के दाने मोटाई के दिशा में रखें तो एक अंगुल की लम्बाई मिलती है। दस अंगुलों का एक प्रादेश और बारह अंगुलों की एक वितस्ति होती है। दो वितस्तियों से (24 अंगुल) एक अरत्नि होगी और चार अरत्नियों से (96 अंगुल) एक व्यायाम होता है। (4)

विँशतिशताङ्गुलतः पुरुषः स्वैः स्वैरङ्गुलिपर्वभिः।
अथ चेत्प्रपदोत्थानः पञ्चविँशशतो भवेत् ॥ 5 ॥

अगर खुद के (यजमान के) उंगली के पेर से अंगुल का नाप लें तो 120 अंगुलों का एक पुरुष (नाप) होगा। अब पादांगुली पर खड़े रहें तो पुरुष का नाप 125 अंगुल होगा। (5)

त्रियवं कृष्णलँ विद्यात्तं मानँ विद्यात् त्रिकृष्णलम्।
अनेन कृष्णलप्रमाणेन निष्कमाहुश्चतुर्गुणम् ॥ 6 ॥

तीन यवों का एक कृष्णल होता है और तीन कृष्णलों का एक मान होता है। ऐसे चार कृष्णल प्रमाण से एक निष्क होता है। (6)

पुरुषस्य तृतीयपञ्चमौ भागौ तत्करणं पुनश्चितेः।
तस्यार्धमथापरं भवेत् त्रिचितिकमग्निचितिश्चेत् ॥ 7 ॥

अग्निचिति के लिये पुरुष (नाप) के $\frac{1}{3}$ और $\frac{1}{5}$ (40 और 24 अंगुल) लम्बी और चौड़ी ईंटें उपयोजित करें। यह अग्निचिति ईंटों के तीन तहों की होगी तो दूसरी तह में (पहली और तीसरी तह के ईंटों की व्यवस्था से) अलग होती है। (7)

अष्टावष्टौ संमिता चितिरष्टैकादशिका च मध्यमा।
व्यत्यासवतीरुपन्यसेदष्टौ द्वादश चोत्तमा चितिः ॥
अष्टौ द्वादश चोत्तमा चितिरिति ॥ 8 ॥

अग्निचिति के पहली तह में आठ (समंत्र) और आठ (मंत्र विरहित) ईंटें रखें। दूसरी तह में आठ और ग्यारह ईंटें रखें। प्रत्येक तह में ईंटें उलट सीधी रखें। चिति के उत्तम (याने तीसरी) तह में आठ और बारह ईंटें रखें। आठ और बारह ईंटें उत्तम तह में रखें। (8)

[शुल्बसूत्र के समाप्ति निदर्शक अंतिम शब्दों की पुनरुक्ती की है।]

इति शुल्बसूत्रं समाप्त्

शुल्बसूत्र समाप्त

10.2.1

अथात उत्तरेष्टकँ व्याख्यास्याम: ॥ 1 ॥

अब उत्तर (वेदि के) ईंटों के बारे में व्याख्यान देता हूँ। (1)

ऊर्ध्वबाहुना यजमानेन वेणुँ विमिमीते ॥ 2 ॥

हाथ ऊपर किये हुए (खड़े) यजमान के ऊँचाई जितना लम्बा बांस नाप लें। (2)

[इस बांस की लम्बाई 120 अंगुल मानते है, सूत्र 10.1.4.5।]

तत्समो ऽन्यतर: सारत्निर्द्वितीयस्तस्य पुरुषे लक्षणं अरत्निवित-स्त्योश्चोभयोरर्धपुरुषे ॥ 3 ॥

इस बांस जैसा दूसरे बांस एक अरत्नि के साथ (144 अंगुल लम्बा) लें। इसके (दूसरे बांस) ऊपर एक पुरुष, एक अरत्नि और एक वितस्ति (120, 144 और 132 अंगुलों पर) दूरी पर चिन्ह करें। दोनों बांस के ऊपर आधे पुरुष (60 अंगुल) दूरी पर चिन्ह करें। (3)

शिरसि परिश्रिते यूपायावशिष्य शेषमनुरज्जु पुरुषौ संधाय पञ्चाङ्ग्या शङ्कुँ विनिहन्ति तयो: संधावर्धयोश्च ॥ 4 ॥

चिति के शीर्ष के पास के यूप के लिये जगह छोड़कर उर्वरित जगह पर दो पुरुष लम्बी पंचांगि रस्सी का सिर (चिति के आत्मा के प्राची के पूर्व अंत पर) रखकर, वहाँ दूसरे सिर पर रस्सी के मध्य में और रस्सी के मध्य से हुए दो भागों के मध्यों पर ऐसे पांच स्थानों पर खुंटियाँ ठोकें। (4)

[दो पुरुष लम्बी पंचांगि रस्सी लें। इसके मध्य पर और मध्य बिन्दु से हुए दो भागों के मध्यों में ऐसे तीन चिन्ह होते हैं। दोनों सिरे मिलकर यह रस्सी को पंचांगि कहते हैं। यह रस्सी प्राची पर रखकर इन पांच स्थानों पर खुंटियाँ स्थापित करें।]

यावभितो मध्यमँ शङ्कुं तयोर्वेणू निधाय दक्षिणत: पुरुषसंनिपाते तोदं करोति ॥ 5 ॥

रस्सी के मध्य बिन्दु के दोनों ओर के दो चिन्हों पर (2 और 4) दोनों बांस के अग्र रखकर (इन दोनों बांस के) पुरुष दूरी के चिन्ह जहाँ एक दूसरे के ऊपर आते हैं, वहाँ चिन्ह (क) (तोदम्) लगायें। (5)

मध्यमे शङ्कौ वेणुं निधायाध्यधितोदँ हृत्वा दक्षिणतः पुरुषे शङ्कुं निहन्ति ॥ 6 ॥

बांस का एक अग्र मध्य चिन्ह पर (चिन्ह 3) रखकर (वह दक्षिण की तरफ) चिन्ह 'क' पर आयेगा ऐसा रखें। जहाँ इसका एक पुरुष दूरी का चिन्ह आयेगा वहाँ (ख) खुंटि ठोकें। (6)

पूर्वे शङ्कौ वेणुं निधाय द्वितीयं दक्षिणतः पुरस्तात्
पुरुषसंनिपाते शङ्कुं निहन्त्यर्धे चैवं पश्चात् ॥ 7 ॥

पूर्व की ओर के खुंटि पर (चिन्ह 1) बांस रखें। दूसरा बांस दक्षिण की ओर के चिन्ह पर (ख) रखें। इन दोनों बांस के एक पुरुष दूरी के चिन्ह जहाँ एक दूसरे पर आते हैं (ग) वहाँ खुंटि ठोकें। आधे पुरुष दूरी पर (घ) खुंटि ठोकें। यही रीति पश्चिम की तरफ उपयोग में लाइयें (और च और छ यहाँ खुंटियाँ ठोकें।) (7)

एतेनोत्तरार्धो व्याख्यातः ॥ 8 ॥

इसी से (आत्मा का) उत्तर के आधे भाग का विन्यास कहा गया। (8)

[दक्षिण के आधे भाग की तरह उत्तर के आधे भाग पर पांच खुंटियाँ ठोकें।]

दक्षिणस्य वर्गस्य यावभितो मध्यमँ शङ्कुँ तयोर्वेणू निधाय दक्षिणतः पुरुषसंनिपाते तोदं करोति ॥ 9 ॥

दक्षिण बाजू के मध्य खुंटि के (ख) दोनों ओर की खुंटियों पर (घ और छ) दोनों बांस के अग्र रखकर दक्षिण दिशा की तरफ जहाँ एक पुरुष दूरी के चिन्ह एक दूसरे पर आते हैं वहाँ (ज) चिन्ह लगायें। (9)

मध्यमे शङ्कौ वेणुं निधायाध्यधि तोदँ हृत्वा दक्षिणतः सारत्नौ शङ्कुं निहन्ति ॥ 10 ॥

मध्य खुंटि पर (ख) बांस का एक अग्र रखकर वह दक्षिण की तरफ (ज) चिन्ह पर आयेगा ऐसा रखें। जहाँ, एक अरत्नि के साथ एक पुरुष दूरी पर होने वाला चिन्ह आयेगा, वहाँ खुंटि ठोकें (झ) (10)

यः सारत्निस्तं मध्यमस्य पूर्वे निधाय द्वितीयं दक्षिणतः पुरस्तात्सारत्निमर्धपुरुषेण संनिपात्य शङ्कुं निहन्त्येवं पश्चात् ॥ 11 ॥

एक पुरुष और एक अरत्नि (144 अंगुल) लम्बे बांस का अग्र मध्य चिन्ह के (ख) पूर्व की ओर के चिन्ह के (घ) खुंटि पर रखें। दूसरे बांस का अग्र दक्षिण की ओर के चिन्ह पर (झ) रखें और इस बांस का आधे पुरुष का चिन्ह और पहले बांस का अरत्नि सह पुरुष दूरी पर होने वाला चिन्ह जहाँ एक दूसरे पर आयेंगे वहाँ खुंटि (त) ठोकें। इसी रीति से दक्षिण-पश्चिम सिरे पर खुंटि (थ) ठोकें। (11)

यह दक्षिण पंख के विन्यास की रीति है।

एतेनैवोत्तरपक्षो व्याख्यातः ॥ 12 ॥

इसी से उत्तर पंख (का विन्यास) कहा गया है। (12)

पुछँ। सवितस्तिररत्निस्थाने ॥ 13 ॥

पुँछ अरत्नि सह पुरुष नाप के जगह वितस्ति सह पुरुष नाप लें। (13)

पूर्वस्य पुरस्तादर्धपुरुषेण पञ्चाङ्ग्या शिरो विमिमीते ॥ 14 ॥

पूर्व की ओर (होने वाले खुंटि 1 के) आगे पंचांगि रस्सी से आधा पुरुष भुजा का वर्गाकार शीर्ष का विन्यास करें। (14)

10.2.2

व्यायामस्याष्टममेकतस्तुरीयमेकत उभयतस्तुरीयं च ते गार्हपत्यचितेः करणे ॥ 1 ॥

गार्हपत्य चिति के लिये दो प्रकार की ईंटें (सांचें) होती हैं। पहले ईंट की एक भुजा व्यायाम के $\frac{1}{8}$ और दूसरी ¼ (12x24 अंगुल) होती है। दूसरी ईंट की दोनों भुजाएँ व्यायाम के ¼ (24x24 अंगुल) लम्बाई की होती है। (1)

चतुरस्त्र श्येन चिति
(सूत्र 10.2.1.1–14)

पुरुषस्य दशमेन भागेन प्रथमं चतुरस्त्रं करणं कारयेद् दशममेकतो ऽर्धमेकतस्तद्द्वितीयं दशममेकतोऽध्यर्धमेकतस्तत् तृतीयमुभयतस्तुरीयं तच्चतुर्थम् ॥ 2 ॥

पहली ईंट (प्रथमी) पुरुष के दसवें भाग की (12 x 12 अंगुल) वर्गाकार करें। दूसरी ईंट (द्वितीया) एक भुजा पुरुष के दसवें भाग की और दूसरी भुजा पहले बाजु के आधे लम्बाई की करें (12 x 6 अंगुल)। तीसरी ईंट (तृतीया) एक भुजा पुरुष के दसवें भाग की और दूसरी भुजा पहली भुजा के डेढ़ गुनी लम्बाई की लें (12 x 18 अंगुल)। चौथे प्रकार की ईंट पुरुष के ¼ भाग की (30 x 30 अंगुल) वर्गाकार बनाईयें। (2)

तासामुत्सेधास्त्रिँशत्पञ्चमभागेनान्यत्र नाकसद्भ्यश्च चूडाभ्य ऋतव्याभ्योऽथ मध्यमायां पञ्चषष्ठीभ्यश्च वैश्वदेवीभ्यस्ता अर्धोत्सेधाः ॥ 3 ॥

मध्य तह में रखी जाने वाली नाकसद, पंचचूड और ऋतव्या ईंटों के सिवाय और पांचवी और छठीं तह में इस्तेमाल की जाने वाली वैश्वदेवी ईंटों के सिवाय और इन (सब) ईंटों की ऊँचाई 30 अंगुलों के पांचवे भाग की (छः अंगुल) लें। वे (नाकसद से वैश्वदेवी तक) ईंटें इनके आधे ऊँचाई की होती हैं (तीन अंगुल)।

पुरीषमन्तर्धायोत्तरामुपदध्याद् गणसँसर्गायाविछेदाय ॥ 4 ॥

गिली मिट्टी (की तह) रखकर इसके ऊपर ईंटें रखें इसी से ईंटें एक दूसरे को जुड़ी हुई रहेगी और अलग न होगी। (4)

गर्तेषूपदध्याद्यदन्यदिष्टकाभ्यः ॥ 5 ॥

ईंटों से अन्य पदार्थों को विवर में रखें। (5)

तत्र श्लोको भवति -इसके विषय में श्लोक है।

उखायाः पशुशीर्षाणां कूर्मस्योलूखलस्य च।
स्रुचोः कुम्भेष्टकानां च चरोश्चैवावटान्खनेत् ॥ 6 ॥

उखा, पशुओं के शीर्ष, कछुआ, उलूखल, दो स्रुचाएँ, कुम्भेष्टका और दो चरू इन्हें रखने के लिये गड्ढ़ें खोदें। (6)

प्रतिदिशमुपदध्यादात्मनि मध्ये प्राचीः शिरसि पुछे पक्षयोश्चा-त्मान्यप्ययेशु समँ विभज्योत्तरामुत्तरामप्ययसँहितां पूर्वापरदक्षिणोत्तरा विषयवचनादन्यच्चतस्रः पुरस्तात्पञ्चर्तव्याभ्यः पश्चाच्चोत्तरपूर्वे चार्धे गार्हपत्यस्य। शेषं चतुरस्राभिः ॥ 7 ॥

ईंटें प्रत्येक दिशा की तरफ रखें। वे आत्मा के मध्य में, प्राची पर, शीर्ष और पूँछ पर, पंख और आत्मा के जोड़ पर, पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर की तरफ उनकी-उनकी जगह पर रखें। इनका योग्य रीति से विभाजन करें (याने ईंटों की व्यवस्था सम अक्ष होनी चाहिये।) जोड़ के पास वे एक दूसरे के संपर्क में रखें। चार ईंटें ऋतव्या ईंटों के पूर्व की

तरफ और पांच ईंटें इनके पश्चिम की तरफ होती हैं। वे और गार्हपत्य अग्नि के उत्तर-पूर्व दिशा की ओर के ईंटों को यह नियम प्रयोज्य नहीं है। उर्वरित तह वर्ग (बड़े) ईंटों से चिनें। (7)

चतुरस्र श्येन चिति पहली तह
(सूत्र 10.2.2.7-8)

ईंटें	-	30X30	12X12	12X6
आत्मा	-	60	25	-
शीर्ष	-	2	10	5
पंख	-	32	40	-
पूँछ	-	16	10	-
		110	85	5=200

चतुरस्र श्येन चिति
दूसरी तह
(सूत्र 10.2.2.7-8)
(फॉन खेल्डर, 1963 से)

ईंटें	-	30X30	12X18	12X12	12X6
आत्मा	-	60	5	30	10
शीर्ष	-	2	-	5	-
पंख	-	32	-	20	-
पूँछ	-	16	-	20	-
		110	5	75	10=200
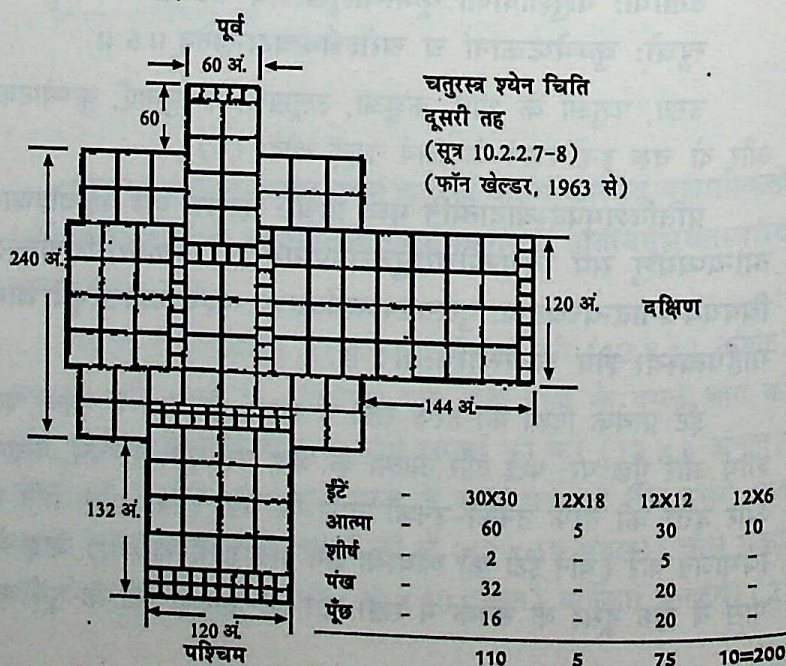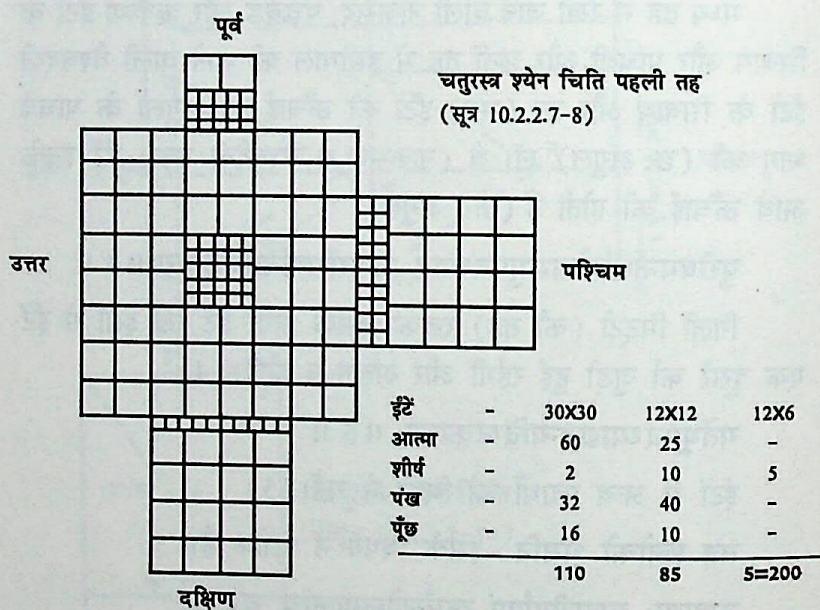
एता एव दक्षिणोत्तरा द्वितीयस्याँ। शेषं चतुरस्राभिः ॥ 8 ॥

दूसरी तह में ये ईंटें दक्षिणोत्तर रखें। शेष तह वर्ग ईंटों से चिनें। (8)

यथा प्रथमैवं तृतीया पञ्चमी च यथा द्वितीयैवं चतुर्थ्ये तेन धर्मेण व्यत्यासं चिनुयात् ॥ 9 ॥

तीसरी और पांचवी तह में ईंटों की व्यवस्था पहली तह में दी जैसी होती है और चौथी तह की ईंटों की रचना दूसरी तह के जैसी होती है। इस नियम से ईंटें उलट सीधी रखें। (9)

अथेतरानाग्नीध्रीयादीन्नवनव पदानि करोत्येकैकं मध्ये ऽश्मानमाग्नीध्रीये चत्वारि चत्वारि तुरीयाणि प्रतिदिशँ होत्रीये चतस्रोऽर्धाः कुष्ठासु ब्राह्मणाछँस्य इतरेषां द्वे द्वे अध्यर्धे मध्ये प्राचीः षडेव मार्जालीये पशुश्रपणे च ॥ 10 ॥

अब आग्नीध्र और इतर (धिष्ण्या) नौं नौं वर्ग पदों से चिनें। (3 पद x 3 पद = 36 x 36 अंगुल, सूत्र 10.2.5.5)। अग्निध्रीय के मध्य में एक पद वर्ग की जगह पर इस आकार का पत्थर रखें। होतु के (धिष्ण्या के) चारों सिरों पर $\frac{1}{4}$ वर्ग पद आकार की चार-चार ईंटें रखें। (4x4+5 = 21 ईंटें होतु के धिष्ण्या में होती हैं) ब्राह्मणछंसि के (धिष्ण्या के) हर एक सिर पर एक ऐसी चार अर्ध्या ईंटें रखें। (4+7 = 11 ईंटें।) इतर (धिष्ण्याओं के) लिये पूर्व की तरफ मध्य में दो अध्यर्धा ईंटें रखें (2+6 = 8 ईंटें)। मार्जालिय (धिष्ण्या के) लिये छः ईंटें और उतनी ही ईंटें पशुश्रपण के (धिष्ण्या के) लिये इस्तेमाल करें। (10)
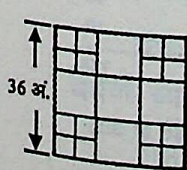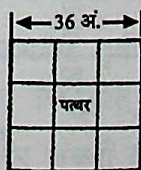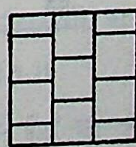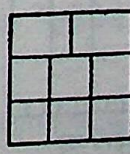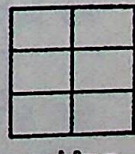
धिष्ण्याएं

विँशतिमध्यर्धाः प्राचीरँसयोः दद्याच्छ्रोण्योः पुछे च विँशतिं द्वादश द्वादश पुरस्तात् पक्षयोः प्राचीः पश्चाच्च पञ्च पञ्च चोदीचीरभितः शिरसि। शेषं चतुरस्त्राभिः ॥ 11 ॥

पहली तह में 20 अध्यर्धा (12 x 18 अंगुल) ईंटें पूर्वाभिमुख दोनों अंसों पर रखें। श्रोणी और पूँछ के पास 20 अध्यर्धा ईंटें रखें। पंखों में पूर्व और पश्चिम की तरफ बारह-बारह (अध्यर्धा) ईंटें रखें। शीर्ष में दोनों ओर पांच-पांच (अध्यर्धा) ईंटें उत्तराभिमुख रखें। शेष अग्नि वर्ग (30 x 30 अंगुल) ईंटों से चिनें। (11)
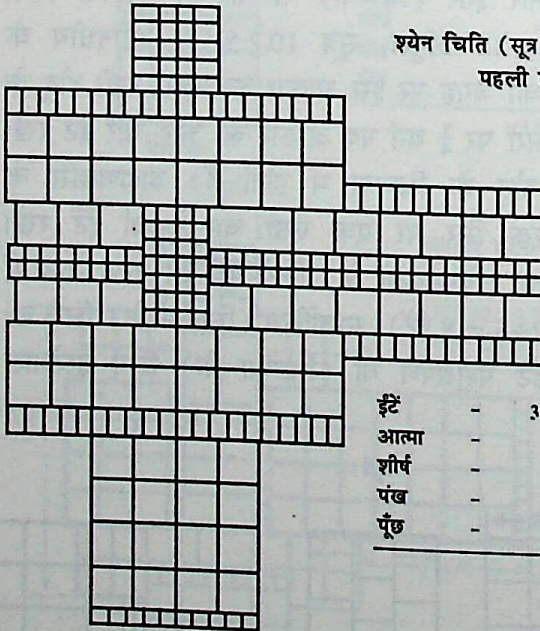
श्येन चिति (सूत्र 10.2.2.11), पहली तह

ईंटें	-	30X30	18X12	12X12
आत्मा	-	44	40	60
शीर्ष	-	-	10	10
पंख	-	20	48	48
पूँछ	-	16	-	10
		80	98	128

कुल ईंटें = 306

पहली तह
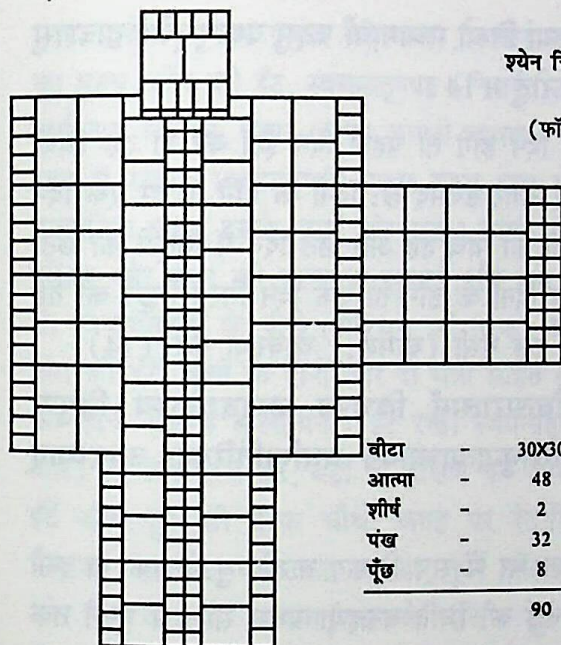
श्येन चिति (सूत्र 10.2.2.12),
दूसरी तह
(फॉन खेल्डर, 1963 से)

वीटा	-	30X30	18X12	12X12	12X6
आत्मा	-	48	40	40	-
शीर्ष	-	2	10	-	5
पंख	-	32	-	40	-
पूँछ	-	8	22	22	-
		90	72	102	5

कुल ईंटें = 269

विंशतिँ श्रोण्यँसपक्षेषूदीचीर्दक्षिणतस्तथोत्तरतो द्वितीयस्यामेकादशैकादशाभितः पुछे पञ्च पञ्च प्राचीरभितः शिरसि। शेषं चतुरस्त्राभिः ॥ 12 ॥

दूसरी तह में 20 अध्यर्धा ईंटें उत्तर और दक्षिण श्रोणी और अंस पर रखें। (दक्षिण के) पंख के दक्षिण की ओर और (उत्तर के) पंख के उत्तर की ओर बीस-बीस अध्यर्धा ईंटें रखें। पूँछ में दोनों ओर ग्यारह-ग्यारह और शीर्ष में पूर्वाभिमुख और दोनों ओर पांच-पांच अध्यर्धा ईंटें रखें। उर्वरित क्षेत्र में वर्ग ईंटें रखें। (12)

यथा प्रथममैवं तृतीया पञ्चमी च यथा द्वितीयैवं चतुर्थ्यें तेन धर्मेण व्यत्यासं चिनुयात् ॥ 13 ॥

तीसरी और पांचवीं तह में ईंटों की व्यवस्था पहली तह में दी जैसी होती है, और चौथी तह की ईंटों की रचना दूसरी तह के जैसी होती है। इस नियम से ईंटों की उलट सीधी व्यवस्था करें। (13)

त्रिरुपसत्सु द्वे पूर्वस्यां तिस्रो मध्यमायाँ षट्सु यथानुपूर्वेण द्वादशसु व्यत्यासं चितिपुरीषे करोतु ॥ 14 ॥

अगर तीन उपसद दिन होंगे तो पहले दिन ईंटों की दो तह चिनें। दूसरे दिन तीन तह चिनें। अगर उपसद छः दिनों के होंगे तो हर एक दिन एक तह रखें। (पांच दिनों को पांच तह और छठे दिन में मिट्टी की छठी तह।) अगर उपसद बारह दिनों के होंगे तो एक दिन गिली मिट्टी की तह और दूसरे दिन ईंटों की तह ऐसी (क्रमशः) व्यवस्था करें। (14)

एतेन धर्मेण सँवत्सरात्समँ विभज्य जानुदध्नेऽस्य द्विगुणं त्रिगुणमुत्तरेषां चैकामुत्तरामुद्धत्याभ्यायनँ वर्धायातिरिक्ता उपदध्यात् ॥ 15 ॥

इस नियम से साल भर में सम विभाग करके घुटने तक या इसी से दुगुनी या तिगुनी ऊँचाई की चिति बनाइयें। प्रथम साल में घुटने तक चिति चिनें, बाद के साल में उसके दुगुनी और तीसरे साल में तिगुनी ऊँचाई की चिति चिनें। (15)

मन्त्राद्यभिमर्शनान्तं तत्पुरुषस्य लक्षणम् ॥ 16 ॥

ईंटों को रखते समय और चिनने के बाद अन्त में मन्त्र रटें। यह पुरुष का लक्षण है। (16)

10.2.3

दर्भस्तबं पुष्करपर्णँ रुक्मपुरुषौ हिरण्येष्टकाँ शर्कराँ स्वयमातृण्णां दूर्वेष्टका नैवारमिति मध्यं [आपञ्चमाश्रं स्वयमातृण्णाया अभितस्तां मध्यं]। तस्मिन् कुम्भेष्टका या मध्ये दक्षिणोत्तरे च स्रुचावनूपमध्येषु शेषाः पश्चात् स्वयमातृण्णायाः कुलायिनीं द्वियजुश्च वँशयोः पार्श्वसँहिते द्वियजुरुत्तरे पुरस्ताद्रेतःसिचौ द्वे दक्षिणे तस्मिन्वँशे द्वितीयामृतव्यां च पुरस्ताच्चतुर्थे लोके रेतःसिचँ विश्वज्योतिषं मण्डलामृतव्यां घर्मेष्टकमषाढां कूर्मँ वृषभमिति प्राञ्चमुत्तरे वँशे दक्षिणतः पुरस्तात् स्वयमातृण्णायाः प्राञ्चमुलूखलमुसलमुत्तरपूर्व्ये चोखां मध्ये शिरसाँ शिरोभिः सँहितामुपदधाति ॥ 1 ॥

दर्भस्तंब (एक प्रकार की घास), कमल पत्र, सोने की थाली, सोने का पुरुष, सोने की ईंट, स्वयमातृण्णा (निसर्गतः छिद्र होने वाला) पत्थर, दूर्वा नाम की ईंट, नैवार (पका जंगली चावल) यह सब आत्मा के मध्य भाग में रखें। (स्वयमातृण्णा पत्थर मध्य भाग में और पानी और ऊपर उल्लेखित पदार्थ इसके चारों ओर रखें।) इसके मध्य भाग में कुम्भेष्टका, दक्षिण और उत्तर की तरफ दो स्रुचाएँ और शेष पदार्थ इनके बीच रखते हैं। स्वयमातृण्णा के पीछे (पश्चिम की तरफ) दो मंत्रों सहित कुलायिनी नाम की ईंटें, वंशों के दोनों ओर दो मंत्रों सहित (स्वयमातृण्णा के) उत्तर की तरफ (अन्य कुलायिनी) ईंटें रखें। स्वयमातृण्णा के आगे (पूर्व की ओर) दो रेतः सिच ईंटें, वहाँ के दक्षिण की ओर के वंश में दो ऋतव्या ईंटें और पूर्व की तरफ चौथी जगह पर रेतःसिच ईंट, विश्वज्योतिष, मण्डला, ऋतव्या, घर्मेष्टका, अषाढा, कूर्म और वृषभ ईंटें रखें। उत्तर की ओर के वंश मे स्वयमातृण्णा के दक्षिण-पूर्व की तरफ पूर्वाभिमुख उलूखल, उत्तर-पूर्व की तरफ उखा, शीर्ष के मध्य भाग में और इनके संपर्क में रखते हैं। (1)

[आत्मा के चारों ओर 12 अंगुलों पर समान्तर रेखाएँ खीचें। रेखाओं के बीच के जगह को वंश कहते हैं।]

तस्याः पश्चात् पुरुषशिरसः पुरुषचितिमुपदधाति षट्त्रिँशतं प्रतीचीस्त्रिवर्गेण श्रोण्याम् ॥ 2 ॥

इसके (उखाके) पीछे (पश्चिम की तरफ) पुरुष शीर्ष से पुरुष की तह, पश्चिम की ओर 36 ईंटें, तीन-तीन के गुट मे, श्रोणी पर रखें। (2)

तत्र श्लोको भवति – इसके विषय मे श्लोक है।

तिस्त्रो ग्रीवाः षडँसयोर्द्वेद्वे बाह्वोर्नवात्मनि।
जङ्घयोरु पञ्च पश्चादेकैकं पाणिपादयोः॥ इति ॥ 3 ॥

ग्रीवा के ऊपर तीन ईंटें, छः ईंटें अंसो पर (कंधों पर), दो ईंटें हर एक हाथ पर, आत्मा में नौं ईंटें, पांच-पांच ईंटें जांघ और टांग के ऊपर और एक-एक ईंट हाथ के पंजे और पाँवों के लिये। (3)

अष्टावथापस्याः समँ विभज्य वँशेषु नवमे नवमे प्राणभृतः पुरस्तादुत्तरे वँशे प्रथमं पश्चाद् दक्षिणे दक्षिणतः पूर्व उत्तरतः पश्चाद् दक्षिणतः स्वयमातृण्णाया द्वितीये पञ्चममनूपेषु सँयतो नवमेऽतिमात्रा यथा प्राणभृतः पुरस्ताद् दक्षिणे वँशे प्रथमं पश्चादुत्तरे दक्षिणतः पश्चादुत्तरतः पूर्व उत्तरतः स्वयमातृण्णाया द्वितीये पञ्चमँ। वैश्वदेव्यश्चानूपेषु प्रतिदिशमुत्तरपूर्वेषु वँशेष्वाद्या। दक्षिणोत्तरे च सँयान्यावप्यये तयोर्वँशयोराद्यात्पुरस्ताद्वाथर्वशिरः ॥ 4 ॥

अब आठ अपस्या ईंटें (हर एक सिरे में) सम संख्या में विभाजन करके, नौवें वंश पर प्राणभृत ईंट, उत्तर-पूर्व की तरफ वंशों में पहली (दस ईंटें) दक्षिण-पश्चिम की तरफ (दूसरी दस), दक्षिण-पूर्व की तरफ (तीसरी दस), उत्तर-पश्चिम की तरफ (चौथी दस), दूसरे वंश में स्वयमातृण्णा के दक्षिण की तरफ पंचवीं (दस ईंटें) नौवें वंश में अतिमात्रा ईंटें, प्राणभृत ईंटें जैसी, पूर्व-दक्षिण वंश मे पहली (दस), पश्चिम-उत्तर में (दूसरी दस), दक्षिण-पश्चिम में (तीसरी दस), पूर्व-उत्तर में (चौथी दस), दूसरे वंश में स्वयमातृण्णा के उत्तर की ओर पांचवीं (दस) ईंटें रखें। वैश्वदेवी ईंटें हर एक दिशा की तरफ इनके पास रखें। उत्तर-पूर्व के वंश से वे रखने का आरंभ करें। दक्षिण और उत्तर के वंशों में एक-एक संयानि ईंट रखें। इन दोनों वंशों के जोड़ के आरंभ में पश्चिम की तरफ आथर्वशिर ईंट रखें। (4)

समँ विभज्य वँशेषु शिरः पक्षपुछानि प्रथमेषु वँशेषु लोकान्विजानीयात् ॥ 5 ॥

शीर्ष, पंख और पूँछ वंशों से सम भागों में विभागें। लोकेष्टका ईंटों के लिये पहला वंश होता है ऐसा जानें। (5)

शिरसि प्रथमे वँश उत्तरामुत्तरामितरेषां पक्षपुछानां चतुर्थे पक्षयोः प्राचीः पुछे चोदीचीर्लोकेष्टका उपदध्याच्छेषाः पश्चात्स्वयमातृण्णाया एकैकां पूर्वां सँहितां। दक्षिणे वँशे वैश्वदेव्याद्य उत्तरे च पुरीषाद्यः ॥ 6 ॥

लोकेष्टका पहले वंश के शीर्ष पर, बाद में हर एक ईंट उत्तर की

तरफ अधिक आयेगी ऐसी रखें। पंखों में और पूँछ में चौथे वंश में, पंखों में पूर्व की ओर, और पूँछ में उत्तर की ओर रखें। शेष लोकेष्टका स्वयमातृण्णा के पश्चिम की ओर, और एक दूसरे के पूर्व की तरफ, संपर्क में रखें। दक्षिण के ओर के वंशों में वैश्वदेव्या और इतर (ईंटें) और उत्तर की ओर के वंशों में गिली मिट्टी इत्यादि रखें। (6)

गायत्रं मध्ये शिरसि रथंतरं बृहद्यज्ञायज्ञियमिति यथाम्नातम् ॥ 7 ॥

शीर्ष के मध्य भाग में गायत्र ईंटें रखें। रथंतर, बृहद्, यज्ञायज्ञिय ईंटें जैसी कहीं हैं (परम्परा से) वैसी पंखों मे और पूँछ मे रखें। (7)

10.2.4

द्वितीयायां पुरस्तात्स्वयमातृण्णायाः प्रथमद्वितीयतृतीयेषु ऋतव्या वायव्या अपस्या इति यथासंख्यं। तिस्रस्तिस्रो दक्षिणेषु वँशेषु दक्षिणोत्तरा द्वे द्वे उत्तरस्योत्तरयोर्नवमेऽभितः शेषा यथापस्याः ॥1॥

दूसरी तह में स्वयमातृण्णा के पूर्व की तरफ पहले, दूसरे और तीसरे वंशों में ऋतव्या, वायव्या और अपस्या ईंटें, इनके संख्या के अनुसार (हर एक पांच) सब रखें। तीन-तीन ईंटें दक्षिण के तीन वंशों में, दक्षिण से उत्तर की तरफ दो-दो ईंटें उत्तर के तीन वंशों में और नौवें वंश में दोनों ओर रखें (कुल 19 ईंटें)। उर्वरित ईंटें (शायद पांच अश्विनी ईंटें होगी) अपस्या ईंटें जैसी रखें। (9)

तृतीयायां दश द्वादश नवमेऽभितो। अष्टमे सप्त पुरस्तात् पश्चाच्च समीचीरभितः स्वयमातृण्णाया अर्धोत्सेधा अष्टौ नानामन्त्रा उत्तमायाँ वा ॥ 2 ॥

तीसरी तह में दस (प्राणभृत) और (तीन बार) बारह (बृहती ईंटें) नौवें वंश के दोनों ओर रखें। आठवे वंश में सात (आदित्य स्थान) पूर्व की तरफ और सात (अंगिरस स्थान) पश्चिम की तरफ एक कतार में होती हैं। स्वयमातृण्णा के दोनों ओर आधे ऊँचाई की आठ ईंटें अलग-अलग मंत्रों के साथ रखें, या (ये आठ ईंटें) सबसे ऊपर की तह में रखें। (2)

चतुर्थ्यामेकैकां नवमे नवमेऽभितः पुरस्तादुत्तरस्य वँशस्य मध्ये प्रथमां व्यत्यासमितरा। एवमेवस्पृतः पुरस्ताद् दक्षिणस्य वँशस्य मध्ये प्रथमाँ व्यत्यासमितराः। षट् सप्ताष्टमेषु दक्षिणतो युग्मायुग्मा उत्तरतस्त्रिवर्गान् कुर्यात् सप्तदश दक्षिणतः पञ्चदशोत्तरतः ॥ 3 ॥

चौथी तह में नौवें-नौवें वंशों के दोनों ओर एक-एक ईंट रखें। पहली ईंट उत्तर की ओर के (नौवें) वंश के मध्य भाग में पूर्व की तरफ और अन्य ईंटें (अक्ष्णयास्तोमीया ईंटें कुल बीस) व्योम रीति से रखें। इसी पद्धति से दस स्पृत ईंटें रखें। पहली ईंट दक्षिण की ओर के वंश के मध्य भाग में पूर्व की ओर रखें और अन्य ईंटें व्योम रीति से रखें। छठें, सातवें और आठवें वंशों में दक्षिण की तरफ दो ईंटों की जोडी, उत्तर की तरफ तीन ईंटों का गुट, दक्षिण में 17 ईंटें और उत्तर में 15 ईंटें रखें। (3)

पञ्चम्यामेकैकां प्राणभृदाधिषु शेषं छन्दसाँ विराजश्च यथातिमात्राः षट्सप्ताष्टमेष्वभितो यथासंख्यम् ॥ 4 ॥

पांचवीं तह में प्राणभृत इत्यादि एक-एक ईंट रखें। उर्वरित छन्दस् और विराज (ईंटें) अतिमात्रा (संयानि ईंटें) जैसी उनके संख्या के अनुसार छठें, सातवें और आठवें वंशों के दोनों ओर रखें। (4)

अर्धेष्टकाभिः पूरयित्वा दक्षिणतः प्राचीः स्तोमभागाः पश्चिमाश्च युग्मा उत्तरतस्त्रिवर्गान्कुर्यादेकत्रिँशतं। पश्चात् प्रत्यञ्चं त्रिवर्गेण नाकसदं च पश्चात् पुरीषवत्या यवादिना सनाम्नीरुपशीवरीर्घुतप्लुता इति यथासंख्यम्। तुरीयाणि मध्ये यथा प्राणभृतोऽतिमात्रा मध्यमाँ स्वयमातृण्णासँहितामुत्तरतस्तु विकर्णीम् ॥ 5 ॥

अर्ध्या ईंटों से (उर्वरित क्षेत्र) भर देने के बाद 31 स्तोमभागा ईंटें दक्षिण, पूर्व और पश्चिम की तरफ दो के जोड़ी में और उत्तर की तरफ तीन के गुट में रखें। पश्चिम की तरफ पश्चिमाभिमुख नाकसद ईंटें तीन के गुट में रखें, और पश्चिम की ईंटें गिली मिट्टी के साथ रखें। ईंटें रखते समय 'यवादि ......' से आरंभ होने वाला मन्त्र रटते हैं वह रुपशी ईंटें इनके नाम के साथ (होने वाले मन्त्रों से) घी में भिगोकर, इनकी संख्या

इतनी (15 ईंटें) रखें। मध्य के एक चौथाई भाग में प्राणभृत ईंटें जैसी अतिमात्रा ईंटें मध्य के स्वयमातृण्णा (ईंट) के साथ रखें। विकर्णी ईंटें स्वयमातृण्णा के उत्तर की तरफ रखते हैं। (5)

इति सुपर्णस्य ॥ 6 ॥

सुपर्ण की जानकारी समाप्त हुई। (6)

10.2.5

यावती शोषपाकाभ्यामिष्टका ह्रसते कृता।
तावत्समधिकं कार्यं करणँ सममिछता ॥ 1 ॥

शुद्ध नापों के ईंटों की इच्छा रखने वाले (यजमान ने), सुखाने से और पकाने से ईंटें (नापों में) जितनी छोटी होती हैं इतने अधिक नापों का सांचा तैयार करना चहिये। (1)

सदा च त्रिँशकं भागमिष्टका ह्रसते कृता।
तावत्समधिकं कार्यं करणँ सममिछता ॥ 2 ॥

ईंटें लगभग (इनके नापों के) $\frac{1}{30}$ भाग से सदैव छोटी होती हैं, इसीलिये जिसे शुद्ध नापों की ईंटें चहिये उसने सांचे का नाप इस भाग से ($\frac{1}{30}$ भाग से) ज्यादा लेना चहिये। (2)

एकैकं शतमध्यर्धं तदूतँ षड्भिरङ्गुलैः ।
इष्टकानां परिमाणँ वैकृतँ यदतोऽन्यथा ॥ 3 ॥

डेढ़ सौ अंगुलों में छः अंगुलों का योग होता है। ईंटों का नाप अगर इसी से भिन्न हो तो वह नाप विकृत (अशुद्ध) मानते हैं। (3)

[150 वर्ग अंगुलों की ईंट पकाने के बाद 12X12 = 144 अंगुलों की होती है।]

नवाङ्गुलसहस्त्राणि द्वे शते षोडशोत्तरे।
अङ्गुलानां परिमाणँ व्यायामस्य तु निर्दिशेत् ॥ 4 ॥

गार्हपत्य अग्नि 9216 (96 x 96 अंगुल) वर्ग अंगुलों का होता है। अंगुल और व्यायाम की नापें निश्चित करनी होती हैं। (4)

इतरेषां तु धिष्ण्यानाँ सर्वेषामेव निश्चयः ।
एकैकस्य सहस्त्रँ स्याच्छते षण्णवतिः परा ॥ 5 ॥

अन्य सब धिष्ण्याओं के विषय में यही नियम प्रयोज्य है। हर एक धिष्ण्या का क्षेत्रफल 1296 (36 x 36 अंगुल) वर्ग अंगुल है। (5)

[सूत्र 10.2.5.1-3 देखें।]

एकादश सहस्त्राणि अङ्गुलानाँ शतानि षट्।
शतं चैव सहस्त्राणां क्षेत्रमग्नेर्विधीयते ॥ 6 ॥

अग्निचिति का क्षेत्रफल 111600 वर्ग अंगुल (7¾ वर्ग पुरुष) है। (6)

प्राकृतँ वैकृतँ वापि क्षेत्रमर्धाष्टमान्तरे।
पञ्चविँशँ शिरः कृत्वा ततः क्षेत्रे समावपेत् ॥ 7 ॥

प्राकृत या विकृत अग्निचिति का क्षेत्रफल 7 ½ वर्ग पुरुष है। इसमे इस क्षेत्रफल के $\frac{1}{25}$ ($\frac{1}{30}$?) क्षेत्रफल का शीर्ष लेकर उनका योग करें। (7)

[7½ वर्गपुरुष = 10,8000 वर्ग अंगुल। 111600–108000 = 3600 वर्ग अंगुल = शीर्ष का क्षेत्रफल। $\frac{108000}{30}$ = 3600 वर्ग अंगुल। शीर्ष 60 x 60 अंगुल है, सूत्र 10.2.1.14]।

शतान्यष्टौ पदोनानि पदानामिह कीर्त्यन्ते।
साङ्गस्य सशिरस्कस्य क्षेत्रं क्षेत्रविदो विदुः ॥ 8 ॥

शरीर और शीर्ष के साथ अग्निचिति का क्षेत्रफल आठ सौ में एक वर्ग पद कम (799 वर्ग पद) होता है, क्षेत्रफल का ज्ञानी यह जानता है। (80)

आत्मा चतुःशतः कार्यः पक्षौ त्रिँशच्छतौ स्मृतौ।
दशपुछे शतं चैव शिरः स्यात् पञ्चविँशकम् ॥ 9 ॥

आत्मा 400 वर्ग पदों का करें, हर एक पंख 130 वर्ग पदों का कहा गया है। पूँछ 110 वर्ग पदों की और शीर्ष इस क्षेत्रफल के $\frac{1}{25}$ ($30\frac{4}{5}$ वर्ग पद) है। (9)

एकत्रिँशस्त्रयस्त्रिँशैर्वर्गैः पञ्चाशकैरपि।
असंभवत्सु वर्गेषु द्विधा भिद्येत इष्टका ॥ 10 ॥

31 (वर्ग अर्धपुरुषों के) 33 और 50 के गुट होते हैं। अगर वे न हो सके तो ईंटों के दो टुकडे करें। (10) (?)

इष्टका-ह्रासवृद्धिभ्यां दृढासु शतकेषु च।
मतिमानिष्टका भागैर्मन्त्रात् संनाशयेदिति ॥ 11 ॥

पक्की ईंटों के नाप कम या ज्यादा हो तो सौ ईंटों के बाद एक ईंट मन्त्र रटकर बुद्धिमान मनुष्य ने नष्ट करनी चहिये। (11)?

चतुरस्त्रे पृष्टौ वापि पक्षपुछशिरेष्टकाः।
दिक्तोऽपधानँ लोकाच्च तथा लोकस्तु लुप्यते ॥ 12 ॥

पंख, पूँछ और शीर्ष की ईंटें वर्गाकार होती हैं। (अग्निचिति की) रिक्त दिशायें ईंटों से भर देते हैं और वहाँ की रिक्त जगह नष्ट करते हैं। (12) (?)

अध्यात्मनि ह विज्ञेयमुपधानँ विजानता।
रथंतरबृहल्लोकैरन्यं गायत्रयाज्ञियैः ॥ 13 ॥

रथंतर, बृहत्, लोकेष्टका, इतर, गायत्र, यज्ञायज्ञिय ईंटों के स्थानों के सिवाय आत्मा में (अन्यत्र) ईंटों की व्यवस्था कैसी करने की यह बुद्धिमान मनुष्य को ज्ञात होना चहिये। (13)

यजुष्मतीनाँ संख्या तु सर्वासां चैव निश्चिता।
एकैकस्यां चितौ वापि तां मे निगदतः शृणु ॥ 14 ॥

मन्त्रों के साथ रखने की सब (यजुष्मति) ईंटों की संख्या निश्चित की हुई है। चिति की हर तह में उनकी कितनी संख्या होती है वह मै कहता हूँ, सुन लें। (14)

षडशीतिः शतं त्वाद्याः द्वितीया दश सप्ततिः ।
त्रयोदश तृतीया स्याच्छतं चाहुर्मनीषिणः ॥
चतुर्थी शतमेका स्यात् त्रिस्त्रश्चैवेष्टकाः स्मृताः ।
शतानि त्रीणि पञ्चाशत् षट्चैव चितिरुत्तमा ॥ 15 ॥

पहली तह में 186, दूसरी तह में 80, तीसरी तह में 113, समन्त्र ईंटें होती हैं ऐसे बुद्धिमान मनुष्य कहते हैं। चौथी तह में 101 और तीन ईंटें और सबके ऊपर की (पांचवीं) तह में 356 ईंटें रखने को कहा है। (15)

एताः सर्वा यजुष्मत्यो याभिरग्निः प्रसूयते ।
शेषँ लोकंपृणाभिस्तु चितिनामभिपूरयेत् ।। 16 ।।

यह सब ईंटें यजुष्मति (समन्त्र) हैं जिनसे अग्निचिति का निर्माण होता है। चिति का उर्वरित भाग लोकंपृणा ईंटों से भर देते हैं। (16)

एताः सर्वा समाम्नाताः यजुर्यावत् प्रवर्तते।
तदेतद्धि सहस्त्रँ स्याच्छर्कराभिः सहोच्यते ।। 17 ।।

यह सब समन्त्र ईंटें, जिनसे यज्ञ प्रवर्तित होता है, परंपरा के अनुसार कहीं हैं। बजरी के साथ उनकी संख्या एक हजार होती है ऐसा कहते हैं। (17)

एता उपहिताः सम्यग् धेनवस्तु प्रजायन्ते।
अमुष्मिन् यजमानाय कामान्दुह्यति सर्वशः ।। 18 ।।

ठीक तरह से रखी हुई यह ईंटें (जैसे की) गौओं को जन्म देती हैं और वे यजमान की सब कामनायें पूरी करती हैं। (18)

षष्टिं प्रजापतिं वेद यो हि सँवत्सरः स्मृतः ।
गछति ब्रह्मणो लोकं नाकं ब्रध्नस्य विष्टपम् ।। 19 ।।

प्रजापति जो संवत्सर है वह साठ हैं। इसको जो जानता है वह ब्रह्म-लोक को, स्वर्ग को, सूर्य लोक तक जाता है। (19)

इत्युत्तरेष्टकँ समाप्तम्।

उत्तरेष्टक समाप्त हुआ।

10.3.1

वैष्णवे या प्रमेयाय शुल्बविद्भिश्च सर्वशः।
संख्यातृभ्यः प्रवक्तृभ्यो नमो भरन्तो ये मसे।
इदं भूम्या भजामहे या नो मानकृतामिव।
यज्ञियं मानमुत्तमँ वर्धमानँ स्वे दमे ॥ 1 ॥

संख्या (शास्त्र) जानने वाले, शुल्ब का सम्पूर्ण ज्ञानी, उत्कृष्ट वक्ता उन सबको (हमारा) नमन। इस भूमि के, जो अपनी है, इसके टुकडे करने के लिये, नाप लेतें हैं। जहाँ विष्णुयाग करने के लिये नापें ली जाती हैं वो सर्वोत्तम होती हैं और उन नापें लेने वालों की समृद्धि होती है। (1)

स्पष्टा भूमिर्ऋजुः शङ्कुर्मौञ्जँ शुल्बमबन्धुरम्।
चित्रादौ नाकृतिः कार्या तिथ्यृक्षँ वरूणशुभम् ॥ 2 ॥

जमीन समतल, शंकु सीधा और बिना गाँठ की मुंज की रस्सी चहिये। चित्रादि नक्षत्रों से पूर्व दिशा निश्चित करनी हो तो (इस) आकृति की आवश्यकता नहीं होती है। वह तिथि और वह नक्षत्र वरूण (याग?) के लिये शुभ मानते हैं। (2)

सर्वाः प्रागायता वेद्यः करणँ यस्कदेहिकम्।
अर्धेनार्वसमँ सर्वमुछेदो जानु पञ्चकम् ॥ 3 ॥

सब वेदियाँ पूर्वाभिमुख होती हैं। ईंटे़ं यस्क के शरीर जैसी (?) हैं। इनकी मोटाई आधा अर्व होकर पांच ईंटों की मोटाई एक जानु होती है। (3)

[1 अर्व = 12 अंगुल]

मध्यमेऽर्धमृतव्यानां नाकसत्पञ्चचूडयोः।
करणाद्यर्थमुद्दिश्य क्षेत्रमर्धाष्टमान्नरः ॥ 4 ॥

मध्य तह की ऋतव्या, नाकसद और पंचचूड ईंटों की मोटाई ऊपर दिये हुए ईंटों के मोटाई से आधी होती है। चिति का क्षेत्रफल 7½ वर्ग पुरुष है। (4)

अनः सिद्धँ हविर्धानं पात्रसिद्धाः खराः खराः।
चात्वालः पशुभिः सिद्धो हविर्भिः साग्निकाः खराः ॥ 5 ॥

गाडियों से हविर्धान मण्डप सिद्ध (संपन्न) होता है, यज्ञिय पात्रों से खर सिद्ध होता है, पशुओं से चात्वाल सिद्ध होता है और आहुतियों से वेदि सिद्ध होती है। (5)

मण्डलार्धं चतुःस्त्रक्ति रत्निनां विहिताः खराः।
अरत्निर्घन एतेषां भूयस्त्वे भूयसी विधौ ॥ 6 ॥

रत्नियों का (खर) अर्धवृत्ताकार या वर्गाकार होता है। इसका घनफल एक अरत्नि है। अगर (खर) बड़ा चहिये हो तो उसके घनफल में वृद्धि करें। (6)

[रत्निन् याने राजा के रिश्तेदार।]

पुर्वश्चतुर्विंशतिभागे लेख्यश्चतुर्वंशैरालिखितस्तु पश्चिमः
स्याद्दक्षिणेऽष्टद्विगुणेन लेख्यस्त्रिँशद्भिरायम्य हरेत्तु रायम् ॥ 7 ॥

वेदि के पूर्व की ओर 24 रेखायें खींचें। पश्चिम की ओर चार वंश होते हैं। दक्षिण की ओर 16 रेखायें खींचें। परन्तु उनकी वृद्धि 30 तक करें और वेदि का विन्यास करें। (7)

[इस वेदि का प्रयोजन कहा नहीं है इसीलिये इस सूत्र का अर्थ करना कठिन है।]

उदक्प्रक्रम्य चात्वालँ शामित्रं प्रक्रमे ततः।
भूयस्तत्पशुभूयस्त्वे वृद्धिरुत्तरतो भवेत् ॥ 8 ॥

उत्तर की तरफ जा कर चात्वाल (नामक गडढ़ा) खोदें। इसके आगे एक प्रक्रम दूरी पर शामित्र (पशुश्रपण का अग्नि) होता है। यह शामित्र वेदि अगर पशुओं की संख्या अधिक हो तो बड़ी करें। इसकी वृद्धि उत्तर की तरफ करें। (8)

आयामबाहुं निक्षिप्य विस्तरस्तु तथा पृथक्।
सो ऽध्यर्धं गुणयेद्राशिँ स सर्वगुणितो घनः ॥ 9 ॥

एक बाहु लम्बाई लेकर चौड़ाई और एक बाहु लें। इनके गुणन को डेढ़ से (मोटाई) गुणा करने से (1x1x1½ बाहु) शामित्र वेदि का घनफल प्राप्त होता है। (9)

आयाममायामगुणँ विस्तारँ विस्तरेण तु।
समस्य वर्गमूलँ यत् तत्कर्णं तद्विदो विदुः ॥ 10 ॥

(समकोण त्रिभुज में) लम्बाई को लम्ब्राई से गुणा करें और चौड़ाई को चौड़ाई से और उनका योग करके वर्गमूल निकालें। इससे कर्ण की लम्बाई प्राप्त होती है, ऐसा जानने वाले जानते हैं। (10)

श्रवणाभिजितोर्बहुलातिष्ययोर्वा चित्रास्वात्योरन्तरेऽप्स्वग्निना वा ॥ 11 ॥

श्रवण और अभिजित्, बहुल (पुनर्वसु) और तिष्य अथवा चित्रा और स्वाति ताराओं के जोडी के मध्य भाग से (दुभाजक रेखा से) पानी या दीपों की सहायता से पूर्व दिशा निश्चित करते हैं। (11)

नक्तं प्राचीभास्कारश्रायमाहुः। शङ्कुलिप्ते मण्डले प्राक्पराक्चेति ॥ 12 ॥

रात को सूर्य का आश्रय पूर्व की तरफ ह्रोता है, ऐसा कहते हैं। शंकु के सब ओर होने वाले मण्डल से पूर्व और पश्चिम दिशा निश्चित करते हैं। (12)

10.3.2

जन्मना रोगहीनो वा यजमानो भेवद्यदि।
कथं तत्र प्रमाणानि प्रयोक्तव्यानि कर्तृभिः ॥ 1 ॥

यजमान की ऊँचाई जन्मतः या किसी रोग से (सामान्य मान से) कम होगी तो विन्यास करते समय विन्यास करने वालों ने किस और कौन प्रमाण से नापें लेने के। (1)

यद्युरुतन्तुः केशो वास्तृतः सर्षपो यवश्चैव षड्गुणितः
षड्गुणितो भवति नरस्याङ्गुलं माने तद् द्वादशकं प्रादेशमित्याहुः ॥ 2 ॥

कमल का पराग, बाल, सर्षप (अलसी का दाना) और यव एक दूसरे से छः गुने बड़े हैं। यव के छः गुना मनुष्य की उंगली (अंगुल) है। 12 अंगुलों का एक प्रादेश कहते हैं। (2)

तद्द्वयँ स्मृतोऽरत्निः प्रक्रमोऽरत्निसमः स द्विः प्रादेशो भवेच्चितिषु ॥ 3 ॥

दो प्रादेशों की एक अरत्नि होती है। प्रक्रम अरत्नि के समान होता है, और चिति के (नाप लेने के समय) वह दो प्रादेशों का होता है। (3)

अध्यर्धाङ्गुलहीनाश्चत्वारः प्रक्रमा भवेन्नियताः ॥ 4 ॥

नियम है कि चार प्रक्रमों में डेढ़ अंगुल कम लें। (4)

तत्रैकादश यूपाश्चत्वारश्चतुरुत्तराः सत्रे सत्रे ॥ 5 ॥

वहाँ ग्यारह यूप होते हैं और एक सत्र में उनकी संख्या चार-चार गुनी (या चार से वृद्धि?) होती है। (5)

एकस्याँ वेद्यामग्निद्वयमिष्टकारिक्तं भवति। पृथगतो वेदिः चेत् पृथगग्निः क्लृप्तः ॥ 6 ॥

एक ही वेदि पर बिना ईंटों से दो अग्नि होते हैं। जहाँ वेदि भिन्न होगी वहाँ अग्नि भी भिन्न रखते हैं ऐसी युक्ति है। (6)

विँशत्यङ्गुलः शतं नियतः पञ्चारत्निर्नरो दशपदो वा। हीनातिरिक्तयुक्त्या देहे देहे प्रमाणं तु ॥ 7 ॥

पुरुष (नाप) 120 अंगुलों का या पांच अरत्नियों का या दस पद इतना नियमित किया है। परन्तु विभिन्न शरीरों से (प्राप्त होने वाला पुरुष नाप) नियत नाप से कम या अधिक हो सकता है। (7)

षडशीतिर्युगमुक्तँ साष्टादश उच्यते त्वक्षस्तन्त्रसमसमस्तं द्वयुंज रथमीषाँ व्यवास्यन्ति ॥ 8 ॥

युग 86 अंगुलों को कहते हैं। अक्ष 18 अंगुलों से अधिक (लम्बाई का याने 104 अंगुल) कहा है। वहाँ (रथ-) तन्त्र के कहने अनुसार दो घोड़ों के रथ के ईषा से दो भाग होते हैं। (ऐसा ही अनुवाद हो सकता

है- इनके योग से दो घटा कर ईषा की लम्बाई (86+104-2 = 188 अंगुल) लेते हैं। (8)

मण्डलमथ चतुरस्त्रं मण्डलं च यः कुर्यात् तस्येमं करणविधिं तद्विदामुदाहृतँ श्रृणुत ॥ 9 ॥

मण्डल का (समक्षेत्र) वर्ग खींचने के लिये और (वर्ग का समक्षेत्र) मण्डल करने के लिये यह जानने वाले विद्वान जो कृति कहते हैं वह सुन लें। (9)

मण्डलविष्कम्भसमस्त्रिभुजादवलम्बकश्चतुःस्त्रक्तिः प्रागायतात् त्रिभागात् कर्णात् स मण्डलं भवति ॥ 10 ॥

वर्ग का अर्धकर्ण पूर्व की तरफ लाकर वर्ग के बाहर आने वाले भाग के एक तिहाई भाग का वर्ग के आधे बाजू में योग करें और (इस लम्बाई के) त्रिज्या से मण्डल खींचें (वह वर्ग के समक्षेत्र होता है)। (10)

पुरुषः पुरुषं कुर्यात् तस्याक्ष्णया द्विपुरुषं भवेच्चतुरस्तस्याप्यक्ष्णया द्वाभ्याँ वा स्याश्चतुःपुरुषम् ॥ 11 ॥

पुरुष से एक वर्ग पुरुष (क्षेत्रफल का वर्ग) प्राप्त करें। इसके कर्ण से दो वर्ग पुरुष (क्षेत्रफल का वर्ग) प्राप्त होता है। इसके कर्ण से चार वर्ग पुरुष (क्षेत्रफल का वर्ग) खींच सकते हैं या दो पुरुषों से चार वर्ग पुरुष (क्षेत्रफल) प्राप्त होता हैं। (11)

द्विपुरुषः करणी श्रोणी बाहुस्तु द्विगुणो भवेत् त्रिंकुष्ठवत् त्र्यवलम्बकः ततो यश्चतुरस्त्रे द्वाष्टमाः पुरुषाः ॥ 12 ॥

(अलजचिति के आत्मा की) लम्बाई दो पुरुष होती है। श्रोणी दो बाहू (42X2 = 84 अंगुल, शुद्ध समकोण के लिये 84.8 अंगुल) लेकर होने वाले दो समद्विबाहु समकोण त्रिभुज घटा दिये गये तो उनसे (उन त्रिभुजों से) होने वाले वर्ग का क्षेत्रफल $\frac{2}{8}$ वर्ग पुरुष होता है। (12)

[60 x 60 x 84 अंगुल का समकोण त्रिभुज। इसका क्षेत्रफल = ½ x $\frac{60}{120}$ x $\frac{60}{120}$ = $\frac{1}{8}$ वर्ग पुरुष। दो त्रिभुजों का क्षेत्रफल = $\frac{2}{8}$ वर्ग पुरुष]
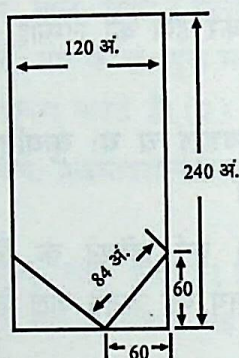
विष्कम्भः पञ्चभागश्च विष्कम्भस्त्रिगुणश्च यः।
स मण्डलपरिक्षेपो न वालमतिरिच्यते ॥ 13 ॥

मण्डल के व्यास के पांच भाग करें इन प्रत्येक भाग के और तीन विभाग करें। (कुल 15 विभागों से दो घटाकर) समक्षेत्र वर्ग की भुजा प्राप्त होती है। यहाँ एक बाल की भी भूल नहीं होती। (13)

[मानों मण्डल का व्यास = क्ष अंगुल। इसका क्षेत्रफल = $\frac{22}{7}$ x $\frac{क्ष^2}{4}$ $\frac{11}{14}$ क्ष²। वर्ग की भुजा = $\frac{13}{15}$ क्ष, वर्ग का क्षेत्रफल = $\frac{169}{225}$ क्ष²। मण्डल का क्षेत्रफल = $\frac{11}{14}$ क्ष² = $\frac{177}{225}$ क्ष²। क्षेत्रफल में अशुद्धि है – $(\frac{177}{225} - \frac{169}{225})$क्ष² = $\frac{8}{225}$ क्ष² की]

दशधा छिद्य विष्कम्भं त्रिभागानुद्धरेत्ततः।
तेन यच्चतुरस्त्रं स्यान्मण्डले तदपप्रथिः ॥ 14 ॥

मण्डल के व्यास के दस भाग करें और वहाँ से तीन भाग घटा दें। इससे प्राप्त हुए वर्ग का क्षेत्रफल प्रधि निकाले हुए मण्डल के क्षेत्रफल के समान है। (14)

[वृत्त में बड़े से बड़े समायोजित वर्ग का क्षेत्रफल निकालने की यह रीति है। मानों मण्डल का व्यास 2क्ष है। इस सूत्र से वर्ग की लम्बाई = $\frac{7}{10}$ x 2क्ष = 1.4 क्ष]
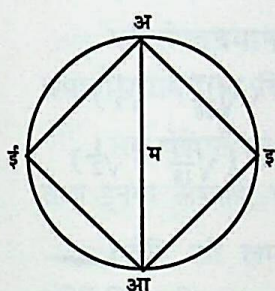
अ इ आ ई मण्डल में समायोजित बड़े से बड़ा वर्ग है।

अ आ = 2क्ष, कोण अ ई आ समकोण है।

अ आ^2 = अ ई^2 + आ ई^2 परन्तु अ ई = आ ई।

∴ अ आ^2 = 2 अ ई^2 = 4क्ष^2।

∴ अ ई = $\sqrt{2}$क्ष = 1.41क्ष]

चतुरस्त्रं नवधा कुर्याद् धनुः कोट्यास्त्रिधात्रिधा ।
उत्सेधात्पञ्चमँ लुम्पेत्पुरीषेणेह तावत्समम् ॥ 15 ॥

(प्रमाण) वर्ग के नौं छोटे (समक्षेत्र) वर्गों में विभाग करें और इस वर्ग के परिगत वृत्त का जो भाग वर्ग के बाहर आता है इसके (प्रधि के) तीन विभाग करें। (वर्ग के छोटे नौं वर्ग करने के लिये जो रेखायें खींचीं है उनकी वृद्धि करें।) इस वृद्धि किये हुए रेखा से पांचवा भाग गिली मिट्टी के साथ निकाल कर प्राप्त हुई लम्बाई की त्रिज्या से वृत्त खींचें। यह मण्डल प्रथम वर्ग के समक्षेत्र होता है। (15)

[साथ के आकृति में अ म = क्ष, अ इ = 2क्ष, अ ई = $\sqrt{2}$ क्ष,

प ब = ½ इ ई = $\frac{1}{\sqrt{2}}$ क्ष।

Δ फ ब म में फ म^2 = फ ब^2 + ब म^2,

2 ब म^2 = म भ^2 = $\frac{1}{9}$ क्ष^2

∴ क्ष^2 = फ ब^2 + $\frac{1}{18}$ क्ष^2

फ ब^2 = क्षा^{2} − $\frac{1}{18}$ क्षा^{2}

= $\frac{17}{18}$क्ष^2

∴ फब = $\sqrt{\frac{17}{18}}$ क्ष
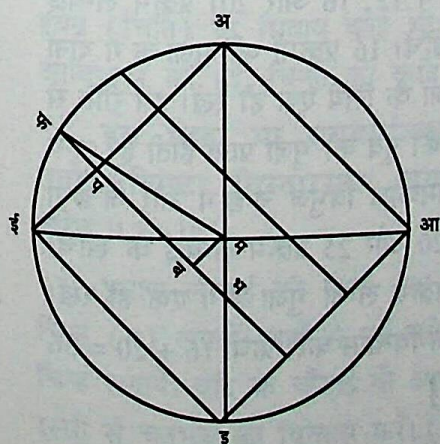
पफ = फब − पब = $\sqrt{\frac{17}{18}}$ क्ष − $\frac{1}{\sqrt{2}}$ क्ष

∴ पफ − $\frac{1}{5}$ पफ = क्ष ($\sqrt{\frac{17}{18}} - \frac{1}{\sqrt{2}}$) − $\frac{क्ष}{5}$ ($\sqrt{\frac{17}{18}} - \frac{1}{\sqrt{2}}$)

वृत्त की त्रिज्या = पब + $\frac{4}{5}$ पफ = $\frac{क्ष}{\sqrt{2}} + \frac{4}{5}$क्ष ($\sqrt{\frac{17}{18}} - \frac{1}{\sqrt{2}}$)

= 0.9187 क्ष

वर्ग का क्षेत्रफल = 2क्ष^2। वृत्त का क्षेत्रफल = π (0.9187 क्ष)^2 = 2.626 क्ष^2।]

चतुररत्निर्वा नरः सिकताकरणे त्वर्धं भुजः प्रदिश्यते ॥ 16 ॥

अथवा चार अरत्नियों से एक पुरुष (नाप) लें और बालू और ईंटों के लिये मनुष्य का आधा बाहू (21 अंगुल) लेने का निर्देश है। (16)

करणानि ततोऽस्याः कारयेत् त्रिचतुःपञ्चत्रिरभिपर्यस्य यच्छुभं चयनेषु विधिः पुरातनैत्रर्ऋषिभिर्योऽभिहितश्च नित्यशः ॥ 17 ॥

अब वेदि के भुजाओं के विन्यास करने के लिये तीन, चार और पांच प्रक्रम लम्बाई की क्रमशः चार और पांच बार वृद्धि करें। विन्यास करने का यह शुभ नियम पुरातन ऋषियों ने नित्य कहा है। (17)
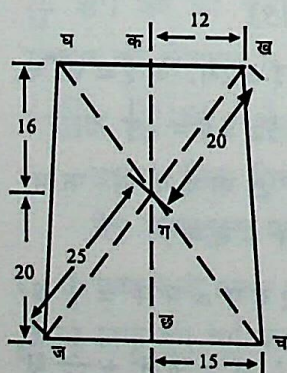
[दो समकोण त्रिभुज क ख ग और क घ ग 12, 16 और 20। प्रक्रम लम्बाई के खींचें। 16 प्रक्रमों की भुजा क ग दोनों त्रिभुजों के लिये एक ही रखें। इस रीति से वेदि की पूर्व की भुजा प्राप्त होती है। अन्य दो समकोण त्रिभुज च छ ग और ज छ ग 15, 20 और 25 प्रक्रम लम्बाई के खींचें। 20 प्रक्रम लम्बी भुजा छ ग एक ही रखें। इस रीति से वेदि की पश्चिम भुजा का विन्यास करें। प्राची 16 + 20 = 36 प्रक्रम है। (सूत्र 10.1.3.4 देखिये।)]

परिलेखनमानसंचयैर्व्यत्यासैः परिमाणसंपदा वेद्यः सर्वाः प्रमाणैरायामेन च विस्तरेण च मिमीयात् ॥ 18 ॥

सब वेदियों का विन्यास विभिन्न नापों से और इनके उलट नापों से, तथा इनके लम्बाई, चौड़ाई और परिमिति से लें। (18)

[वेदि की लम्बाई और चौड़ाई की नापें जानकर, इसके कर्ण, परिमिति आदि नाप गणित करके निकालें। दिये हुए लम्बाई और चौड़ाई के वेदि का विन्यास करने के बाद उसकी नापें शुद्ध हैं या नहीं इसके परीक्षण के लिये कर्ण और परिमिति इत्यादि का भी नाप लें।]

चतुरस्त्रसँपदा द्व्यायामसमापनाः स्मृता पञ्चाङ्ग्याथ वा पुरातनैर्याः पूर्वैर्ऋषिभिः प्रदर्शिताः ॥ 19 ॥

प्रमाण वर्ग खींचने के लिये (प्राची के) दुगुनी लम्बी रस्सी लें अथवा पंचांगि (पांच चिन्हों वाली) रस्सी की सहायता से जैसा पुरातन ऋषियों ने कहा है उसी से (वह लम्बाई) लें। (19)

[सूत्र 10.1.1.11, 10.3.2.11, 10.2.1.4 देखें।]

यश्चैष विधिर्मयाकृतस्तत्रैषा मिथुनात्समम् ।
पञ्चाङ्गी तावती रज्जुर्यया सर्वं मिमीमहे ।
ऋते कङ्कालजश्येनाँस्तेषाँ वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ 20 ॥

प्रमाण लम्बाई के दुगुनी लम्बी पंचांगि रस्सी से कंक, अलज और श्येन (चिति) के सिवाय कोई भी वेदि का विन्यास करने की, मैने आविष्कार की हुई, चिन्हों की कृति (अब) कहता हूँ। (20)

इयं मिता या समयार्धलक्षणा ततश्चतुर्थे भवेन्निराञ्छनं ततोऽर्धशिष्टा विस्तारसमा चयस्य। यत्ततश्चतुःकुष्ठमिहानया चरेत् ॥ 21 ॥

प्रमाण लम्बाई की रस्सी (क ख) लेकर इसके मध्य बिन्दु पर चिन्ह (ग) लगायें। वहाँ से पूर्व की तरफ चौथे भाग पर निरांछन का चिन्ह लगायें। वेदि के चौड़ाई के आधे दूरी पर चिन्ह (छ) लगायें। इस रस्सी से चतुर्भुज का विन्यास करें। (21)

[वेदि का प्राची 1 पुरुष याने पांच अरत्नि है। इसीलिये दो पुरुष लम्बी रस्सी लें।]

प्राचीमथायामसमां निदध्यात् पाशौ निखन्यादथ मध्यमं च ॥ 22 ॥

प्राची के 'क ग' लम्बाई जितनी रस्सी (प्राची पर) रखें। रस्सी के सिरो पर और मध्य बिन्दु पर गाँठ बाँधें। (22)

उन्मुच्य पश्चादथ मध्यमे तत्प्राग्दक्षिणायम्य निराञ्छनेन विस्तारतोऽर्धे निखनेत शङ्कुं। प्रत्यक्तथोत्तरमध्यमे च। स वासुवेदीषु ॥ 23 ॥

पश्चिम के सिरे से (ख) रस्सी का सिर छुड़ाकर वह सिर मध्य बिन्दु पर (ग) बाँधें। रस्सी निराञ्छन से पूर्व-दक्षिण की तरफ (न) खींचें। इस रस्सी पर (क न) वेदि के चौड़ाई आधे लम्बाई पर होने वाले चिन्ह पर (छ याने च) खुंटि ठोकें। (इसी रीति से उत्तर-पूर्व की ओर का अंस त खींचें) इसी रीति से दक्षिण-पश्चिम और उत्तर-पश्चिम की तरफ (ट और ठ पर) खुंटियाँ ठोकें। यह रीति वासुवेदि के विन्यास के लिये उपयोगी है। (23)

अथ मानमेतच्छ्रोण्यां तु पाशोद्धरणं क्रियेत ॥ 24 ॥

अब श्रोणी के नाप लेने के लिये रस्सी की गांठ आगे की तरप बढाइयें। (24)

[ट और ठ ग से 40 अंगुल दूरी पर हैं, न कि 30 अंगुल दूरी पर, इसीलिए यह सूचना है।]

अँसश्रोण्योर्लिखेत दिक्षु लेखाः शङ्कू निहन्यात् समरेषु तेषु। तेभ्यः समन्तात् परिलेखयेत् ॥ 25 ॥

श्रोणी केन्द्र बिन्दु लेकर श्रोणी और अंस के बीच की दूरी से (उत्तर और दक्षिण की तरफ) वृत्तखण्ड खींचें। अंस केन्द्र बिन्दु लेकर यह कृति फिर करें। ये वृत्तखण्ड जहाँ एक दूसरे को काटते हैं इन दोनों बिन्दुओं पर (क्रमशः दक्षिण और उत्तर की तरफ) खुंटियाँ ठोकें। यह दो खुंटियाँ केन्द्र मानकर (उत्तर और दक्षिण के) अंस और श्रोणी वृत्तखण्डों से जोडें। (25)

[सूत्र 10.1.1.4-6 में वेदि की प्राची चार अरत्नि है और वासुवेदि की प्राची पांच अरत्नि है इतना ही इन दोनों वेदियों के विन्यास में फर्क है।]
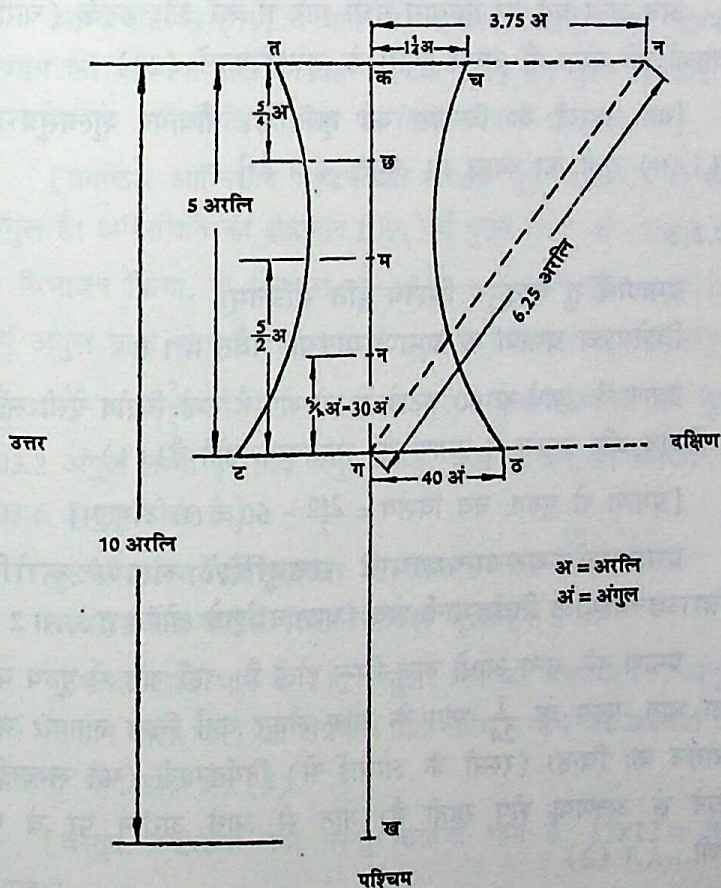
यद्यैष्टिका नोभौ लिखेत शिष्टौ ॥ 26 ॥

अगर वेदि ईंटों से चिनने की हो तो उर्वरित दो भुजाएं (पूर्व और पश्चिम) वृत्त खण्डों से न खींचें। (26)

पूर्वे त्रिभागे त्वपरे च सिद्धोपस्थितावुत्करदक्षिणाग्नी ॥ 27 ॥

पूर्व और पश्चिम तरफ एक तिहाई भाग पर क्रमशः उत्कर और दक्षिणाग्नि का शुद्ध विन्यास करें। (27)

अथान्यदस्य परिलेखनं तु मध्ये भवेद् दिक्षु नवाङ्गुलेनेति ॥ 28 ॥

अब अन्य वर्ग का विन्यास मध्य भाग में करें और उनके (चारों) दिशाओं की तरफ नौं अंगुल व्यास के वृत्त निकालें। (28)

[यह उपरवों के विन्यास की कृति है। बौधायन शुल्बसूत्र में (सू.1.10) वृत्तों का व्यास 12 अंगुल कहा है।]

10.3.3

प्रमाणर्धं तु षष्ट्यूनं विशेष इति संज्ञितम्।
विशेषश्च प्रमाणं च प्रमाणस्याज्ञया भवेत् ॥ 1 ॥

प्रमाण के आधे से 60 घटाने से जो शेष है उन्हे विशेष ऐसी संज्ञा है। विशेष और प्रमाण ये प्रमाण के आज्ञापरक होते हैं। (1)

[प्रमाण दो पुरुष, तब विशेष $= \frac{240}{2} - 60 = 60$ अंगुल।]

प्रमाणार्धमन्यत्स्यात्पाशषष्ठे सचतुर्विंशे लक्षणं करोति तन्निराञ्छनमक्ष्णया तिर्यङ्मानी शेषः। पाशादर्धशये श्रोणी द्व ...॥ 2 ॥

प्रमाण की अन्य आधी बाजू भिन्न होती है। वहाँ गांठ से पुरुष का छठ़ा भाग, पुरुष के $\frac{1}{24}$ भाग के साथ लेकर वहाँ चिन्ह लगायें। यह निरांछन का चिन्ह। (रस्सी के लम्बाई से) तिर्यङ्मानी (की लम्बाई) घटाने से अक्ष्णया शेष रहती है। गांठ से आधे अरत्नि पर वे दो श्रोणी......। (2)

[यहाँ प्रमाण रस्सी दो पुरुष लम्बी है, वह एक पुरुष होगी तो विशेष की व्याख्या 'पुरुष का तीसरा भाग, पुरुष के $\frac{1}{12}$ भाग के साथ लेकर' ऐसी होगी। $\sqrt{2} = 1 + \frac{1}{3} + \frac{1}{3x4}$ बौधायन शुल्बसूत्र में विशेष की व्याख्या अधिक सूक्ष्म दी है क्योंकि वहाँ $\frac{1}{3x4x34}$ यह भाग घटाने को कहा है।]

...... चाग्नीध्रमिहोपदिश्यते ॥ 3 ॥

... और यहाँ आग्निध्र (मण्डप की) जानकारी देता हूँ। (3)

अग्नेर्यदक्ष्णयामानं तस्य चैव तदक्ष्णया।
तदाश्वमेधिकँ विद्यादेकविँशद्विधौ ऽथ वा ॥ 4 ॥

अग्निचिति के (7½ वे भाग के) अक्ष्णया जितनी लम्बी आग्नीध्र मण्डप की अक्ष्णया होती है। यह अक्ष्णया 21½ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल के अश्वमेध के अग्निचिति के नाप के लिये उपयोगी है। (4)

[वर्गाकार आग्निध्रीय मण्डप की लम्बाई सूत्र 10.1.3.3 से 144 अंगुल है। अग्निचिति का क्षेत्रफल 10½ वर्ग पुरुष लिया और इसको 7½ से विभाजन किया, तो क्षेत्रफल $\frac{2}{15} \times \frac{21}{2} = \frac{7}{5}$ वर्ग पुरुष = 20160 वर्ग अंगुल प्राप्त होता है। इस वर्ग के भुजा की लम्बाई है 142 अंगुल। $\frac{2}{15} \times \frac{43}{2} = 2\frac{13}{15}$ वर्ग पुरुष = 41280 वर्ग अंगुल। इस वर्ग की भुजा 203.2 अंगुल लम्बी है। 144 अंगुल लम्बी भुजा के वर्ग की अक्ष्णया भी 203.6 अंगुल होती है।]

पुरुषस्तिर्यग्भवेद्यदनुदशधा यो मितः ।
तस्य कर्णेन यत्क्षेत्रँ विद्यादेकादशं तु तत् ॥ 5 ॥

पुरुष के दसवें भाग के (12 अंगुल) वर्ग की अक्ष्णया (17 अंगुल कर्ण पर होने वाला वर्ग) का क्षेत्रफल आग्निध्रीय मण्डप की अक्ष्णया का ग्यारहवाँ भाग होता है। (5)

[वस्तुतः ग्यारहवाँ नही परन्तु बारहवाँ भाग है, 17x12 = 204 अंगुल।]

उभौ बाहू नशक्ष्णां तु नरस्तिर्यक्तदक्ष्णया।
एकोच्चतानैकशताद् बाहुवृद्ध्या विवर्धयेत् ॥ इति ॥। 6 ।

आधे पुरुष लम्बाई के वर्ग का कर्ण दो बाहू (84 अंगुल) होता है। $60^2 + 60^2 = 84.8^2$)। दो बाहू लम्बाई के वर्ग का कर्ण एक पुरुष होता है ($84.8^2 + 84.8^2 = 120^2$) अग्निचिति के क्षेत्रफल में एक वर्ग पुरुष

की वृद्धि करने के लिये एक वर्ग बाहू का अग्निचिति से (इसके प्रत्येक भाग से) योग करें। इस रीति से 101½ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल तक अग्निचिति की वृद्धि करें। (6)

[एक वर्ग पुरुष को 7½ में विभाजन करने पर हर एक भाग $\frac{2}{15}$ वर्ग पुरुष का (= 1920 वर्ग अंगुलों का) प्राप्त होता है। एक वर्ग बाहू $= 42^2 = 1764$ वर्ग अंगुल। इस रीति से 156 वर्ग अंगुलों की गलती होती है।]

10.3.4

अवलम्बककुष्ठे तु यो भवेत्षोडशाङ्गुले।
सौत्रामण्या भवेदेष प्रक्रमो मानकर्मणि ॥ 1 ॥

समद्विबाहू समकोण त्रिभुज का कर्ण 16 अंगुलों का लें, वह सौत्रामणि वेदि का अभिन्यास करते समय एक प्रक्रम का नाप मानकर उपयोग में लाते हैं। (1)

[सूत्र 10.3.3.5 में दिये हुए समद्विबाहू त्रिभुज का कर्ण 17 अंगुल है। सौत्रामणि वेदि के लिये $17\frac{1}{3}$ अंगुलों का प्रक्रम लेते हैं, $17\frac{1}{3} = 10\sqrt{3}$ । सौत्रामणि वेदि का क्षेत्रफल सोमयाग की महावेदि के क्षेत्रफल का (972 वर्ग अंगुल) एक तिहाई होता है। मगर सूत्र 10.1.3.9 में सौत्रामणि वेदि का क्षेत्रफल सोमयाग की महावेदि के क्षेत्रफल का $\frac{1}{9}$ लेने को कहा है, महावेदि का क्षेत्रफल = 972 वर्ग अंगुल और सौत्रामणि वेदि का क्षेत्रफल = 108 वर्ग अंगुल।]

प्रक्रमस्य तृतीयेन सौमिकी सार्पराज्ञिकी।
संतृतीयैस्त्रिभिश्चान्यैः सिद्धमौत्तरवेदिकम् ॥ 2 ॥

सोमयाग की सार्पराज्ञि की वेदि प्रक्रम के एक तिहाई भाग से (8 अंगुल) खींचते हैं। उत्तर वेदि ऐसी तीन वेदियों के एक तिहाई भाग से सिद्ध होती है। (2)

[सूत्र का अर्थ अनाकलनीय है।]

चतुर्दशाङ्गुलो वा स्यात् प्रक्रमस्तेन सौमिकी।
शतैर्द्वादशभिर्वापि मिनुयात्पाशुकामिव ॥ 3 ॥

अथवा सोमयाग में 14 अंगुलों का एक प्रक्रम लेते हैं। पशुबंध याग के वेदि जैसी वह 1200 (?) नापों की चहिये। (3)

[सूत्र का अर्थ अनाकलनीय है।]

सचतुर्थे वनँ षड्भिर्नवभिर्वाथ सप्तभिः।
नवभिर्वापरं चक्रं करणार्धे न लेखयेत् ॥ 4 ॥

(रस्सी पर) पुरुष के ¼ भाग पर निरांछन के लिये चिन्ह लगायें। बांस पर (वनँ) छठें और नौवें या सातवें और नौवें अंगुलों पर चिन्ह लगायें। अगर वेदि ईंटों से बनायी हो तो इसकी पश्चिम बाजू वृत्तखंड से वक्र नही लें (वह सरल रेखा से खींचते हैं।) (4)

[सूत्र 10.1.1.4-6 और 10.3.2.29-26।]

चतुर्षु निवपेदेषाँ सावित्रादिषु यो विधिः।
अरुणे जानुदघ्ने निखन्यादद्भिस्तु पूरयेत् ॥ 5 ॥

सावित्रादि वेदि चार उपसद दिनों में बाँधते हैं। अरुण वेदि (ऊँचाई में) घुटने तक बाँधें और अपस्या ईंटों से वह पूरी करें। (5)

[सावित्र, आरुण, नाचिकेत इत्यादि यागों में बजरी की क्षुद्र चिति रचते हैं। अपस्या ईंटों का मतलब है पानी की ईंटें, ये केवल मानी जाती हैं, असल में नहीं होती।]

चतुरस्त्रमथापि मण्डलं द्विविधं गार्हपत्यलक्षणँ व्यायाममितं चतुर्भुजं पुरुषार्धेन तु मण्डलं परिलिखेत् ॥ 6 ॥

गार्हपत्य अग्नि की (चिति) वर्गाकार अथवा वृत्ताकार ऐसी दो प्रकार की होती है। वर्गाकार अग्नि के भुजा की लम्बाई एक व्यायाम (96 अंगुल) रखते हैं और वृत्ताकार चिति की त्रिज्या आधा पुरुष (60 अंगुल) होती है। (6)

[वर्गाकार चिति का क्षेत्रफल 9216 वर्ग अंगुल है और वृत्ताकार चिति का क्षेत्रफल 11307 वर्ग अंगुल है।]

व्यायामतृतीयमायान्तं चतुरस्त्रँ सप्तमभागविस्तृतं प्रागाचित-मुत्तराचितँ व्यत्यासे तदथैकविँशकम् ॥ 7 ॥

वर्ग गार्हपत्य अग्नि के लिये ईंटें $\frac{1}{3}$ व्यायाम (32 अंगुल) लंबी और $\frac{1}{7}$ व्यायाम ($13\frac{4}{7}$ अंगुल) चौड़ी लेते हैं। एक तह में इक्कीस ईंटें पूर्वाभिमुख और दूसरी तह में उत्तरभिमुख ऐसी उलट सीधी रखें।

[आपस्तम्ब शुल्बसूत्र खण्ड 7 सूत्र 7-12 देखिये]

पुरुषस्य तृतीयमायान्तं चतुरस्त्रँ षड्भागविस्तृतम्। प्रथिकश्च तदायतो भवेन्मध्ये तेन समायतो भवेन्मध्ये तेन समास्तिके......शेषौ कोणौ प्रथिकमितौ समौ तद्विस्तारकृतौ विशाखः ॥ 8 ॥

षड्भागकृतायामो भवेद् द्व्यर्धे तु त्रिकोणसँस्थिते ॥ 9 ॥

चतुरस्त्रविपाणकः प्रथिकोऽर्धं प्रथिकश्च यो मितः ॥ 10 ॥

[सूत्र 8 से 10 तक अर्थ अनाकलनीय है।]

करणानि भवन्ति मण्डले चत्वारि प्रमितानि भागशः॥ 11 ॥

वृत्ताकार अग्निचिति में चार प्रकार की विभिन्न ईंटें होती हैं और पुरुष नाप के विभिन्न भागों से वे होती हैं। (11)

मध्येऽस्य चतस्त्र इष्टकाः तत्पूर्वापरयोर्द्वयोर्द्वयम्। प्रतिकोऽर्ध-विषाणिकद्वयं पुनरेव पुनरैति मण्डलमर्धप्रथिकद्वये समँ संपूर्णं तदथैकविँशकम् ॥ 12 ॥

इसके मध्य भाग में चार ईंटें होती हैं। इनके पूर्व और पश्चिम की ओर दो-दो ईंटें रखते हैं। आधे सिंग के आकार जैसी दो ईंटें होती हैं। वे मण्डल के हर एक प्रधि में दोनों ओर बार-बार रखते हैं। कुल इक्कीस ईंटें एक तह में होती हैं। (12)

व्यत्यासमुदङ्मुखेन सह व्यत्यस्ये द्वेत्युत्तरोत्तरम् ॥ 13 ॥

विभिन्न तह में (पूर्वाभिमुख और) उत्तराभिमुख ऐसी ईंटें उलट सीधी रखें। (13)

[आपस्तंब शुल्बसूत्र खण्ड 7, सूत्र 13-15 देखिये।]

अध्यर्धं पद्यं च पद्यार्धपद्यपादवत्पद्यार्धोत्सेधमित्याहुर्गायत्रे करणानि च ॥ 14 ॥

गायत्री वेदि के लिये अध्यर्धा, पद्या, अर्धपद्या और पद्यापद्या ईंटें लेते हैं। इसकी ऊँचाई अर्धपद्या इतनी है। इन नापों के सांचा (ईंटें बनाने के लिये) लें। (14)

[सूत्र 10.1.3.6 से 1 पाद = 12 अंगुल। प्रमाण ईंट = 24x24 अंगुल। अध्यर्धा = 18x12 अंगुल, पद्या = 12x12 अंगुल अर्धपद्या = 12x6 अंगुल और पद्यापद्या = 6x6 अंगुल। ईंटों की ऊँचाई छः अंगुल है]

चतुर्गुणां द्विपुरुषाँ रज्जुं कृत्वा समाहिताम्।
संभागज्ञातृतोदान्तां पञ्चाङ्गीं तद्विदो विदुः ॥ 15 ॥

चार बल की, दो पुरुष लम्बी रस्सी बनाईये। विभिन्न भागों के (श्रोणी, अंस, निरांछन इत्यदि के) लिये चिन्ह लगाये हुए इस रस्सी को, इसके जाने माने लोग, पंचांगि कहते हैं। (15)

मध्यमात्पाशयोस्तोदो गायत्रमानमुच्यते।
सारत्नावर्धपुरुषे। चतुरस्त्रस्तया मितः।
पक्षपुछान्तयोर्वृद्ध्या गायत्रेणेतरेषुभिः ॥ 16 ॥

रस्सी के दोनों सिरों पर होने वाले गांठ के मध्य बिन्दु पर (याने एक पुरुष दूरी पर) चिन्ह लगायें तथा मध्य बिन्दु के दोनों ओर एक अरत्नि दूरी पर चिन्ह लगायें। इसे गायत्री का नाप कहते हैं। इस रस्सी से वर्ग खींचते हैं। पंख के वर्ग के अंतिम में एक गायत्री से (याने एक अरत्नि से) और पूँछ के (वर्ग के) अंतिम में एक शर से (याने एक प्रादेश से) वृद्धि करते हैं। (16)

[सूत्र 10.2.1.1-14 देखिये।]

इष्टका शोषपाकाभ्यां त्रिंशन्मानात्तु हीयते ॥ 17 ॥

सुखाने से और पकाने से ईंटों का नाप $\frac{1}{30}$ से कम होता है। (17)

ततः क्षेत्रं त्रिचतुर्भागं निरुह्यादापयेच्छिवम् ॥ 18 ॥

तदनंतर पवित्र जगह के तीन चौथाई भाग पर वेदि का अभिन्यास करें। (18)

अँस उत्तरेऽँ से च प्राच्योऽध्यर्धास्तु विँशतिर्दश पुछे द्विर्द्वाद्वशकौ पक्षयोरभितः पुछे तु पञ्च देयाः पञ्च प्राचीः पञ्चदश दद्याच्छिरसि। चतुरशीती पक्षयोः पञ्चाशतं त्रिँशतमात्मनि पद्या भवन्ति शतमेकोनं पुछेऽँसश्रोण्याविँशतिर्विँशतिः पुछे पक्षयोर्दशदशाहुः ॥ 19 ॥

(आत्मा के) दक्षिण और उत्तर के अंस में पूर्वाभिमुख 20 अध्यर्धा ईंटें रखें। पूँछ में दस, हर एक पंख में दोनों और 12, पूँछ में पूर्वाभिमुख पांच-पांच ईंटें और शीर्ष में 15 अध्यर्धा ईंटें रखें। हर एक पंख में 84 पद्या ईंटें, आत्मा में 80 पद्या ईंटें, पूँछ में सौ को एक कम (99 और) पूँछ के अंस और श्रोणी में बीस-बीस और पंखों में दस-दस ईंटें रखें। (19)

अध्यर्धा दश शिरसि प्राच्युदीच्यो भवन्ति ॥ 20 ॥

शीर्ष में पूर्व और उत्तर की ओर दस अध्यर्धा ईंटें होती हैं। (20)

पूर्वोपहिता प्रथमा पदयुजः सर्वा। द्वितीया वाग्युजोऽश्विनी ॥ 21 ॥

पहली तह में ईंटें पूर्वाभिमुख होती हैं। सब ईंटें एक दूसरे के सम्पर्क में रखते हैं। दूसरी तह में अश्विनी ईंटें दक्षिणाभिमुख होती हैं। (21)

व्यत्यासं चिनुयादेवं जानुनास्य वर्त्मसु ॥ 22 ॥

ऐसी घुटने तक प्रत्येक तह में इनके मार्गों पर (वंशो पर) ईंटें उलट सीधी रखें। (22)

त्रिपदा अल्पक्षेत्रा एकचितिकाश्चतुः करणयुक्ताः धिष्ण्या भवन्ति साग्निचित्यमन्त्राः सातिरिक्ताश्च ॥ 23 ॥

धिष्ण्या ईंटों के एक तह की बनाते हैं। छोटे क्षेत्रफल की और तीन पद लम्बी भुजाओं की होती हैं। वे चार प्रकार के ईंटों से रचते हैं। वे (ईंटें) अग्निचिति के साथ, मन्त्रो के बिना और अतिरिक्त होती हैं। (23)
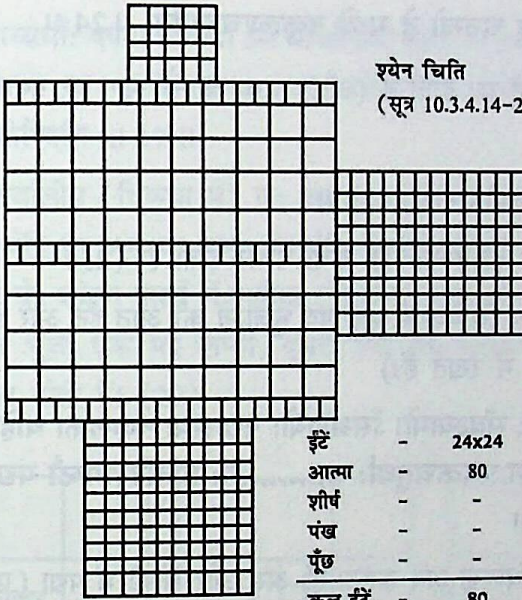
श्येन चिति
(सूत्र 10.3.4.14-20)

ईंटें	-	24x24	18x12	12x12
आत्मा	-	80	40	20
शीर्ष	-	-	10	10
पंख	-	-	48	168
पूँछ	-	-	20	80
कुल ईंटें	-	80	118	278

पहली तह

कुल ईंटें = 476
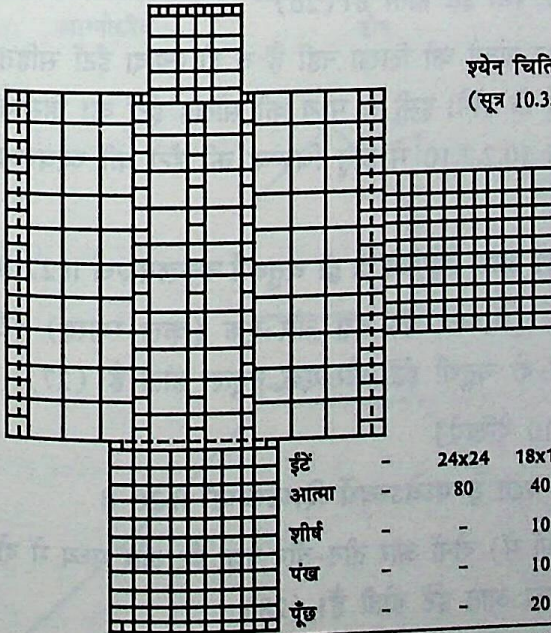
श्येन चिति
(सूत्र 10.3.4.21)

ईंटें	-	24x24	18x12	12x12	12x6	6x6
आत्मा	-	80	40	60	-	4
शीर्ष	-	-	10	10	-	10
पंख	-	-	10	100	-	-
पूँछ	-	-	20	70	11	4
		80	80	240	11	18

दूसरी तह

कुल ईंटें = 429

अध्यर्धास्तु चतस्त्रो द्वे मध्ये नकुलश्चतुर्भागः ॥ 24 ॥

अध्यर्धा ईंटें छः होती हैं (और) मध्य के $\frac{1}{4}$ भाग पर नकुल होता है। (24)

अश्मा नवमोऽग्नीध्रे ॥ 25 ॥

आग्निध्रीय (धिष्ण्या में) नौंवा पत्थर होता है। (25)

(आग्निध्रीय धिष्ण्या में एक पद भुजाओं की आठ ईंटें और इस नाप का पत्थर मध्य में रखते हैं।)

होत्रीयमतः सँवक्ष्यामो। ऽँसश्रोण्योः पद्याश्रया नकुलका बहिस्तिसृषु दिक्ष्वन्तश्चतुर्दश पदकचतुर्थाः स.........यः प्रतिदिशमष्टौ पद्या दिक्षु विदिक्षु ॥ 26 ॥

होतृ की धिष्ण्या अब कहता हूँ। अंस और श्रोणी में पद्या (एक पाद वर्ग की) ईंटें रखते हैं। बाहर तीन दिशाओं की ओर नकुल होते हैं। मध्य में चौथाई पद लम्बी 14 (या 16?) पद्या ईंटें और हर एक दिशा की तरफ एक ऐसी आठ पद्या ईंटें होती हैं। (26)

[संभाव्यतः जिन शब्दों को लिखा नहीं हैं वे दो ज्यादा ईंटों सहित 14 ईंटें रखें इस अर्थ के होंगे। इसी से मध्य की सोलह ईंटों का हिसाब बराबर आता है। सूत्र 10.2.2.10 में होतृ धिष्ण्या की ईंटों की व्यवस्था विभिन्न दी है।]

ब्राह्मणाछँसे दश चैका स्युर्मध्ये द्वौ द्वौ चतुर्थ्यौ नकुलकश्च ॥ 27 ॥

ब्राह्मणाछंसि के (धिष्ण्या में) दस और एक (कुल ग्यारह) ईंटें होती हैं। मध्य में दो-दो चतुर्थी ईंटें और एक नकुल होता है। (27)

[सूत्र 10.2.2.10 देखिये]

अभितस्तिस्त्रः पद्या द्वे मध्येऽध्यर्धे शिष्टेष्वष्टौ ॥ 28 ॥

(इतर धिष्ण्याओं में) दोनों ओर तीन-तीन पद्या ईंटें और मध्य में दो अध्यर्धा ईंटें ऐसी कुल आठ ईंटें होती हैं। (28)

अध्यर्धाः षणमार्जालीये। ऽसं मार्जालीयँ स्याद् दक्षिणपाश्र्वेन शामित्रं चात्वालस्य च पश्चादवभृथकल्पे ऽप्येवं पदमेकतस्त्रिपदस्तिस्रो-ऽतिरिक्तेष्विति ॥ 29 ॥

मार्जालीय (धिष्ण्या में) छः अध्यर्धा ईंटें होती हैं। मार्जालीय (का स्थान) वेदि के अंस के पास (या वेदि के दक्षिण की ओर?) होता है। चात्वाल के दक्षिण पार्श्व में शामित्र (धिष्ण्या) होती है। अवभृतकल्प में भी एक भुजा एक पद लम्बी, दूसरी तीन पद लम्बाई की और तीन अतिरिक्त होती हैं। (29)
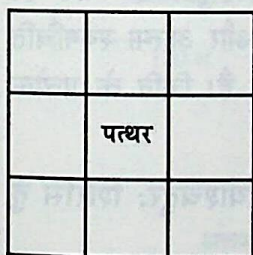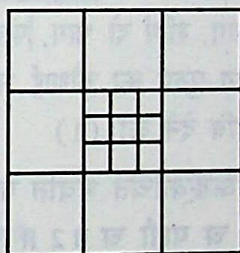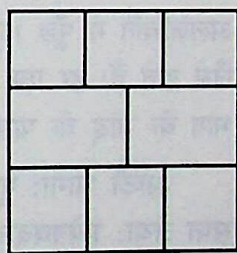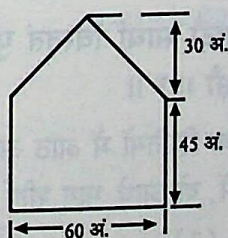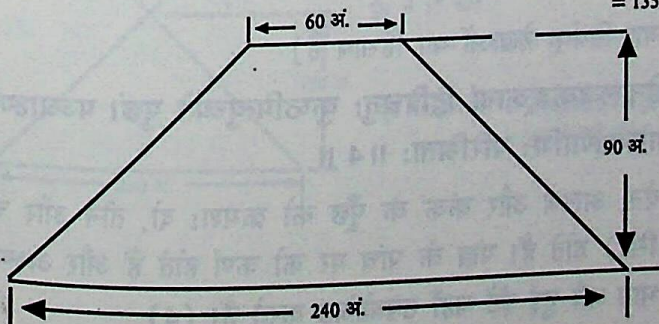
(सूत्र 23 में अग्निचिति अमन्त्र और अतिरिक्त इनका और 'अवभृथ कल्प में भी.........' इत्यादि का कोई संबंध होगा मगर वह समझ में आता नहीं।)

10.3.5

सप्तत्रिंशत्सार्धाः पक्षः सव्यश्च शिरसि चत्वारः षड्विंशकस्तथात्मा श्येने पञ्चदशकं पुछं। सप्तदशकं पुछं द्वयँ शिरस्यात्मपक्षयोः क्लृप्तमलजस्य। भागसंधान्तयज्ञैः प्रतिमा नरचतुर्थे ॥ 1 ॥

श्येनचिति का पंख 37½ भागों का है और बायाँ (उत्तर का) पंख भी, शीर्ष चार भाग तथा आत्मा 26 भाग और पुँछ 15 भाग हैं। अलजचिति में पूँछ 17 भाग, शीर्ष दो भाग, पंख और आत्मा श्येनचिति जैसे होते हैं। हर एक भाग पुरुष का चौथाई भाग है। चिति के प्रत्येक भाग के जोड़ के पास हवि देने की। (1)

अष्टौ भागाः पुछं कङ्कचिते भवति पादयोश्चतुरः शिरसि तु सप्त ज्ञेयाः श्येनवदात्मा च पक्षौ च ॥ 2 ॥

कंकचिति में पूँछ आठ भाग, पांव चार भाग, शीर्ष 7 भाग और आत्मा और पंख श्येनचिति जैसे होते हैं। (2)

श्येनालजकङ्कानामष्टौ सार्धा विस्तृतं पुछं चत्वारो त्मा द्वौ च शिरः सर्वेषां पञ्चकौ पक्षौ ॥ 3 ॥

श्येन, अलज और कंक चितियों में आठ आधे भाग पूँछ की चौड़ाई है, चार आधे भाग आत्मा में, दो आधे भाग शीर्ष में और पांच आधे भाग पंखों में सब ओर होते है। (3)

[यह तिर्यक् रेखाओं का हिसाब है]

श्येनालजकङ्कानां द्वित्रिचतुः कुष्ठमित्युच्यते पुछं। पञ्चाक्ष्णाः पक्षपात्रास्त्वक्ष्णाभिः परिश्रिताः ॥ 4 ॥

श्येन, अलज और कंक के पूँछ को क्रमशः दो, तीन और चार कोण (सिरे) होते हैं। पंख के पांच पर को कर्ण होते हैं और अक्ष्णया पर दो भाग की हुई ईंटें यहाँ उपयोजित करते हैं। (4)
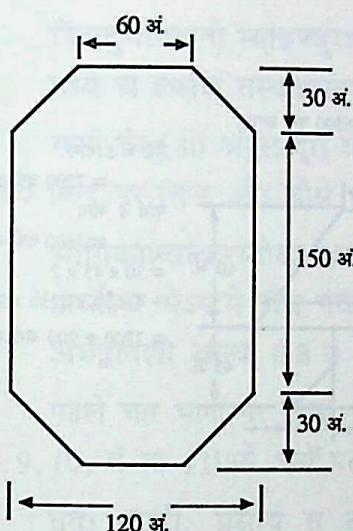
60 अं.
30 अं.
150 अं.
30 अं.
120 अं.
श्येनचिति
आत्मा - 26 भाग
= 30x30x26 = 23400 वर्ग अंगुल
½ (60 + 120) x 30 x 2 + 150 x 120
= 5400 + 18000
= 23400 वर्ग अंगुल
आत्मा + 2 (पंख) + पूँछ + शीर्ष
26+2 x 37.5 + 15 + 4 = 120 भाग.
120 x 900 = 108000 वर्ग अंगुल
= 7½ वर्ग पुरुष, चिति का क्षेत्रफल

अलज चिति
30 अं.
15
60 अं.
आत्मा = 26 भाग, पंख = 2 x 37.5 भाग
शीर्ष = 2 भाग, = 2 x 30 x 30 = 1800 वर्ग अंगुल
60 x 15 + ½ (60x30) = 1800
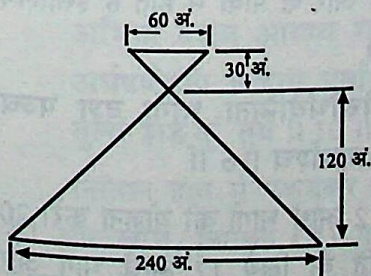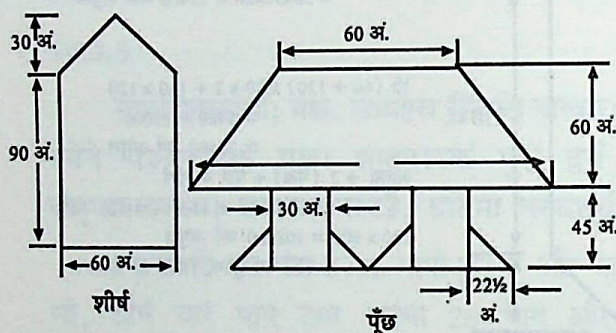
60 अं.
30 अं.
120 अं.
240 अं.
पूँछ = 17 भाग
= 17 x 30 x 30 = 15300
पूँछ का क्षेत्रफल = ½ (60x30)+½ (240x120)
= 15300 वर्ग अंगुल

पुछे द्वौ भागावानयेत्पुछमलजेन त्रिकुष्ठवत् त्रीन् श्येनपुछाच्छिरसि कङ्के पादौ तु हरेत् ॥ 5 ॥

अलजचिति के पूँछ में दो भागों का योग करें, पूँछ त्रिभुजाकार है। श्येन के पूँछ से तीन भाग घटाकार वे कंक के शीर्ष में डालतें हैं और श्येन के पूँछ से तीन भाग घटाकर वे कंक के पांवों में डालते हैं। (5)

[अलजचिति का पूँछ दो त्रिभुजों से बनता है। दोनों त्रिभुजों के शीर्ष-बिन्दु एक ही होते हैं इसीलिए अलजचिति का पूँछ त्रिभुजाकार होता है। कंकचिति में दो कोण पूँछ में और दो पांवों में होते हैं इसीलिये कंकचिति का पूँछ चतुर्भुज कहते हैं।)

प्राचीर्द्वादश सार्धा विँशतिरुदीचीर्भवेन्मिता भागा दश पञ्च कङ्कचितावलज उदीचीस्त्रयोदश सार्धाश्च ॥ 6 ॥

पूर्व दिशा की तरफ जाने वाले 12 आधे भागों की योजना करें। 20 आधे भाग उत्तर की तरफ, कंकचिति के लिये 12 आधे भाग और अलजचिति के लिये 13 आधे भाग उत्तर की ओर जाने वाले होते हैं। (6)

त्रिचतुर्भागमानी स्याद्रज्जुरर्ध त्रयोदशी।
मध्ये च लक्षणं तस्याश्चतुर्भागैर्निराञ्छनम् ॥ 7 ॥

रस्सी के (30 अंगुल दूरी के) 12 या 12½ भाग करें। रस्सी के मध्य बिन्दु पर चिन्ह और चौथे भाग पर निरांछन है। (7)

भागिकाश्चत्वारस्तोदा अर्धषष्ठेऽपरः स्मृतः।
अर्धाश्च मेऽष्टमे चैव नवमे दशमेऽपरः।
अर्धद्वादशो वान्यः ॥ 8 ॥

पहले चार भागों पर चिन्ह लगायें। बाद में 5½वें भाग पर तदनंतर 8, 9, 10, वें या 11½वें भाग पर चिन्ह लगायें (8)

ततः प्राचीः प्रसार्य तु तस्या निखानयेच्छङ्कुम्। पाशयो-र्मध्यमेऽष्टमे। चतुर्थे वाहत्य पाशम्। आसज्य मध्ये निराञ्छनम् ॥ 9 ॥

इसके बाद प्राची पर रस्सी फैलावें। इसके दोनों सिरो पर (क और ख) मध्य बिन्दु के चिन्ह पर (ग), आठवें (घ) और चौथे (च) चिन्हों पर खुंटियाँ ठोकें। रस्सी का पूर्व सिर चौथे चिन्ह के (च खुंटि को) बाँधें। (आठवां भाग घ पर है ही।) निरांछन का चिन्ह मध्य में आता है। (9)

[रस्सी च से घ तक आठ भाग है और निरांछन चौथे भाग पर होने से मध्य में है।]

निरायम्य विनुद्योन्मुच्य मध्यमात्।
अभितो दशम आयम्य भागा द्विकचतुष्काः।
अर्धषष्ठेऽपि चाहत्य पूर्वादेवँ समाचरेत्।
तुल्यं शङ्कुं तुर्ये ॥ 10 ॥

निरांछन हाथ में पकड़कर आठ भागों की (लम्बी) रस्सी दक्षिण की और खींचें, निरांछन (न) पर आता है। पहला और आठवां चिन्ह क्रमशः खुंटियाँ (च) और (घ) से छुड़ाकर ये दोनों भाग (ग) खुंटि को बाँधें और फिर (न) चिन्ह से रस्सी तानें, चिन्ह (छ) प्राप्त होता है। ग छ यह अंतर चार भाग याने 120 अंगुल है। यह आत्मा की चौड़ाई हुई। ग छ

के बीच में मध्य बिन्दु पर चिन्ह ठ करें।) मध्य चिन्ह के (ग) खुंटि से रस्सी निकाल लें। बाद में 8 भाग रस्सी दसवें भाग के दोनों तरफ खींचें। (रस्सी का पूर्व सिर घ और आठवाँ चिन्ह ख खुंटियों को बाँधकर निरांछन से रस्सी दक्षिण की तरफ खींचें, चिन्ह न मिलता है। बाद में रस्सी का पूर्व सिर और आठवाँ चिन्ह दोनों ज खुंटि को बाँधें और निरांछन से रस्सी दक्षिण की तरफ खींचें, चिन्ह झ प्राप्त होता है।) (ज झ) पर रस्सी का छठा चिन्ह ज पर आयेगा ऐसी रस्सी फैलावें। दूसरे (याने आठवें) चिन्ह पर चिन्ह ट करें। बाद में चौथे चिन्ह पर (याने 12वें चिन्ह पर) खुंटि ट ठोकें। (इसी से पूँछ के पशिचम बाजू का मध्य बिन्दू और दक्षिण श्रोणी मिलती है।) ट से 5½ भाग लम्बी रस्सी से आत्मा का पशिचम बाजू का मध्य बिन्दू ठ जोड़े। (ट ठ अंतर 170 अंगुल है, इसीलिये रस्सी 5½ भाग याने 165 अंगुल नहीं बल्कि 170 अंगुल लम्बी लेनी चहिये।) ज ट पर फैलायी हुई रस्सी के चौथे चिन्ह पर 'ड' पर खुंटि ठोकें। (ड ठ जोड़ें।)

ततः प्राचीः प्रसार्य तु अर्धषष्ठकयोः पाशौ।
शङ्कू अर्धाष्टमेऽष्टमे। प्रगृह्य पश्चिमशङ्कू।
द्विकयोर्वोत्सृजेत्ततः ॥ 11 ॥

बाद में रस्सी का पशिचम सिर (ढ) पर रखकर वह प्राची पर फैलावें। 5½ भाग पर चिन्ह (थ) करें और आठवें भाग पर (ठ) खुंटि ठोकें। बाद में रस्सी दूसरे भाग तक बढाइये, चिन्ह (त) प्राप्त होगा। (ऐसा ही रस्सी का पशिचम सिर झ पर रखकर झ छ पर रस्सी पूर्व की तरफ फैलावें और रेखा झ द का विन्यास करें।) (11)

[रस्सी का पशिचम सिर ढ पर और पूर्व का सिर क पर रखकर 10½वें भाग का चिन्ह हाथ में पकड़कर रस्सी दक्षिण पूर्व की तरफ खींचें, चिन्ह त मिलता है। इसी रीति से चिन्ह द प्राप्त करें। आठवें चिन्ह पर खुंटि छ ठोकें।]

चतुर्थ नवमौ शङ्कू प्रवृहेदन्तिमावुभौ ॥ 12 ॥

(ढ त) पर फैलाई हुई रस्सी के नौवें (ध) और चौथे चिन्ह पर खुंटि ठोकें। इनके पास के चिन्हों पर भी (क्रमशः आठवें और तीसरे चिन्हों पर) शंकु ठोकें। (12)

(इस रीति से चिन्ह ध और प प्राप्त होते हैं।)

अष्टमे पाशमासज्य अष्टमेनैव निग्रहः।
भागे भागे ततः शङ्कू तयोः ॥ 13 ॥

रस्सी का आठवाँ चिन्ह आठवें चिन्ह को (ठ) बाँधें और बाद में प्रत्येक चिन्ह पर खुंटि ठोकें। (13)

[ठ पर आठवां चिन्ह बाँधने (रखने) के बाद नौंवां चिन्ह ध पर आयेगा। वहाँ से दसवें ब और ग्यारहवें फ चिन्ह पर खुंटियाँ ठोकें। ब छ जोड़ें। इस रीति से आत्मा के चारो ओर के सिरों में तिर्यक् रेखाऐं खीचें।]

अष्टमे पाशमासज्य आदिशङ्कौ निगृह्य च।
दशमे शङ्कूमाहन्यात्पुछार्धे अलजस्य तु ॥ 14 ॥

आठवें चिन्ह पर (ठ) रस्सी का आठवाँ चिन्ह रखें और रस्सी (छठा चिन्ह) प्रथम खुंटि को (ग) बाँधें। अलजचिति के पूँछ के लिए रस्सी के दसवें भाग पर (भ) खुंटि ठोकें। (14) .

.........स्यार्धाष्टमे शङ्कुः कङ्कस्य दर्शने स्मृतः ॥ 15 ॥

.........आठवें (8½वें) चिन्ह पर कंक (चिति) के पूँछ के लिये खुंटि ठोकें। (15)

त्रिके पाशँ समासज्य दशकेन निगृह्य च।
एताभ्यामेव तोदाभ्याँ शङ्कू देयौ तथोत्तरौ ॥ 16 ॥

तीसरे चिन्ह पर (छ) रस्सी रखें। इस चिन्ह पर और दसवें चिन्ह पर (स) खुंटियाँ ठोकें। यही रीति से उत्तर दिशा की तरफ (और) दो खुंटियाँ ठोकें। (16)

[ग ठ न छ खुंटियों से होकर रस्सी छ श स ह पर फैलावें। श चिन्ह छ से एक भाग और ह चिन्ह स से एक भाग दूरी पर आता है।]

अर्धद्वादशमे पाशस्त्रिको निग्रहणो भवेत्।

आदिपाशे द्विके चैव शङ्कू देयौ तथोत्तरौ ॥ 17 ॥

रस्सी का एक सिर (छ) खुंटि को बाँधे और 11½वाँ चिन्ह (ह) खुंटि को बाँधें। रस्सी तीसरे चिन्ह से पूर्व की तरफ खींचें, चिन्ह अ प्राप्त होता है। इस चिन्ह पर और ह से दो भाग दूरी पर (आ) खुंटियाँ ठोकें। यही रीति से उत्तर के (पंख में) दो खुंटियाँ ठोकें। (17)

[त्रिभुज छ ह अ यह समकोण त्रिभुज है। छ ह = 8 भाग, ह अ = 3 भाग और छ अ = 8 ½ भाग। $8^2 + 3^2 \doteqdot 8\frac{1}{2}^2$, $64 + 9 = 73$ और $8\frac{1}{2}^2 = 72\frac{1}{4}$ ।]

उत्तरे द्विकमासज्य दक्षिणँ समयोर्हरेत् ॥ 18 ॥

चिन्ह (स) को रस्सी का सिर बाँधकर पंख के उत्तर के भाग पर (याने खुंटि छ को) रस्सी का दूसरा चिन्ह बाँधें। (रस्सी की लम्बाई दस भाग है।) इसके मध्य बिन्दु से रस्सी दक्षिण की तरफ खींचें, चिन्ह (ल) प्राप्त होता है। (वहाँ खुंटि ठोकें।) (18)

[छ ल और स ल पांच-पांच भाग लम्बे हैं। कोण छ ल स समकोण है। दूरी छ स = 7 भाग। $5^2 + 5^2 \doteqdot 7^2$।)

चतुर्थे शंकुमाहन्याद् विपरीतँ समाचरेत्।
चतुर्थे तु तदर्थेन निगृह्य च......॥ 19 ॥

(द) चिन्ह पर रस्सी रखकर चौथे चिन्ह पर (र) खुंटि ठोकें। (और र प इ समकोण त्रिभुज खींचें। त्रिभुज छ ह अ के) उलटा यह समकोण त्रिभुज होता है। इसके लिये रस्सी चौथे चिन्ह पर (र) बाँधें......। (19)

[इ और ओ पर खुंटियाँ ठोकें। बिन्दू ल जैसा बिन्दु 'ई' खींचें। इ ओ जोड़ें। यही रीति से उत्तर पंख का विन्यास करें।]

इति श्येनस्य रज्जुर्द्वादशलक्षणा ॥ 20 ॥

श्येनचिति के विन्यास की यह बारह चिन्हों की रस्सी (की जानकारी) समाप्त हुई। (20)

चत्वारि करणान्येषां त्रिचतुर्थेन कारयेत्।
नवभागा अक्ष्णार्धाक्ष्णाः पञ्चकोणाः च भागशः ॥ 21 ॥

श्येनचिति का विन्यास
(सूत्र 10.3.5.10-20)

[फॉन खेल्डर (1963) से]
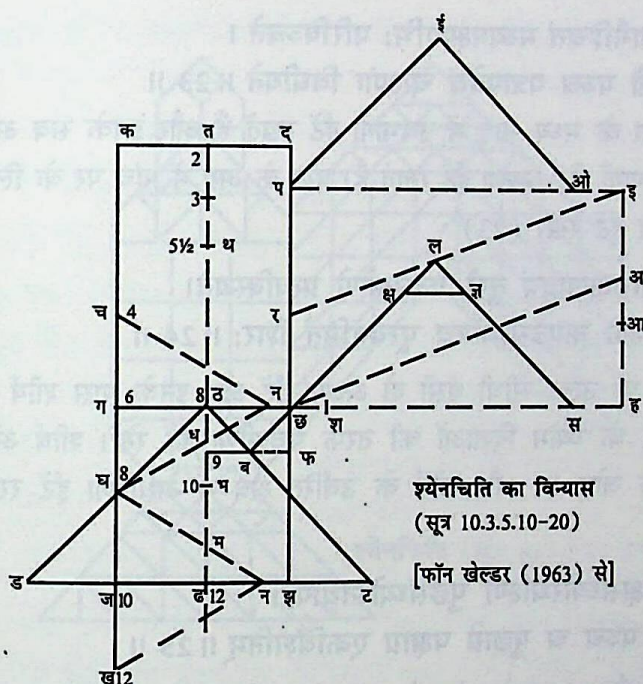
श्येनचिति चिनने के लिये चार प्रकार की ईंटें होती हैं। पुरुष के $\frac{1}{3}$ भाग और ¼ भागों के विभाग से नवभागा, अक्ष्णा, अर्धाक्ष्णा और पंचकोणा ईंटें बनाईये। (21)

[नवभागा ईंटें = 40 x 40 अंगुल, अक्ष्णा = 30 x 30 x 42½ अंगुल, अर्धाक्ष्णा = 21¼ x 21¼ x 30 अंगुल, पंचकोणा = 21¼ x 21¼ x15x30x15 अंगुल।]

प्राचीने पञ्चकोणे द्वे अथार्धाक्ष्णाद्वयं न्यसेत्।
अँसाग्रयोरथैकैका एवं पक्षविपक्षयोः ॥ 22 ॥

(शीर्ष में) पूर्व की तरफ दो पंचकोणा और दो अर्धाक्ष्णा ईंटें रखें। अंस के अग्र में एक-एक (याने हर एक अंस में एक पंचकोणा और एक अर्धाक्ष्णा) और पंख के बांक में एक (पंचकोणा और अर्धाक्ष्णा) ईंटें रखें। (22)

नवभागैश्चितं मध्यमक्ष्णाभिः परिषिञ्चते ।
पक्षाग्रे पञ्च पत्राण्येवं चाक्ष्णा विधीयते ॥ 23 ॥

आत्मा के मध्य भाग में नवभागा ईंटें रखतें हैं और इनके सब ओर (तिर्यक् भागों में) अक्ष्णा ईंटें रखते हैं। पंख के अग्र में पांच पर के लिए भी अक्ष्णा ईंटें रखें। (23)

व्यत्यासाक्ष्णाद्वयं तुन्दे पञ्चकोणे प्रत्यक्स्थिते।
अर्धाक्ष्णे कण्ठसंध्योश्च पूरयेदमितँ शिरः ॥ 24 ॥

उदर पर उलट सीधी ऐसी दो अक्ष्णा ईंटें और इनके पास शीर्ष में एक दूसरे के व्योम दिशाओं की तरफ पंचकोणा ईंटें रखें। शीर्ष और आत्मा के जोड़ पर और शीर्ष के उर्वरित क्षेत्र में अर्धाक्ष्णा ईंटें रखें। (24)

द्वे पक्षसंध्योरर्धाक्ष्णे पुछसंध्योस्तथापरे।
दश पञ्च च पुछाग्रे पक्षाग्र एकविँशतिम् ॥ 25 ॥

पंख और आत्मा के जोड़ के पास दो अर्धाक्ष्णा ईंटें और पश्चिम की तरफ पूँछ और आत्मा के जोड़ के पास पूँछ के आगे 15 और प्रत्येक पंख के आगे, बांक के पास 21 अर्धाक्ष्णा ईंटें रखें। (25)

औपमाने चयने चैषाँ व्यत्यासे करणेषु च।
रज्ज्वाश्चावपनँ ह्रासो श्येनसिद्धिरिति स्थितिः ॥ 26 ॥

इस रीति से ईंटों की व्यवस्था करें, ईंटों के प्रकार बदल कर, वे व्योम पद्धति में रखकर, रस्सी की लम्बाई कम या अधिक करके श्येनचिति का निमार्ण करें ऐसा नियम है। (26)

अवक्रपक्षमलजं च पूर्वपक्षे तथायुतम्।
मध्यात्प्रसिद्धं पुछँ श्येने दाम्ना प्रसिध्यत इति ॥ 27 ॥

अलजचिति के पंख बांकदार नहीं होते (उन्हें नोक नहीं होता) परन्तु पंख के पूर्व की तरफ बांक (नोक) होता है। अलजचिति की पूँछ मध्य भाग में श्येनचिति के पूँछ के मान से संकीर्ण होती है और बाद में, (पश्चिम की तरफ) वह बड़ी होती है। ॥ 27 ॥
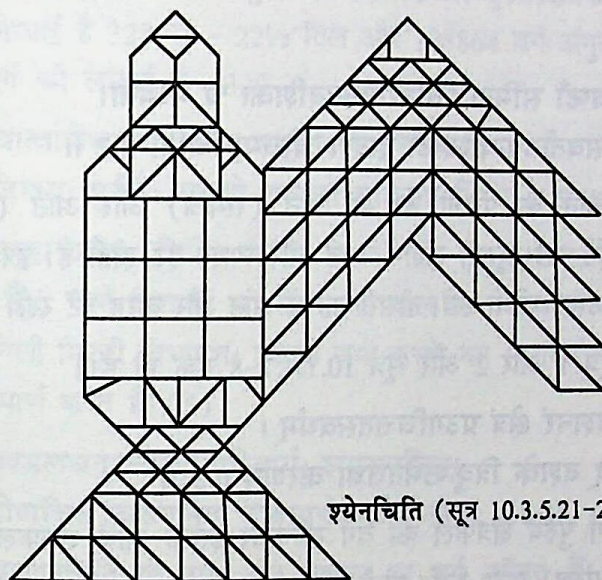
श्येनचिति (सूत्र 10.3.5.21-25)

नवमात्प्रग्भागे शङ्कू तुरीयस्य करणम् ।
अलजे पक्षार्धमवक्रताध्देयवं भवेत् ॥ 28 ॥

पूर्व के चिन्ह से (ल) नौवें भाग पर दो खुंटियाँ (क्ष और ज्ञ) ठोकें। चौथाई ईंट (क्ष ल ज्ञ पर) रखें। ऐसा अलजचिति के पंख का आधा (पश्चिम का) भाग बांकदार नहीं होता। ॥ 28 ॥

[अर्धाक्ष्णा ईंट प्रथमी ईंट के चौथाई भाग की होती है, इसका क्षेत्रफल प्रथमी ईंट के (30x30 अंगुल) क्षेत्रफल का चौथाई भाग (15x15x $22\frac{1}{4}$ अंगुल) होता है।]

10.3.6

पुरुषस्य तृतीयपञ्चमौ भागौ तत्करणं पुनश्चितेः।
तस्यार्धमथापरं भवेत् त्रिचितिकमग्निचितिश्चेत् ॥ 1 ॥

अग्निचिति के लिये पुरुष (नाप) के $\frac{1}{3}$ और $\frac{1}{5}$ (40 x 24 अंगुल) लम्बी, चौड़ी ईंटें इस्तेमाल करें। इस अग्निचिति में ईंटों के तीन तह होंगी

तो दूसरी तह में (पहली और तीसरी तह से ईंटों की व्यवस्था) भिन्न होती है। (1)

अष्टावष्टौ संमिता चितिरष्टैकादशिका च मध्यमा।
व्यत्यासवतीरुपन्यसेदष्टौ द्वादश चोत्तमा चितिः ॥ 2 ॥

अग्निचिति के पहली तह में आठ (समन्त्र) और आठ (मन्त्र विरहित) ईंटें रखें। दूसरी तह में आठ और ग्यारह ईंटें होती हैं। हर एक तह में ईंटें उलट सीधी रखें। तीसरी तह में आठ और बारह ईंटें रखें। (2)

[ये सूत्र 1 और 2 और सूत्र 10.1.4.7-8 एक ही हैं।]

पञ्चदशनरं क्षेत्रं प्रउगचित्ततस्त्वर्धम् ।
मध्याद् दशके त्रिकुष्ठमेतत्तथा करणम् ॥ 3 ॥

15 वर्ग पुरुष क्षेत्रफल का वर्ग खींचकर इसके आधे क्षेत्रफल की (7½ वर्ग पुरुष) प्रउग चिति होती है। पूर्व बाजु का मध्य बिन्दु याने दस अरत्नि दूरी का चिन्ह (याने 240 अंगुल दूरी का चिन्ह यह अंतर वस्तुतः 232.5 अंगुल लेना चहिये।) पश्चिम के दोनों सिरों को रेखाओं से जोड़े। इसी से) त्रिभुजाकृति प्राप्त होगी। इस चिति की ईंटें त्रिभुजाकार होती हैं। (3)

[प्रउगचिति का आधार 465 अंगुल लम्बा और दोनों समबाहु 520 अंगुल होते हैं। आपस्तंब शुल्बसूत्र 12.6-9 देखिये।]

बाव्होरेकविँश उभकरणे तथार्धोऽन्यश्च।
अँसश्रोण्योश्छेदस्तस्योभयतो भवेत् प्रउगः ॥ 4 ॥

21 वर्ग द्विबाहु क्षेत्रफल का वर्ग खींचकर इसके जैसा दूसरा वर्ग उसके संपर्क में (पश्चिम की तरफ) रखें। इस आयत के दोनों अंस और श्रोणी निकाल देने पर उभयतः प्रउग प्राप्त होता है। (4)

[उभयतः प्रउग चिति का क्षेत्रफल 7½ वर्ग पुरुष है। एक बाहू = 36 अंगुल सूत्र 10.3.1.9 द्विबाहू = 72 अंगुल, 21 वर्ग द्विबाहू $= 21 \times (72)^2 = 108864$ वर्ग अंगुल। 7½ वर्ग पुरुष = 108000 वर्ग

अंगुल। गलती 864 वर्ग अंगुलों की है। 7½ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल के वर्ग की लम्बाई है 328 अं. - 22½ तिल और 108864 वर्ग अंगुल क्षेत्रफल के वर्ग की लम्बाई है = 329 अं. - 32 तिल।]

चात्वालेभ्यश्चतुर्भ्यस्तु समूह्योऽग्निरनिष्टकः।
दिग्भ्यः पुरीषैः समूह्यो भागशो युक्तितो विधिः ॥ 5 ॥

समुह्य अग्नि (चिति) ईंटों से चिनते नहीं। (परन्तु मिट्टी से निर्मित करते हैं।) चारों दिशाओं की तरफ होने वाले चार चात्वालों से (गड्ढों से) गिली मिट्टी विभागशः इकट्ठे जमा करके वह (अग्निचिति) युक्ति से निमार्ण करते हैं। (5)

मण्डलचतुरस्त्रोऽद्य परिवार्यः श्मशानचित्।
द्रोणचित् त्सरुमानेषां दशभागो भवेत् त्सरूः ॥ 6 ॥

श्मशानचिति के सब ओर मण्डल या वर्ग खींचते हैं। द्रोणचिति वर्गाकार होकर उसकी दंडी (त्सरु) इसके दसवें भाग की होती है। (6)

[अग्नि का क्षेत्रफल 1,08,000 वर्ग अंगुल। इसका $\frac{1}{10}$ भाग याने 10800 वर्ग अंगुल। यह दंडी बहुत बड़ी लगती है। बौधायन शुल्बसूत्र में। (सूत्र 6.8-9) दंडी 70x80 अंगुल (5600 वर्ग अंगुल) आयताकार कही है। दंडी का क्षेत्रफल आत्मा के क्षेत्रफल का $\frac{1}{10}$ भाग लिया तो आत्मा 98182 वर्ग अंगुल और दंडी 9818 वर्ग अंगुल आते हैं। दंडी (त्सरू) 109x90 अंगुल (9810 वर्ग अंगुल) होगी। आपस्तंब शुल्बसूत्र में (सूत्र 13.13) दंडी वर्गाकार है और इसका क्षेत्रफल द्रोण के क्षेत्रफल का $\frac{1}{10}$ भाग है।]

मण्डले चतुरस्त्रं तु कुर्याद गार्हपत्यवत्।
बाव्होर्विंशतिभागेन वारुणँ सार्धभेव तु ॥ 7 ॥

वर्गाकार द्रोणचिति से (समक्षेत्र) मण्डलाकार द्रोणचिति, गार्हपत्य अग्नि के (विन्यास के लिये) दिये हुए पद्धति से करें। (सूत्र 10.1.1.8) मण्डल में समायोजित (बड़े से बड़ा) वर्ग खींचकर इसके $\frac{1}{20}$ वर्ग द्विबाहू भाग करें। वरुण के लिये आधा भाग होता है (?) (7)

[वर्ग द्विबाहू = $(2 \times 36)^2 = 5184$ वर्ग अंगुल। $\frac{1}{20} \times 5184 =$ 259.2 वर्ग अंगुल। इस वर्ग की भुजा 16 अंगुल लम्बी है। ऐसे 20 वर्गों के योग का वर्ग निकालें और इस वर्ग परिगत मण्डल खींचें। 7½ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल से इस मण्डल का क्षेत्रफल घटाकर शेष क्षेत्रफल की द्रोणचिति की दंडी होती है।]

प्रसिद्धं दशधा कुर्याद् बहिरन्तश्च युक्तितः।
त्रिकुष्ठश्च विषाणः स्यात् संधौ व्यत्यास एव सः ॥ 8 ॥

(वर्ग और परिगत मण्डल खींचने के बाद) उनके अन्दर और बाहर युक्ति से दस भाग करे। (26 अंगुल दूरी पर रेखायें निकाल कर) सिंग त्रिभुजाकार होकर दंडी और द्रोण के जोड़ पर वह उलट रखतें हैं। (8)

[अग्निचिति का क्षेत्रफल = 7½ वर्ग पुरुष = 108000 वर्ग अंगुल। मण्डल का क्षेत्रफल = 105432 वर्ग अंगुल। 20 वर्गों का क्षेत्रफल = 5184 x 20 = 103680 वर्ग अंगुल। दंडी का क्षेत्रफल 108000 - 105432 = 2568 वर्ग अंगुल। 50 x 50 अंगुल का वर्ग प्राप्त होता है।)

चतुरस्त्रस्य करणं बाव्होर्द्वात्रिंशद् भागिकम्।
चतुरस्त्रमथाध्यर्धं ताभ्यां गायत्रवद् विधिः ॥ 9 ॥

वर्गाकार द्रोणचिति के लिये द्विबाहू के वर्ग के $\frac{1}{32}$ क्षेत्रफल की ईंटें उपयोजित करें। इनकी अध्यर्धा ईंटें गायत्री के विधि में जैसी कही हैं वैसी करें। (9)

[एक वर्ग द्विबाहू = 5184 वर्ग अंगुल। ईंट का क्षेत्रफल = $\frac{1}{32}$ x 5184 = 162 वर्ग अंगुल। वर्ग ईंटें 13 x 13 अंगुलों की और इनकी अध्यर्धा ईंटें 19 ½ x 13 अंगुलों की। वर्गाकार द्रोण के भुजा की लम्बाई 313.3 अंगुल और क्षेत्रफल 98182 वर्ग अंगुल हैं। 306 वर्गाकार और 200 अध्यर्धा ईंटें आत्मा की एक तह में समायोजित होती है। दंडी 109 x 90 अंगुल है। इसमें 30 वर्गाकार और 20 अध्यर्धा ईंटें रखें।]

साहस्त्रस्य करणं बाव्होः पञ्चदशभागं चतुरस्त्रम्।
अध्यर्धास्तु ततः स्युर्द्विशताश्चितयः स्मृताः ॥ 10 ॥

हजार ईंटों की (याने हर एक तह में दो सौ ईंटों की) वर्ग द्रोणचिति निर्माण करने की हो तो वर्ग द्विबाहू के $\frac{1}{15}$ (क्षेत्रफल की) वर्गाकार ईंटें और इनकी अध्यर्धा ईंटें इस्तेमाल करें। (10)

[एक वर्ग द्विबाहू = 5184 वर्ग अंगुल। वर्ग ईंट का क्षेत्रफल = $\frac{1}{15}$ (5184) = 345.6 वर्ग अंगुल। वर्ग ईंटें 18½ x18½ अंगुल और अध्यर्धा ईंटें 27¾ x18½ अंगुलों की होती हैं। इन नापों की ईंटें दो सौ से भी अधिक लगती हैं। केवल अध्यर्धा ईंटें लेने पर भी दो सौ से अधिक ईंटें चहिए। चिति का क्षेत्रफल = 108000 वर्ग अंगुल। दो सौ अध्यर्धा ईंटों का क्षेत्रफल = 200X27¾ x18½ = 102800 वर्ग अंगुल।)

पञ्च पञ्चाशतमध्यर्धास्तिस्रः पञ्चाशतं चतुरस्राः।
सहस्राच्छतं पक्षाः स्युरुषा सहस्रतमी ॥ 11 ॥

चिति में 250 अध्यर्धा ईंटें और 150 वर्ग ईंटें होती हैं। हजार ईंटों में सौ ईंटें पंखों में होती हैं और उषा (सिंग सूत्र 8) एक हजारवाँ भाग है। (11)

बाव्होरेकत्रिंशो भागः करणं चितिस्तथोत्तरयोः।
चतुरस्रानाँ साहस्रँ सवनिके व्यवास्यन्ति ॥ 12 ॥

एक वर्ग द्विबाहू क्षेत्रफल के $\frac{1}{31}$ क्षेत्रफल ईंटें ऊपर कहे अनुसार रखें। सोमयाग के वेदि पर इस आकार के हजार वर्ग समायोजित होते हैं। (12)

[एक वर्ग द्विबाहू = 5184 वर्ग अंगुल। एक वर्ग ईंट का क्षेत्रफल = $\frac{1}{31}$ x 5184 = 167.22 वर्ग अंगुल। ईंटें 13 x 13 अंगुल की हैं। ये ईंटें बहुत छोटी हैं। ऐसे हजार ईंटों से 7½ वर्ग क्षेत्रफल की अग्निचिति की पांच तह निर्माण कर नहीं सकते।]

अर्धैकादशपुरुषं घनं भवेद् भवेन्मण्डलँ रथचक्रं । नाभिररा विवरधा नेमिररेभ्यो यद्यतिरिक्तम् ॥ 13 ॥

रथचक्रचिति के मण्डल का क्षेत्रफल 10½ वर्ग पुरुष लें। इसमे (रथचक्र की) नाभि, अरा, इनमे होने वाली खाली जगह और नेमि

(इनके क्षेत्रफल) लिये गये हैं। जितना क्षेत्रफल शेष रहता है इतना अरा के लिये (या अरा में होने वाली खाली जगह का?) होता है। (13)

तदर्धाः पुरुषायामाः पुरुषाष्टभागविस्तृताः चतर्विँशतिः त्रिनरनायाः ॥ 14 ॥

वहाँ (12 अरा और 12 खाली जगह कुल) 24 एक पुरुष लम्बाई के और $\frac{1}{8}$ पुरुष चौडाई के होते हैं। उनका क्षेत्रफल तीन वर्ग पुरुष है। (14)

[120 अंगुल लम्बा और 15 अंगुल चौड़ा आयत है। ऐसे 24 आयतों का क्षेत्रफल है $1 \times \frac{1}{8} \times 24 = 3$ वर्ग पुरुष।]

विवरकरणमतः संप्रवक्ष्यामि। द्विसप्तमेन नेम्यस्त्रकरणं भवेदरस्याष्टभागेन वैकृतश्चतुर्विँशतिभागेन नाभ्यामन्तरमन्तरो ऽष्टमभागेन प्रउगवद् भवेत् ॥ 15 ॥

अब चिति में खाली जगह कैसी रखने की यह कहता हूँ। नेमि के पास, सिरो के पास पुरुष के $\frac{2}{7}$ भाग की बाजू चाहिये (नेमि के पास खाली जगह की चौड़ाई $\frac{2}{7}$ पुरुष = 34.2 अंगुल है) अरा के आठवें भाग से वैकृत(?) है। खाली जगह पुरुष के $\frac{1}{24}$ भाग से (5 अंगुल) नाभि में गई हुई है। इस नाभि के अन्दर गये हुए भाग का $\frac{1}{8}$ भाग त्रिभुजाकार होता है। (15)

[नाभि के वृत्त की त्रिज्या 55 अंगुल। नेमि के अंदर के वृत्त की त्रिज्या = 92+55 = 147 अंगुल। नेमि के बाहर के वृत्त की त्रिज्या 220 अंगुल। नेमि के अंदर के वृत्त की परिमिति 923 अंगुल है। अरा 12 और खाली जगह भी 12 हैं। नेमि के अंदर के वृत्त के पास खाली जगह की चौड़ाई 34.2 अंगुल है, इसीलिए 12 खाली जगह की चौड़ाई 12X34.2 = 410 अंगुल। अराओं की कुल चौड़ाई = 923-410 = 513 अंगुल। प्रत्येक अरा की नेमि के पास चौड़ाई = $\frac{513}{12}$ = 42.75 अंगुल।

नाभि के वृत्त की परिमिति = 345 अंगुल। वहाँ खाली जगह = 12X5 = 60 अंगुल। अराओं की नाभि के पास चौड़ाई = $\frac{345-60}{12}$

= 23.75 अंगुल। नाभि का वृत्त और नेमि का अंदर का वृत्त इनके बीच का अंतर 92 अंगुल है। प्रत्येक अरा की लम्बाई 92 अंगुल, नाभि के पास चौड़ाई 23¾ अंगुल और नेमि के पास चौड़ाई 42¾ अंगुल है। प्रत्येक खाली जगह 92 अंगुल लम्बी, नाभि के पास पांच अंगुल चौड़ी और नेमि के पास चौड़ाई 34.2 अंगुल है।]

द्वीष्टकाँ चिनुयान्नाभिं चतुर्भिश्चिनुयादरान्।
त्रिभिर्नेमिँ यथाभागँ। व्यत्यासः कूपवत्स्मृतः ॥ 16 ॥

नाभि दो ईंटों से और अरा चार ईंटों से चिनें। नेमि के तीन विभागों में ईंटें रखें। (दूसरी तह में) ईंटों की उलट सीधी व्यवस्था खाली जगह जैसी करें। (16)

[पहली तह में - नाभि में 2x12 = 24 ईंटें, अराओं में 4x12 = 48 ईंटें और नेमि में 36x3 = 108 ईंटें, ऐसी कुल 180 ईंटें होती हैं।

दूसरी तह में - नाभि में 2x12 = 24 ईंटें, अराओं में 5x12 = 60 ईंटें, नेमि में 8x12 = 96 ईंटें, ऐसी कुल 180 ईंटें रखते हैं। दूसरी और चौथी तह में अरा की ईंटें नेमि के अन्दर गई हुई ऐसी रखते हैं।]

विष्कम्भस्य चतुर्थेन नाभ्यास्तु विवरँ लिखेत्।
त्रिचत्वारिँशाङ्गुलां नेमिँ सार्धचतुरङ्गुलाम् ॥ 17 ॥

नाभि के मण्डल के ¼ भाग से नाभि के खाली जगह के लिए मण्डल खींचें और 49 अंगुल दूरी पर नेमि का मण्डल खींचें। (17)

[नाभि के बाहर के वृत्त की त्रिज्या 55 अंगुल है, तब व्यास 110 अंगुल। नाभि के अंदर के मण्डल का व्यास $\frac{110}{4}$ = 27½ अंगुल है। नेमि की चौड़ाई = 220-147 = 73 अंगुल है। इस चौड़ाई के 94 और 24 अंगुल चौड़ाई के दो विभाग करें। (एक को दो इस अनुपात से)।]

सिद्धमन्यद्यथा युक्तिश्चयने याश्च संपदः ॥ 18 ॥

अग्निचिति जैसी परंपरा हो वैसी और योग्य नापों की युक्ति से निर्माण करें। (18)

य इदमपि यथातथँ स्मृतिँ विधिँ यदाधीत्य मिमीते रौरवँ समवति खलु कृत्स्नसंमतो व्रजति च शुल्बकृताँ सलोकताम् ॥ 19 ॥

चिति का शुद्ध अभिन्यास, इसको चिनने का विधि (इत्यादि) परम्परा से पढ़कर जो इसका नाप लें सके वह रौरव (नरक) पार करके रस्सी
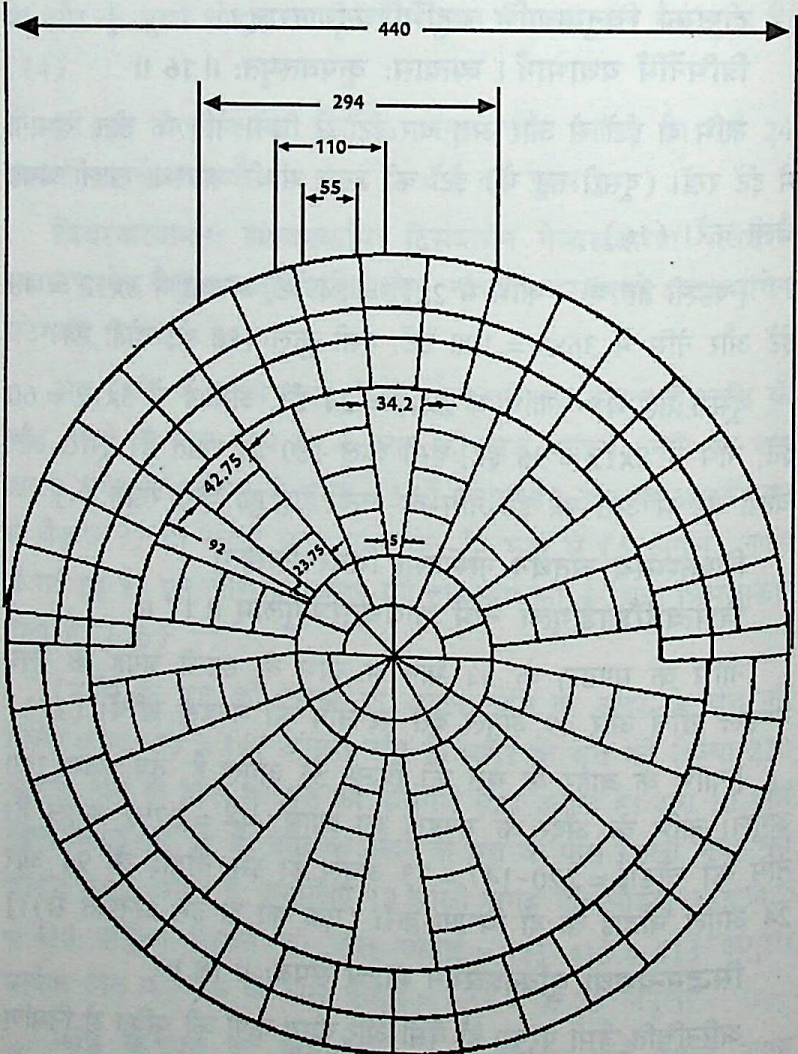
रथचक्रचिति (पहली और दूसरी तह)
(फॉन खेल्डर, 1963 से)

से अग्निचिति का विन्यास करने वाले लोग जिस लोक जाते हैं वहाँ सम्मानपूर्वक जाता है। (19)

10.3.7

रथचक्रस्य चित्यस्य संक्षेपोक्तस्य विष्णुना।
अथ धातुर्निविष्ठस्य त्रिगुणान्यं बहिर्बहिः।
लीयन्ते मण्डले यस्य सप्त सार्धा नरा बुधैः ॥ 1 ॥

रथचक्रचिति निमार्ण करने की दूसरी रीति संक्षेप से विष्णु ने कही थी। और इसका इसके अनुसार विन्यास धाताने (ब्रह्मदेव ने) किया था। यह रथचक्रचिति बाहर के बाजू सब ओर तिगुनी होती है। इसके वृत्त मे 7 ½ वर्ग पुरुष बुद्धिमान मनुष्यों ने बड़े चालाकी से डालें होते हैं। (1)

[चक्र का कुल क्षेत्र 7½ x 3 = 22½ वर्ग पुरुष है। ऊपर दिये हुए रथचक्रचिति के नापों मे $\sqrt{3}$ ने वृद्धि की है। त्रिकरणी प्राप्त करने की रीत बौधायन शुल्बसूत्र में (1.46) दी है।]

मुच्यन्ते विवरेष्वन्ये क्षेत्रादभ्यधिकास्त्रयः ॥ 2 ॥

खाली जगह का क्षेत्रफल (ऊपर दिये हुए रथचक्रचिति के क्षेत्र में) तीन वर्ग पुरुष अधिक डाल कर लेते हैं। (2)

[पहले रथचक्रचिति मे खाली जगह का क्षेत्रफल 1½ वर्ग पुरुष है। अब यहाँ खाली जगह का क्षेत्रफल 4½ वर्ग पुरुष होता है।]

तस्य चक्रविधानं तु। नेमिररेभ्यो विस्तरः।
मण्डलानां च विष्कंभः त्रिभागः करणानि च ॥ 3 ॥

इस चक्र का विधान (विन्यास की रीति) है, पहले चक्र के नेमि इतनी इस चक्र की अरा की चौड़ाई होती है। मण्डल का व्यास और ईंटें तीसरे भाग से लेते हैं। (3)

(पहले चक्र मे नेमि की चौड़ाई 73 अंगुल है। अब अरा की चौड़ाई 73 अंगुल होगी। (अरा की चौड़ाई पहले चक्र में 43 अंगुल थी अब 43 x $\sqrt{3}$ = 74 अंगुल है।) मण्डल का व्यास और ईंटें त्रिकरणी नापों से लेते है। मण्डल की त्रिज्या = 220 x $\sqrt{3}$ = 380 अंगुल, क्षेत्रफल = 22.7 वर्ग पुरुष।)

नरार्धेनाभिलिखेन्नाभिस्ततः प्रस्तारगोचरा।
अरेभ्योऽभ्यधिका नेमिस्त्रिषष्ठेनाक्षरागारम्।
त्रिँशतेन सविँशेन अधिकैश्चार्धपञ्चमैः।
मिमायाङ्गुलैर्वा मध्यं कुर्याद् विँशेन परिलेखनम् ॥ 4 ॥

नाभि आधा पुरुष (60 अंगुल) लिखें। वहाँ से दूसरी तह का कोई भाग अभिव्यक्त होता है। अरा की (चौड़ाई से) नेमि की (चौड़ाई) 63 अंगुल अधिक है। यह विष्णु का अक्षय्य स्थान है। अथवा 324 ½ अंगुल नाप कर इनके $\frac{1}{20}$ भाग से (16.2 अंगुल) मध्य में वृत्त खींचें। (4)

[पहले चक्र में नेमि की चौड़ाई 73 अंगुल है। इसीलिये इस चक्र में वह $73 x \sqrt{3} = 126$ अंगुल चहिये। ऊपर दिये हुए सूत्र से वह $73 + 63 = 136$ अंगुल होती है। अथवा पहले चक्र मे अरा की चौड़ाई 43 अंगुल है। तब नेमि की चौड़ाई $43+63 = 106$ अंगुल आती है। शायद दूसरी तह में अरा नेमि में 23 अंगुल अंदर जाती है, नेमि की चौड़ाई $= 126-23 = 103$ अंगुल होगी, फिर भी तीन अंगुलों का फर्क आता है।]

प्रथमे प्रस्तरे रथचक्रस्य श्रृणतेष्टकाः।
चतुर्भिरधिकँ वेत्थ चत्वारिँशच्छतत्रयम्॥ 5 ॥

रथचक्र के पहली तह में कितनी ईंटें होती हैं यह सुन लें। 344 ईंटें होती हैं ऐसा जाने। (5)

द्विताये ऽभ्यधिका यान्तु चतुर्विँशतिरिष्टकाः।
पंचकोणास्त्रिकोणाश्च नेम्यरेभ्यः च संधिषु ॥ 6 ॥

दूसरी तह में 24 ईंटें अधिक होती है (368 ईंटें)। पंचकोणा और त्रिकोणा ईंटें नेमि और अरा के जोड़ के पास रखते हैं। (6)

इष्टकानाँ सहस्रेण शतैः सप्तभिरेव च।
अष्टषष्ट्या च चक्रस्य चितयः पञ्च पूरिताः ॥ 7 ॥

रथचक्रचिति की पांच तह चिनने के लिये 1768 ईंटें लगती हैं। (7)

[$344x3+368x2 = 1032+736 = 1768$ ईंटें।]
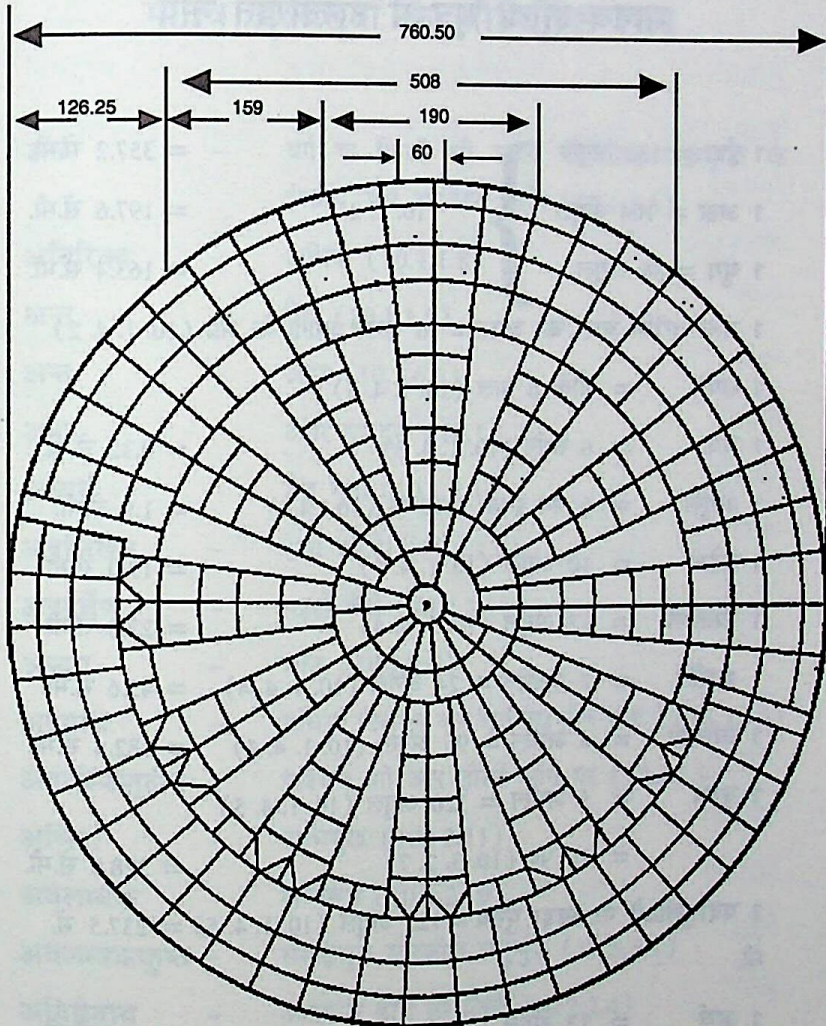
रथचक्रचितिः पहली और दूसरी तह (सूत्र 10.3.7.1–7)
(फॉन खेल्डर, (1963) से)

इति वैष्णवँ समाप्तम् ।

विष्णुयाग समाप्त हुआ ।

इति शुल्बसूत्रँ समाप्तम् ।

शुल्बसूत्र समाप्त हुआ ।

मानव शुल्ब सूत्र में उल्लेखित नाप

1 ईषा = 188 अंगुल	}	10. 1. 2. 1	= 357.2 सें.मी.
1 अक्ष = 104 अंगुल	}		= 197.6 सें.मी.
1 युग = 86 अंगुल	}		= 163.4 सें.मी.

1 वत्स तरीके बाल का व्यास = 6 कमल परागों के अग्र (10. 1. 4. 2)

1 सर्षप	= गौके 6 बाल (10. 1. 4. 3)	
1 यव	= 6 सर्षप (10. 1. 4. 3)	= 0.32 सें.मी.
1 अंगुल	= 6 यव इनके मोटाई से (10.1.4.4)	= 1.9 सें.मी.
1 प्रदेश	= 10 अंगुल (10. 1. 4. 4)	= 19.0 सें.मी.
1 वितस्ति	= 12 अंगुल (10. 1. 4. 4)	= 22.8 सें.मी.
1 अरत्नि	= 2 वितस्ति = 24 अंगुल (10. 1. 4. 4)	= 45.6 सें.मी.
1 व्यायाम	= 4 अरत्नि = 96 अंगुल (10. 1. 4. 4)	= 182.4 सें.मी.
1 पुरुष	= 5 अरत्नि = 120 अंगुल (10. 1. 4. 5)	
	= 10 पद (10. 3. 2. 7)	= 228.0 सें.मी.

1 पदांगुलीओं पर खड़ा पुरुष = 125 अंगुल (10. 1. 4. 5) = 237.5 सें. मी.

1 अर्व	= 12 अंगुल (10. 3. 1. 3)	= 11.4 सें.मी.
1 बाहू	= 36 अंगुल (10. 3. 1. 9)	= 68.4 सें.मी.
1 कृष्णल	= 3 यव (10. 1. 4. 6)	
1 निष्क	= 4 कृष्णल (10. 1. 4. 6)	

मानव शुल्बसूत्रों के भौमितिक शब्द

अंस	–	वर्ग या किसी भी सरल भौमितिक रेखाकृति के ईशान्य और आग्नेश्य सिरे। (10.1.1.5)
अतिरिक्त	–	अधिक (10.1.1.8)
अन्त	–	सिर (10.1.1.5)
अन्तः	–	अंदर (10.3.6.8)
अंतर	–	अंतर या दूरी (10.1.1.3)
अध्यर्ध	–	डेढ़ गुना (10.1.2.4)
अनुलिखेद्	–	रेखा खींचे। (10.1.1.5)
अनुपूर्वेण	–	पहले जैसे (10.2.2.14)
अप्यय	–	जोड़ (10.2.2.7)
अपप्रधि	–	प्रधियाँ निकाल कर वृत्त का शेष भाग (10.3.2.14)
अपरस्मिंस्तृतीये	–	पश्चिम की ओर तीसरे भाग पर (10.1.1.9)
अभितः	–	अभिमुख (102.2.11)
अवलम्बक	–	लम्बरूप (10.3.2.10)
अवलम्बककुष्ठ	–	समद्विभुज समकोण चतुर्भुज (10.3.4.1)
अविछेदाय	–	अलग न होने के लिये (10.2.2.4)
अक्ष्णया	–	कर्ण (10.1.1.8)
आगम	–	लम्बाई मे वृद्धि करना (10.1.1.11)
आयम्य	–	वृद्धि करके (10.3.1.7)
आयाम	–	लम्बाई (10.3.1.9)
आसज्य	–	बाँधकर (10.3.5.13)
उत्सृज्य	–	निकालकर (10.1.1.9)

उत्सेध - ऊँचाई (10.2.2.3)

उनम् - कम (10.3.3.1)

उन्मुच्य - छुडाकर (10.3.2.23)

उपहिताः - रखीं हुई (10.2.5.18)

उभौ - दोनों। (ओर) (10.3.2.26)

ऋते - सिवाय (10.3.2.20)

करण - ईंट का सांचा (10.2.5.1)

करणी - भुजा (10.3.2.12)

कर्ण - त्रिभुज का कर्ण (10.3.1.10)

कोटी - अर्धकर्ण (10.1.1.8)

गुणं - गुना (10.3.1.10)

गुण - रस्सी का बल (10.3.4.15)

घन - घनफल (10.3.1.9)

चतुःकुष्ठ - चतुर्भुज (10.3.2.21)

चतुरस्र - वर्ग (10.1.1.8)

छिद्य - विभाजन करके (10.3.2.14)

छेदन - विभाजन (10.1.3.6)

जानुदध्न - घुटने तक (10.2.2.15)

तदूतं - इसमे योग किए हुए (10.2.5.3)

तावत् - इतना (10.1.1.11)

तोद - चिन्ह (10.2.1.5)

तुरीय - एक चौथाई (10.1.1.9)

तिर्यङ्मानी - चौड़ाई की रेखा (10.1.3.5)

त्रिकुष्ठ - त्रिभुज (10.3.2.12)

त्रिभागेन	–	तीसरे भाग से (10.1.1.8)
दिक्कुष्ठा	–	मुख्य दिशाओं की तरफ सिरे होने वाली आकृति (10.1.2.6)
धनुः	–	वर्ग के परिगत वृत्त का वर्ग के बाहर आया हुआ भाग (10.3.2.15)
धर्मेण	–	नियम से (10.2.2.7)
निदध्यात्	–	रखे। (10.3.2.22)
निमाय	–	नापकर (10.1.1.9)
निराञ्छन	–	वर्ग के सिरो का समकोण में विन्यास
निरञ्छन	–	करने के लिये रस्सी पर किया हुआ चिन्ह (10.1.1.11)
निरायताम्	–	कम अधिक खींचने से जिसकी लम्बाई कम ज्यादा नहीं होती (ऐसी रस्सी) (10.1.1.1)
पञ्चाङ्ग्ि	–	पांच चिन्हों की रस्सी (10.2.1.14)
परिलेखयेत्	–	वृत्ताकार खींचे। (10.1.1.4)
परिमाण	–	नाप (10.2.5.3)
प्रतिदिशम्	–	प्रत्येक दिशा की ओर (10.2.210)
प्रतिष्ठाप्य	–	रखकर (10.1.1.5)
प्रमाणानि	–	नापें। (10.1.4.1)
प्रक्रम्य	–	जाकर (10.3.1.8)
प्रउग	–	त्रिभुज (10.3.6.3)
प्रसार्य	–	फैलाकर (10.3.5.9)
पाशवती	–	गाँठ होने वाली (रस्सी) (10.1.1.1)
प्राग्देशः	–	पूर्व का भाग (10.1.1.3)
प्राग्वंशः	–	पूर्व पश्चिम धरनि का मंडप (10.1.3.1)

प्रागायतः – पूर्वाभिमुख लम्बाई (10.3.1.3)

पार्श्वमानी – आयत की लम्बी बाजू तथा पार्श्व मे होने वाली बाजू (10.1.3.5)

पृष्ठ्या – पूर्व पश्चिम जाने वाली सभमिति अक्ष (10.1.1.1)

बहिः – बाहर (10.3.6.8)

भागधेयम् – भाग (10.1.3.7)

मध्यतः – मध्य से (10.1.1.8)

मिथुन – दो गुनी (10.3.2.20)

मिनोति – नापता है (10.1.3.4)

मीत्वा – नाप कर (10.1.1.4)

यावत् – जितना (10.1.1.11)

रज्जु – रस्सी (10.1.1.1)

राशि – गुना करना (10.3.1.9)

लक्षण – चिन्ह (10.1.1.9)

लुम्पेत् – निकाल देना (10.3.2.15)

लेख्यः – रेखाऐं। (10.3.1.7)

वंश – कतार (10.2.3.1)

वर्ग – गुट (10.2.5.10)

वर्गमूलम् – वर्गमूल (10.3.1.10)

विपर्यस्य – उलट करके (10.1.1.10)

विवरकरणं – खाली रखना (10.3.6.15)

विशेष – $\sqrt{2}$ की व्याख्या (10.3.3.1)

विष्कम्भ – (वृत्त का) व्यास (10.3.210)

विस्तर – चौड़ाई (10.3.1.9)

वैकृत	–	विकृत, विकारी (10.2.5.3)
व्यत्यासम्	–	उलट (10.2.2.9)
शय	–	अरत्नि (10.1.1.4)
श्रोणी	–	वर्ग या किसी भी सरल भौमितिक रेखाकृति के नैऋत्य और वायव्य सिरे (10.1.1.5)
शुल्बविद्	–	शुल्ब जानने वाले (10.3.1.1)
संख्या	–	संख्या (10.2.5.14)
संख्यातृभ्यः	–	संख्या के ज्ञानी (10.3.1.1)
संनिपातयत्	–	रखें। (10.1.1.8)
संभाग	–	विभाग (10.3.4.15)
समम्	–	समक्षेत्र (10.3.2.15)
समर	–	वृत्त खण्डों का काटना (10.1.1.4)
समस्य	–	योग करके (10.3.1.10)
समन्तात्	–	शुरू बात से अन्तिम तक (10.3.2.25)
समधिकम्	–	वृद्धि करना (10.2.5.1)
समाहृत्य	–	इकट्ठे करना (10.1.1.9)
स्त्रक्तिः	–	चतुर्भुज का सिरा (10.3.1.6)
हरेत्	–	कम करना (10.3.5.5)
क्षेत्रम्	–	क्षेत्रफल (10.3.3.5)

आपस्तम्ब शुल्बसूत्र

पटल 1 से 6

हिन्दी भाषा

आपस्तम्ब शुल्बसूत्र

विहारयोगान् व्याख्यास्यामः ॥ 1 ॥

(गार्हपत्यादि) अग्नियों का स्थान और विन्यास पर व्याख्यान करता हूँ। (1)

यावदायामं प्रमाणम् ॥ 2 ॥

(वेदि की) लम्बाई इतनी लम्बी रस्सी (लें)। (2)

तदर्धमभ्यस्याऽपरस्मिंस्तृतीये षड्भागोने लक्षणं करोति ॥ 3॥

उसकी (प्रमाण रस्सी की) लम्बाई इसके आधे भाग से बढाकर (इस वृद्धि किये हुये भाग के तीन विभाग करें और वहाँ से) पश्चिम के तीसरे भाग से $\frac{1}{6}$ भाग घटाकर वहाँ चिन्ह लगायें। (3)

[मानों प्रमाण रस्सी की लम्बाई क्ष है और अभ्यास रज्जु की ½ क्ष है। इस रस्सी के चिन्ह के पूर्व की तरफ लम्बाई होगी: $(\text{क्ष}+\frac{\text{क्ष}}{2x3}-\frac{\text{क्ष}}{2x3x2}) = \frac{13}{12}$ क्ष, और पश्चिम की तरफ लम्बाई होगी: $\frac{3}{2}$ क्ष $-\frac{13}{12}\text{क्ष} = \frac{5}{12}\text{क्ष}$)

पृष्ठ्यान्तयोरन्तौ नियम्य लक्षणेन दक्षिणापायम्य निमित्तं करोति ॥ 4 ॥

क्षेत्र के समअक्ष रेखा के (पृष्ठया) दोनों सिरो पर (खुंटियाँ ठोकें और उनको) रस्सी के सिर बाँधकर चिन्ह (हाथ में पकड़कर) उसे दक्षिण की तरफ खींचें, जहाँ चिन्ह आयेगा वहाँ (जमीन पर) निशान लगायें। (4)

($\frac{13}{12}$क्ष लम्बी रस्सी का भाग अक्ष्णया रज्जु है और $\frac{5}{12}$ क्ष भाग तिर्यङ्मानी पर आता है। त्रिभुज 'ख क ग' यह समकोण त्रिभुज है $(\frac{13}{12}\text{क्ष})^2-(\frac{5}{12}\text{क्ष})^2=\text{क्ष}^2$।)

पूर्व

$\frac{5}{12}$ क्ष

क

ख

उत्तर

क्ष

दक्षिण

$\frac{13}{12}$ क्ष

ग

पश्चिम

वर्ग के विन्यास की रीति - 1

वर्ग के विन्यास की रीति - 2
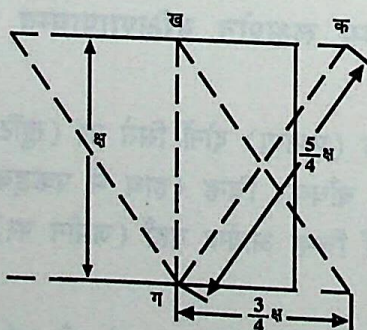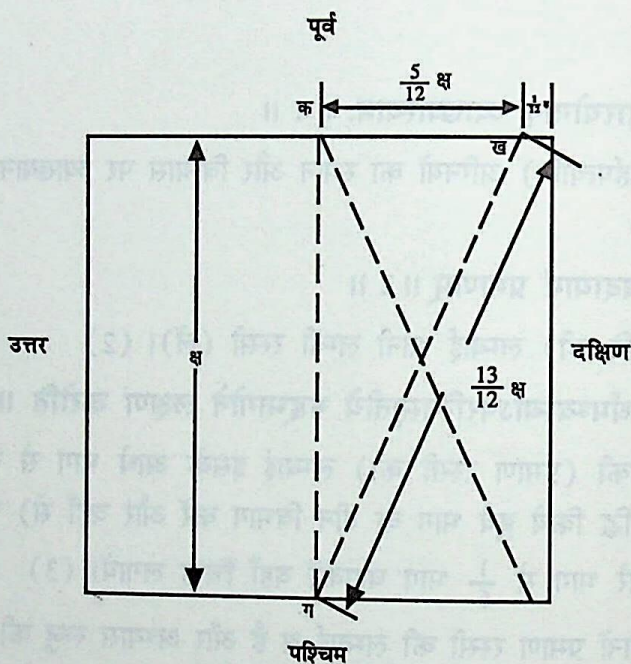
एवमुत्तरतो विपर्यस्येतरतस्स समाधिः ॥ 5 ॥

यह रीति उत्तर की तरफ करें (और उत्तर अंस प्राप्त करें।) यह रीति व्योम पद्धति से करें। (याने रस्सी का पूर्व सिर पृष्ठ्या के पश्चिम खुंटि को (ग) और रस्सी का पश्चिम सिर पूर्व खुंटि को (क) बाँधकर ऊपर दी हुई पद्धति से दक्षिण और उत्तर श्रोणियों का विन्यास करें।) इससे वर्ग खींचें। (5)

तन्निमित्तो निर्ह्रासो विवृद्धिर्वा ॥ 6 ॥

इसके लिये (तिर्यङ्मानी की) लम्बाई में घट या वृद्धि करें। (6)

[क ख $\frac{5}{12}$ क्ष है। वह ½ क्ष लम्बी करने के लिये रस्सी की पूर्व बाजू $\frac{1}{12}$क्ष से अधिक लम्बी लें।]

आयामं वाभ्यस्यागन्तुचतुर्थमायामस्याक्ष्णया रज्जुस्तिर्यङ्मानी शेषः। व्याख्यातं विहरणम् ॥ 7 ॥

(पृष्ठ्या के) लम्बाई की दुगनी लम्बी रस्सी लेकर, वृद्धि किये हुये रस्सी का चौथाई भाग लें। (और वहाँ चिन्ह लगायें)। अधिक ली हुई रस्सी की लम्बाई से तिर्यङ्मानी घटाने से अक्ष्णया की लम्बाई प्राप्त होती है। (इससे) विहरण (विन्यास) कहा गया है। (7)

[मानों प्रमाण वर्ग की लम्बाई क्ष है। इसके दुगुनी (2क्ष) लम्बी रस्सी लें। इसके चिन्ह से दो भाग करें। पूर्व बाजू $\frac{5}{4}$ क्ष और पश्चिम बाजू ¾ क्ष लम्बी है। त्रिभुज कखग यह समकोण त्रिभुज है, $(\frac{5}{4}\text{ क्ष})^2 - (\frac{3}{4}\text{ क्ष})^2 = \text{क्ष}^2$। 2 क्ष लम्बी रस्सी से ¾ क्ष लम्बी तिर्यङ्मानी घटाने से $\frac{5}{4}$ क्ष लम्बी अक्ष्णया प्राप्त होती है।]

दीर्घस्याक्ष्णयारज्जुः पार्श्वमानी तिर्यङ्मानी च यत्पृथग्भूते कुरुतस्तदुभयं करोति ॥ 8 ॥

आयत के अक्ष्णयारज्जु के वर्ग का क्षेत्रफल पार्श्वमानी और तिर्यङ्मानियों के अलग-अलग वर्गों के क्षेत्रफलों के योग के समान होता है। (8)

ताभिर्ज्ञेयाभिरुक्तं विहरणम् ॥ 9 ॥

ऊपर कहे विन्यास इस (कर्ण-भुजा सिद्धांत से) जानें। (9)

चतुरस्याक्ष्णयारज्जुर्द्विस्तावतीं भूमिं करोति ॥ 10 ॥ समस्य द्विकरणी ॥ 11 ॥

वर्ग के अक्ष्णया रज्जु के वर्ग का (क्षेत्रफल) वर्ग के (क्षेत्रफल से) दुगुना होता है। (10) (दो समक्षेत्र वर्गों के क्षेत्रफलों का) योग करने वाले (अक्ष्णया रज्जु को) द्विकरणी कहते हैं। (11)

प्रमाणं तृतीयेन वर्धयेत्तच्चतुर्थेनात्मचतुस्त्रिंशोनेन स विशेषः ॥ 12 ॥

प्रमाण रज्जु की लम्बाई एक तिहाई से और इसके (तिहाई के) एक चौथाई भाग से बढाईयें और इसके ($\frac{1}{3}$ भाग के $\frac{1}{4}$ भाग के) $\frac{1}{34}$ भाग घटाऐं, वह रस्सी की लम्बाई) 'विशेष' है। (12)

[यह सूत्र वर्ग के भुजा की लम्बाई और अक्ष्णया की लम्बाई का सम्बन्ध देता है। 'विशेष' यह $\sqrt{2}$ की व्याख्या है।

$\sqrt{2} = 1 + \frac{1}{3} + \frac{1}{3x4} - \frac{1}{3x4x34} = 1.4142156$]

प्रमाणमात्रीं रज्जुमुभयतः पाशां करोति ॥ 13 ॥ मध्ये लक्षणमर्धमध्यमयोश्च पृष्ठ्यायां रज्जुमायम्य पाशयोः लक्षणेष्विति शङ्कुं निहत्य उपान्त्ययोः पाशौ प्रतिमुच्य मध्यमेन लक्षणेन दक्षिणापायम्य शङ्कुं निमित्तं करोति ॥ 14 ॥ मध्यमे पाशौ प्रतिमुच्य उपर्युपरि निमित्तं मध्यमेन लक्षणेन दक्षिणापायम्य शङ्कुं निहन्ति ॥ 15 ॥ तस्मिन्पाशं प्रतिमुच्य पूर्वस्मिन्नितरं मध्यमेन लक्षणेन दक्षिणमंसमायच्छेत् ॥ 16 ॥ उन्मुच्य पूर्वस्मादपरस्मिन्प्रतिमुच्य मध्यमेनैव लक्षणेन दक्षिणां श्रोणिमायच्छेत् ॥ 17 ॥ एवमुत्तरौ श्रोण्यंसौ ॥ 18 ॥

(जिस लम्बाई का वर्ग खींचने का है उतनी लम्बी) प्रमाण रज्जु लेकर इसके दोनों सिरो पर गाँठ बाँधें। (13) इसके मध्य बिन्दु पर चिन्ह करें। रस्सी के आधे लम्बाई के मध्य बिन्दुओं पर चिन्ह करें। रस्सी पृष्ठ्या पर फैलाकर उसके चिन्हों पर खुंटियाँ ठोकें। (पृष्ठ्या के दोनों सिरे, रस्सी का मध्य बिन्दु और मध्यबिन्दु से पृष्ठ्या के सिरो के दूरी के मध्य बिन्दु इन पांच स्थानों पर खुंटियों ठोकें।) अंतिम खुंटियों

के पास के खुंटियों को (दूसरे और चौथे खुंटियों को) रस्सी के सिरे बाँधकर रस्सी के मध्य बिन्दु से उन्हे दक्षिण की तरफ खींचें और चिन्ह पर (जहाँ चिन्ह आयेगा वहाँ) खुंटि (6) ठोकें। (14) रस्सी के दोनों सिरे मध्य खुंटि को (3) बाँधकर रस्सी के मध्य बिन्दु से उन्हे दक्षिण की तरफ (मध्य खुंटि 3 और 6 पर लाकर) खींचें। जहाँ मध्य बिन्दु आता हैं वहाँ खुंटि (7) ठोकें। (15) इस खुंटि को (7) और पूर्व के खुंटि को (1) रस्सी के सिरे बाँधें और मध्यबिन्दु (हाथ में पकड़कर) रस्सी दक्षिण की तरफ खींचे। (और जहाँ मध्य बिन्दु आता है वहाँ खुंटि (8) ठोकें)। दक्षिण अंस प्राप्त होता है। (16) रस्सी का सिर इस खुंटि से (1) छुड़ाकर, पश्चिम के खुंटि को (5) बाँधकर मध्य चिन्ह से रस्सी दक्षिण की तरफ खींचें, इसी से दक्षिण श्रोणी प्राप्त होती है (खुंटि 9)। (17) इस (विन्यास के पद्धति से उत्तर की श्रोणी और अंस प्राप्त करें। (18)

वर्ग के विन्यास की रीति - 3
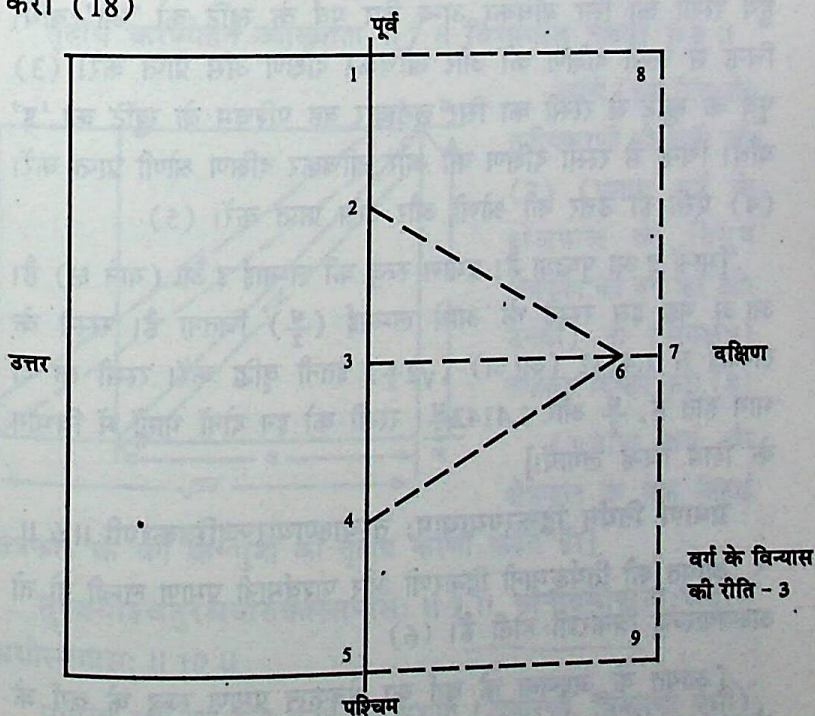
इति प्रथमः खण्डः।

खण्ड एक समाप्त।

अथापरो योगः ॥ 1 ॥

अब विन्यास की अन्य रीति। (1)

पृष्ठ्यान्तयोर्मध्ये च शङ्कुं निहत्यार्धेऽर्धे तद्विशेषमभ्यस्य लक्षणं कृत्वार्धमागमयेत् ॥ 2 ॥ अन्त्ययोः पाशौ कृत्वा मध्यमे सविशेषं प्रतिमुच्य पूर्वस्मिन्नितरं लक्षणेन दक्षिणमंसमायच्छेत् ॥ 3 ॥ उन्मुच्य पूर्वस्मादपरस्मिन्प्रतिमुच्य लक्षणेनैव दक्षिणां श्रोणिमायच्छेत् ॥ 4 ॥ एवमुत्तरौ श्रोण्यंसौ ॥ 5 ॥

पृष्ठ्या के दोनों सिरो पर और मध्यबिन्दु पर खुंटियाँ ठोकें। रस्सी के मध्य में और रस्सी के आधे लम्बाई के 'विशेष' दूरी पर चिन्ह लगायें और (रस्सी) पृष्ठ्या के आधे भाग पर 'अ आ' रखें। (2) रस्सी के दोनों सिरो को गाँठ बाँधकर मध्य खुंटि को विशेष दूरी से वृद्धि किये हुये रस्सी का सिर बाँधकर अन्य सिर पूर्व के खुंटि को 'आ' बाँधें। चिन्ह से रस्सी दक्षिण की ओर खींचकर दक्षिण अंस प्राप्त करें। (3) पूर्व के खुंटि से रस्सी का सिर छुड़ाकर वह पश्चिम के खुंटि को 'इ' बाँधें। चिन्ह से रस्सी दक्षिण की ओर खींचकर दक्षिण श्रोणी प्राप्त करें। (4) ऐसी ही उत्तर की श्रोणी और अंस प्राप्त करें। (5)

[मानों इ आ पृष्ठ्या है। प्रमाण रज्जु की लम्बाई इ आ (याने क्ष) है। आ अ यह इस रस्सी के आधे लम्बाई ($\frac{क्ष}{2}$) जितना है। रस्सी के लम्बाई में 1.4142 (आ अ) ($\sqrt{2}\frac{क्ष}{2}$) इतनी वृद्धि करें। रस्सी के दो भाग होते हैं, $\frac{क्ष}{2}$ और 1.4142$\frac{क्ष}{2}$। रस्सी को इन दोनों भागों में विभाग के लिये चिन्ह लगायें।]

प्रमाणं तिर्यग् द्विकरण्यायामः तस्याक्ष्णयारज्जुस्त्रिकरणी ॥ 6 ॥

आयत की तिर्यङ्मानी द्विकरणी और पार्श्वमानी प्रमाण लम्बी हो तो अक्ष्णयारज्जु त्रिकरणी होती हैं। (6)

[आयत के अक्ष्णया के वर्ग का क्षेत्रफल प्रमाण रज्जु के वर्ग के क्षेत्रफल से तिगुना होता है। इसीलिये अक्ष्णया को त्रिकरणी कहा है।]
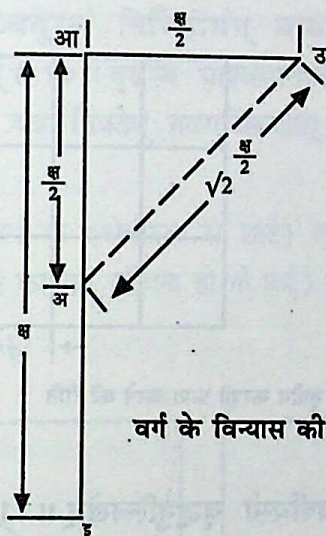
वर्ग के विन्यास की रीति - 4

तृतीय करण्येतेन व्याख्याता ॥ 7 ॥ विभागस्तु नवधा ॥ 8 ॥
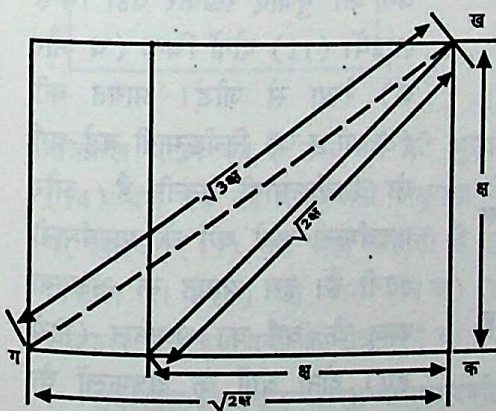
इससे (इस रीति से) तृतीयकरणी भी कही गई। (7) (प्रमाण वर्ग के क्षेत्रफल के तिगुने क्षेत्रफल का वर्ग करें और उनके) नौ (समक्षेत्र) वर्गाकार विभाग करें। (8)

[प्रमाण वर्ग के क्षेत्रफल के एक तिहाई क्षेत्रफल के वर्ग के भुजा को तृतीय करणी कहतें हैं।]

तुल्ययोश्चतुरश्रयोरुक्तस्समासः ॥ 9 ॥ नानाप्रमाणयोःचतुरश्रयोस्समासः ॥ 10 ॥

समक्षेत्र वर्गों का योग करने की पद्धति (द्विकरणी, त्रिकरणी ऐसी) कही। विभिन्न क्षेत्रफलों के वर्गों का योग करने की रीति (अब कहता हूँ)। (10)
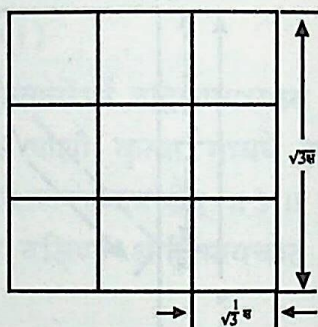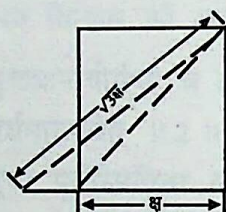
तृतीय करणी प्राप्त करने की रीति

ह्रसीयसः करण्या वर्षीयसो वृद्ध्रमुल्लिखेत् ॥ 11 ॥ वृद्ध्रस्याक्ष्णयारज्जुरुभे समस्यति ॥ 12 ॥ तदुक्तम् ॥ 13 ॥
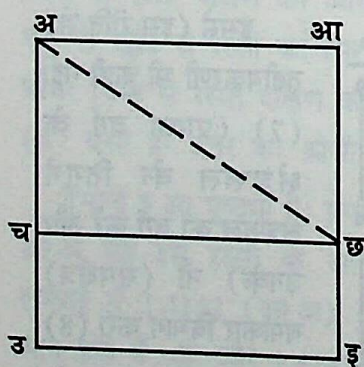
बड़े वर्ग के भुजाओं पर छोटी वर्ग की भुजाएं रखकर वहाँ चिन्ह लगायें। (11) दोनों चिन्ह (च और छ) रेखा से जोड़ें। आयत की (अ आ छ च) तिर्यङ्मानी बड़े वर्ग के तिर्यङ्मानी इतनी है, और पार्श्वमानी छोटे वर्ग के पार्श्वमानी इतनी है। इस आयत के अक्ष्णया रज्जु के वर्ग का क्षेत्रफल (दिये हुए) दोनों वर्गों के क्षेत्रफलों के योग जितना होता है। (12) यह पहले ही कहा है (खण्ड 1, सूत्र 8)। (13)
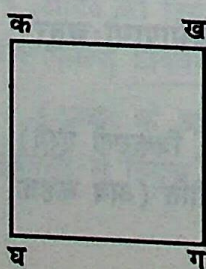
वर्ग अ आ इ उ और वर्ग क ख ग घ इनके क्षेत्रफलों के योग इतना क्षेत्रफल का वर्ग खींचने का है।

अच = कघ, आछ = खग,

अ छ = $\sqrt{(\text{अ च}^2 + \text{च छ}^2)}$।]

चतुरश्राच्चतुरश्रं निर्जिहीर्षन् यावन्निर्जिहीर्षेत्तस्य करण्या वृध्रमुल्लिखेत् ॥ 14 ॥ वृध्रस्य पार्श्वमानीमक्ष्णयेतरत् पार्श्वमुपसंहरेत् ॥ 15 ॥ सा यत्र निपतेत् तदपच्छिन्द्यात् ॥ 16 ॥ छिन्नया निरस्तम् ॥ 17 ॥

(बड़े) वर्ग के (क्षेत्रफल से छोटे) वर्ग का (क्षेत्रफल) घटाकर (शेष क्षेत्रफल का वर्ग खींचना हो तो बड़े) वर्ग के भुजाओं पर जिसका
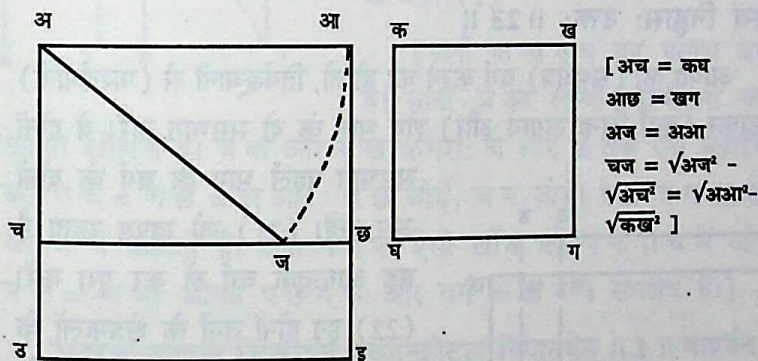
क्षेत्रफल घटाने का है उस वर्ग की भुजाएं रखकर वहाँ चिन्ह लगायें। (14) बड़े वर्ग की पार्श्वमानी अक्ष्णया जैसी दूसरी (च छ) पार्श्वमानी पर लाइये। (15) वह जहाँ काटती है इसके बाहर का भाग (ज छ) निकाल दें। (16) जो भाग (च ज) शेष रहता है उसके वर्ग का क्षेत्रफल दिये हुए वर्गों के क्षेत्रफलों के व्यवकलन इतना होता है। (17)

उपसंहृताऽक्ष्णयारज्जुस्सा चतुष्करणी छिन्ना चेतरा च यत्पृथग्भूते कुरुतः तदुभयं करोति ॥ 18 ॥ तिर्यङ्मानी पुरुषं शेषस्त्रीन् ॥ 19 ॥ तदुक्तम् ॥ 20 ॥

(पार्श्वमानी) अक्ष्णयारज्जु जैसी रखें, वह चतुष्करणी है। वह जिस भुजा को काटती है इसके वर्ग का क्षेत्रफल और दूसरे भुजा के वर्ग का क्षेत्रफल इन दोनों के योग इतना अक्ष्णयारज्जु के वर्ग का क्षेत्रफल होता है (अज^2 = अच^2 + चज^2)। (18) अक्ष्णया के वर्ग के क्षेत्रफल से

तिर्यङ्मानी के वर्ग का क्षेत्रफल घटाकर तीन वर्ग पुरुष क्षेत्रफल प्राप्त होता है (19) यह कहा गया है। (20)

[यहाँ बड़े वर्ग का क्षेत्रफल चार वर्ग पुरुष और छोटे वर्ग का क्षेत्रफल एक वर्ग पुरुष माना है। इनके क्षेत्रफलों के व्यवक्लन से तीन वर्ग पुरुष क्षेत्रफल प्राप्त होता है।]

दीर्घचतुरश्रं समचतुरश्रं चिकीर्षन् तिर्यङ्मान्या अपच्छिद्य शेषं विभज्योभयत उपदध्यात् ॥ 21 ॥ खण्डमागन्तुना संपूरयेत् ॥ 22 ॥ तस्य निह्रासः उक्तः ॥ 23 ॥

आयत का (समक्षेत्र) वर्ग करने का हो तो, तिर्यङ्मानीं से (पार्श्वमानी) घटाकर (वहाँ चिन्ह लगायें और) शेष भाग के दो समभाग करें। वे दोनों समभाग पहले भाग के वर्ग के दोनों ओर रखें। (21) जो खण्ड रहता है वह आगन्तुक वर्ग ले कर पूरा करें। (22) इन दोनों वर्गों के क्षेत्रफलों के व्यवकलन की रीति कही गई है। (23)
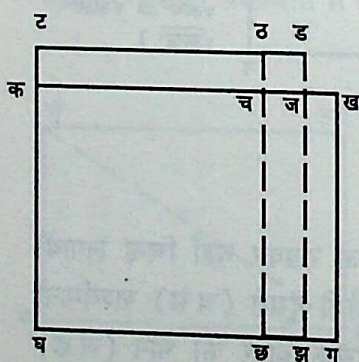
[मानों आयत क ख ग घ का समक्षेत्र वर्ग करने का है।

क च = क घ = घ छ। च छ जोड़े। च ख का मध्यबिन्दु ज और छ ग का मध्य बिन्दु झ ज झ जोड़े। आयत ज ख ग झ ऐसा रखें की ज झ क च पर और ख ग ट ठ पर आयेंगे। ठ ड ज च यह आगन्तुक वर्ग। वर्ग ट ड झ घ - वर्ग ठ ड ज च = आयत क ख ग घ।]

इति द्वितीयः खण्डः।

खण्ड दो समाप्त।

समचतुरश्रं दीर्घचतुरश्रं चिकीर्षन् यावच्चिकीर्षेत् तावतीं पार्श्वमानीं कृत्वा यदिधिकं स्यात् यथायोगमुपदध्यात् ॥ 1 ॥
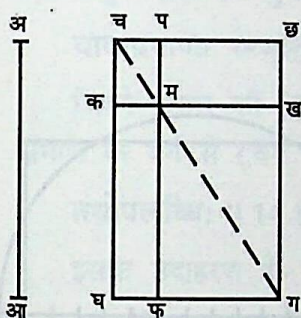
वर्ग का (समक्षेत्र) आयत खींचने का हो तो जितनी लम्बाई का खींचने का है उतनी लम्बाई की पार्श्वमानी लें और जितनी (क्षेत्रफल) अधिक है वह योग्य स्थान पर रखकर (समक्षेत्र आयत खींचें)। (1)

[मानों क ख ग घ यह प्रमाण वर्ग है। मानों अ आ लम्बी पार्श्वमानी का आयत खींचना है। घ क और ग ख क्रमशः च और छ तक ऐसे बढाईयें की घ च = ग छ = अ आ। च छ जोड़ें, च ग जोड़े। रेखा च ग क ख को म में काटती है। रेखा प म फ ऐसी खींचें की प फ ॥ च घ और प फ = च घ। आयत प छ ग फ और वर्ग क ख ग घ समक्षेत्र हैं।]

चतुरश्रं मण्डलं चिकीर्षन् मध्यात्कोट्यां निपातयेत् ॥ 2 ॥ पार्श्वतः परिकृष्यातिशयतृतीयेन सह मण्डलं परिलिखेत् ॥ 3 ॥ सा नित्या मण्डलम् ॥ 4 ॥ यावद् धीयते तावदागन्तु ॥ 5 ॥

वर्ग का (समक्षेत्र) मण्डल खींचने का हो तो मध्यबिन्दु से आधा कर्ण खींचें। (2) वह पार्श्वमानी के (मध्य पर) लाकर इसका जो भाग (पृष्ठ्या के) बाहर आता है इसके एक तिहाई भाग के साथ मण्डल खींचें। (3) इससे समक्षेत्र मण्डल स्थूल मान का (सूक्ष्ममान का?) प्राप्त होता है। (4) जिस प्रमाण से क्षेत्रफल (सिरो के पास) कम होता है इस प्रमाण में वह पार्श्व भाग में अधिक होता है। (5)

मण्डलं चतुरश्रं चिकीर्षन् विष्कम्भं पंचदशभागान् कृत्वा द्वावुद्धरेत् ॥ 6 ॥ त्रयोदशावशिष्यन्ते ॥ 7 ॥ सा नित्या चतुरश्रम् ॥ 8 ॥

मण्डल का (समक्षेत्र) वर्ग करने का हो तो मण्डल के व्यास के 15 (सम) भाग करें और उनमें से दो भाग घटाइये। (6) तेरह भाग रहते हैं। (7) (इस लम्बाई का) वर्ग स्थूलमान से (मण्डल का समक्षेत्र

होता है)। (8)

मानों मण्डल का व्यास 2क्ष है, इसके समक्षेत्र वर्ग की लम्बाई = $\frac{13}{15}$
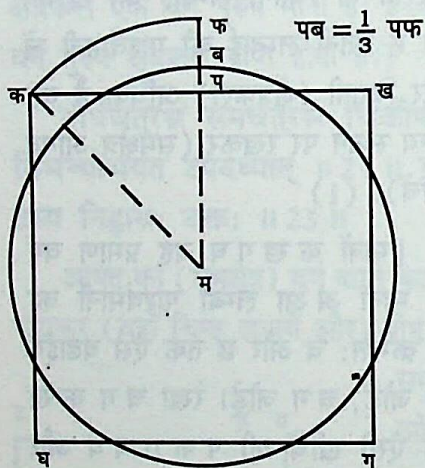
वर्ग का समक्षेत्र वृत्त
सूत्र 2 से 5
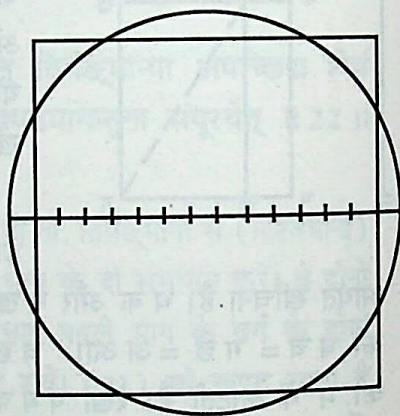
वर्ग का समक्षेत्र वर्ग
सूत्र 6 से 8

x 2 क्ष।

2क्ष व्यास के मण्डल का क्षेत्रफल = 3.14159 क्ष^2।

$\frac{13}{15}$x2 क्ष भुजा के वर्ग का क्षेत्रफल = 3.0044 क्ष^2।

प्रमाणेन प्रमाणं विधीयते ॥ 9 ॥

जिस प्रकार से (वर्ग खींचा है) इसी प्रमाण से इसका क्षेत्रफल नापें। (9)

[वर्ग के भुजा की लम्बाई पद प्रमाण में हो तो क्षेत्रफल वर्ग पद प्रमाण से लें न की वर्ग अंगुलों में।]

आदेशादन्यत् ॥ 10 ॥

यदि वैसा कहा हो तो अन्य प्रमाण में (परिमाण में) लें। (10)

द्वाभ्यां चत्वारि ॥ 11 ॥ त्रिभिर्नव ॥ 12 ॥

दुगुने नापों की भुजा से चौगुना (क्षेत्रफल प्राप्त होता है)। (11)

तिगुने नापों की भुजा से नौ गुना। (12)

यावत्प्रमाणा रज्जुस्तावतस्तावतो वर्गान् करोति ॥ 13 ॥

जितने प्रमाण की (लम्बी) रस्सी हो याने (वर्ग की भुजा हो) इस प्रमाण के वर्ग से (वर्ग का क्षेत्रफल) प्राप्त होता है। (13)

तथोपलब्धिः ॥ 14 ॥

इसके उदाहरण है- (14)

अध्यर्ध पुरुषा रज्जुर्द्वौ सवादौ करोति ॥ 15 ॥

डेढ़ पुरुष लम्बी रस्सी (के वर्ग का क्षेत्रफल) सवा दो (वर्ग) पुरुष होता है। (15)

अर्धतृतीयपुरुषा षट् सपादान् अथात्यन्त प्रदेशः ॥ 16 ॥

अढ़ाई पुरुष लम्बी रस्सी (वर्ग का क्षेत्रफल) सवा छः (वर्ग) पुरुष है। यह नियम सर्वत्र प्रयोज्य है। (16)

यावता यावताऽधिकेन परिलिखति तत्पाश्र्वयोरुपदधाति ॥ 17 ॥ यच्च तेन चतुरश्रं क्रियते तत्कोट्याम् ॥ 18 ॥

वर्ग के (क्षेत्रफल की) जितनी वृद्धि करनी हो इस अनुपात में (सूत्र 13 से) दोनों भुजाओं की लम्बाई में वृद्धि करें। (17) उत्तर-पूर्व कोण ले कर यह वर्ग प्राप्त होता है। (18)
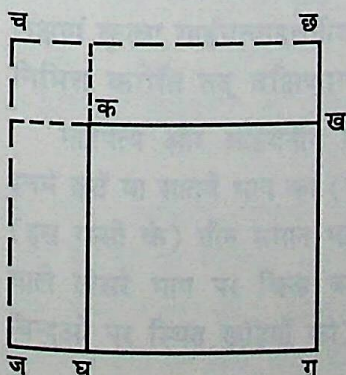
[वर्ग क ख ग घ यह प्रमाण वर्ग है। ग घ ज तक और ग ख छ तक बढाईये। छ च और ज च जोड़ के बड़ा वर्ग च छ ग ज प्राप्त होता है।

वेदियों की परिवृद्धि से वर्ग समीकरणों का हल सम्बन्धित है।

भुजा क ख = म और ख छ = न

$(म + न)^2 = म^2 + 2मन + न^2$]

अर्धप्रमाणेन पादप्रमाणं विधीयते ॥ 19 ॥

आधे प्रमाण से (क्षेत्रफल) चौथाई प्रमाण का प्राप्त होता है। (19)

अर्धस्य द्विप्रमाणायाः पादपूरणत्वात् ॥ 20 ॥

आधे के दुगुना प्रमाण (याने वर्ग) एक चौथाई होता है इसीलिए। (20)

तृतीयेन नवमी कला ॥ 21 ॥

एक तिहाई प्रमाण से (क्षेत्रफल) $\frac{1}{9}$ होता है। (21)

इति तृतीयः खण्डः।

खण्ड तीन समाप्त।

इति प्रथमः पटलः।

पटल एक समाप्त।

अग्न्याधेयिके विहारे गार्हपत्याहवनीययोरन्तराले विज्ञायते ॥ 1 ॥

अब अग्न्याधान के लिये गार्हपत्य और आहवनीय अग्नियों की दूरी कहते हैं। (1)

अष्टासु प्रक्रमेषु ब्राह्मणोऽग्निमादधीत ॥ 2 ॥ एकादशसु राजन्यः ॥ 3 ॥ द्वादशसु वैश्यः ॥ 4 ॥ चतुर्विंशत्यामपरिचिते यावता वा चक्षुषा मन्यते तस्मान्नातिदूरमाधेय इति सर्वेषामविशेषेण श्रूयते ॥ 5 ॥

ब्राह्मण (यजमान) ने अग्नि आठ प्रक्रम दूरी पर रखने चाहिये। (2) राजा ने 11 प्रक्रम (3) और वैश्य ने 12 प्रक्रम। (4) 24 या 25 प्रक्रमों तक या आँखों को जितने तक सुखकर लगता है इतने (दूरी पर रखें)। परन्तु इससे ज्यादा दूरी पर नहीं रखें ऐसा कोई भी अपवाद सिवाय सुनते हैं। (5)

[यहाँ 'अपरिचिते' यह शब्द 'अपरिमिते' ऐसा लेकर अनुवाद किया है। 'अपरिमित' शब्द की व्याख्या कात्यायन शुल्बसूत्र कण्ड़िका 1, सूत्र 23 में दी है।]

दक्षिणतः पुरस्ताद् वितृतीयदेशे गार्हपत्यस्य नेदीयसि दक्षिणाग्नेर्विज्ञायते ॥ 6 ॥

गार्हपत्य अग्नि के दक्षिण-पूर्व की ओर एक तिहाई को कुछ कम इतने दूरी पर दक्षिणाग्नि होता है, ऐसा जानते है। (6)

गार्हपत्याहवनीययोरन्तरालं पञ्चधा षड्धा वा संविभज्य षष्ठं सप्तमं वा भागं आगन्तुमुपसमस्य समं त्रैधं विभज्यापरस्मिंतृतीये लक्षणं कृत्वा गार्हपत्याहवनीययोरन्तौ नियम्य लक्षणेन दक्षिणापायम्य निमित्तं करोति तद् दक्षिणाग्नेरायतनम् ॥ 7 ॥ श्रुतिसामर्थ्यात् ॥ 8 ॥

गार्हपत्य और आहवनीय के दूरी के पांच या छः भाग करें और इनमे छठें या सातवें भाग का (जैसे भाग किये हैं वैसा) योग करें। इसके (इस रस्सी के) तीन समान भाग करें। रस्सी के पश्चिम की तरफ होने वाले तीसरे भाग पर चिन्ह करें। गार्हपत्य और आहवनीय के (मध्य बिन्दुओं पर स्थित खुंटियों को) रस्सी के सिरे बाँधकर चिन्ह से रस्सी

दक्षिण की तरफ खींचें। जहाँ चिन्ह आयेगा वह दक्षिणाग्नि का स्थान है। (7) ऐसी श्रुती कहती है। (8)

[बौधायन शुल्बसूत्र 1.67-69 और कात्यायन शुल्बसुत्र 1.26-27 देखें।]

यजमानमात्री प्राच्यपरिमिता वा यथासन्नानिहवींषि संभवेदेवं तिरश्चीप्राञ्चौ वेद्यंसावुन्नयति ॥ 9 ॥ प्रतीची श्रोणी पुरस्तादंहीयसी पश्चात्प्रथीयसी मध्ये सन्नततरैवमिव हि योषेति दार्शिक्या वेदेर्विज्ञायते ॥ 10 ॥

(दर्शपूर्णमास की) वेदि की प्राची यजमान के (ऊँचाई) इतनी या उससे ज्यादा लम्बाई की और सब हविपात्र एक दूसरे के संपर्क में रख सकेंगे इतनी चौड़ी होती है। इसके अंस पूर्व की ओर बढ़ाते है। (9) और श्रोणी पश्चिम की तरफ (बढ़ाते है)। वेदि की पूर्व बाजू छोटी और पश्चिम बाजू बड़ी है (और) मध्य भाग सबसे छोटा होता है। ऐसी दर्शिकी वेदि स्त्री जैसी है, ऐसा ज्ञात हैं। (10)

[वेदि की प्राची (पूर्व-पश्चिम लम्बाई) 6 अरत्नि, पूर्व की भुजा 3 अरत्नि और पश्चिम की भुजा 4 अरत्नि हैं।]

अपरेणाहवनीयं यजमानमात्री दीर्घचतुरश्रं विहृत्य तावतीं रज्जुमायम्य मध्ये लक्षणं कृत्वा दक्षिणयोः श्रोण्यंसयोरन्तरा नियम्य लक्षणेन दक्षिणापायम्य निमित्तं करोति ॥ 11 ॥ निमित्ते रज्जुं नियम्यान्तौ समस्येत् ॥ 12॥ दक्षिणायाः श्रोणेर्दक्षिणमंसमालिखेत् ॥ 13॥ एवमुत्तरतः ॥ 14 ॥ तिर्यङ्मानीं द्विगुणां तथा कृत्वा पश्चात्पुरस्ताच्चोपलिखेत् ॥ 15 ॥ विमितायां पुरस्तात् पार्श्वमान्या उपसंहरेत् ॥ 16 ॥ श्रुतिसामर्थ्यात् ॥ 17 ॥

आहवनीय अग्नि के पश्चिम की तरफ यजमान मात्रीका (वेदि की पश्चिम भुजा की लम्बाई इतना चौड़ा और यजमान के ऊँचाई इतना लम्बा) आयत खींचें। प्राची के दुगुनी लम्बी रस्सी लेकर इसके मध्य बिन्दु पर चिन्ह लगायें। दक्षिण की श्रोणी और अंस के (खुंटियों को)

रस्सी के सिरे बाँधकर वह चिन्ह से दक्षिण की ओर खींचें और जहाँ चिन्ह आता है वहाँ (जमीन पर) निशान लगायें। (11) जहाँ चिन्ह किया है वहाँ रस्सी का मध्य बिन्दु रखकर इसके दोनों सिरे इकट्ठे करें। (12) दक्षिण की श्रोणी और दक्षिण का अंस (इस रस्सी से) वृत्त खण्ड से जोड़ें। (13) इस रीति से उत्तर की श्रोणी और अंस (वृत्त खण्ड से) जोड़ें। (14) इसी रीति से तिर्यङ्मानी के दुगुनी रस्सी लेकर पश्चिम और पूर्व की ओर (वृत्त खण्ड) खींचें। (15) पूर्व की पार्श्वमानी (4 अरत्नि ली है वह) कम (3 अरत्नि) करें। (16) कारण ऐसी श्रुति कहती है। (17)
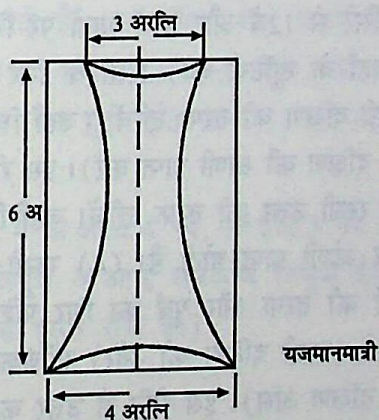
इति चतुर्थः खण्डः।

खण्ड चार समाप्त।

त्रिंशत्पदानि प्रक्रमा वा पश्चात् तिरश्ची भवति ॥ 1 ॥ षट्त्रिंशत् प्राची ॥ 2 ॥ चतुर्विंशतिः पुरस्तात् तिरश्चीति वेदेर्विज्ञायते ॥ 3 ॥ षट्त्रिंशिकायामष्टादशोपसमस्य अपरस्मादन्ताद् द्वादशसु लक्षणं पञ्चदशसु लक्षणं पृष्ठ्यान्तयोरन्तौ नियम्य पञ्चदशकेन दक्षिपायम्य शङ्कुं निहन्त्येवमुत्तरतः श्रोणी ॥ 4 ॥ विपर्यस्तयांसौ पञ्चदश-केनैवापायम्य द्वादशके शङ्कुं निहन्ति। एवमुत्तरतस्तावंसौ ॥ 5 ॥

पश्चिम की पार्श्वमानी 30 पद या प्रक्रम है। प्राची (पूर्व-पश्चिम लम्बाई) 36 पद या प्रक्रम (2) और पूर्व की पार्श्वमानी 24 पद या प्रक्रम, ऐसे (सौमिकि) वेदि के (नाप) जानते हैं। (3) 36 पद (या प्रक्रम लम्बी) रस्सी में 18 पद (या प्रक्रम) का योग करें, इसके पश्चिम के सिरे से 12वें और 15वें भागों पर चिन्ह लगायें। पृष्ठ्या के सिरो को (वहाँ के खुंटियों को) रस्सी के सिरे बाँधकर 15वें भाग के चिन्ह से रस्सी दक्षिण की तरफ खींचें, (जहाँ चिन्ह आयेगा वहाँ) खुंटि ठोकें। (और दक्षिण की श्रोणी प्राप्त करें)। इस रीति से (याने 15वें भाग के चिन्ह से रस्सी उत्तर की तरफ खींचें। जहाँ चिन्ह आयेगा वहाँ खुंटि ठोकें।) उत्तर श्रोणी प्राप्त होती है। (4) रस्सी उलट करके (पश्चिम का सिर पूर्व की तरफ और पूर्व का सिर पश्चिम की तरफ करके) 15वें चिन्ह से (रस्सी दक्षिण की ओर) खींचकर 12वें चिन्ह पर खुंटि ठोकें। (यह दक्षिण अंस)। इस रीति से उत्तर का अंस प्राप्त करें। (5)

[प्राची अ आ 36 पद या प्रक्रम है। अ और आ पर खुंटियाँ ठोकें। $36 + 18 = 54$ पद लम्बाई के रस्सी के सिरे खुंटियों को बाँधकर 15 पद दूरी के चिन्ह को हाथ में पकड़कर रस्सी दक्षिण की तरफ खींचनें से श्रोणी ग प्राप्त होती है। $15^2 + 36^2 = 39^2$, इसलिये अ आ ग समकोण त्रिभुज है। इस रीति से उत्तर की तरफ रस्सी खींचकर श्रोणी घ प्राप्त होती है। बाद में रस्सी का आ खुंटि को बाँधा हुआ सिर अ खुंटि को और अ खुंटि को बाँधा हुआ सिर आ खुंटि को बाँधें और फिर रस्सी 15वें चिन्ह से दक्षिण की ओर खींचें। जहाँ 12 पद दूरी का चिन्ह आयेगा वहाँ खुंटि ठोकें। दक्षिण अंस ख प्राप्त होता है। इस रीति से उत्तर का अंस क प्राप्त करें।

मानों प्राची की लम्बाई क्ष है। रस्सी 1½ क्ष लम्बी लें। 15वें चिन्ह से रस्सी के $\frac{13}{12}$ क्ष और $\frac{5}{12}$ क्ष लम्बाई के दो भाग होते हैं। $(\frac{13}{12}$ क्ष$)^2 - (\frac{5}{12}$ क्ष$)^2 =$ क्ष^2। इस रस्सी से समकोण त्रिभुज का विन्यास कर सकते हैं।]

तदेकरज्ज्वा विहरणम् ॥ 6 ॥ त्रिकचतुष्कयोः पञ्चिकाऽक्ष्णया रज्जुः ॥ 7 ॥ ताभिस्त्रिरभ्यस्ताभिरंसौ ॥ 8 ॥ चतुरभ्यस्ताभिः श्रोणी ॥ 9 ॥

एक ही रस्सी से (वेदि के) विन्यास की जानकारी देता हूँ। (6) तीन (पद) पार्श्वमानी और चार (पद) तिर्यङ्मानी से पांच (पद) अक्ष्णया रज्जु प्राप्त होती है। (7) तीन (पद) पार्श्वमानी की (और) तिगुनी वृद्धि करें (3 x 3 + 3 = 12 पद), अंस प्राप्त होता है। (8) पार्श्वमानी की (और) चार गुनी वृद्धि करें। (3 x 4 + 3 = 15 पद), श्रोणी प्राप्त होती है। (9)

[त्रिभुज अ आ इ में अ आ = 4 पद, आ इ = 3 पद और अ इ = 5 पद, $3^2+4^2 = 5^2$। त्रिभुज अ आ इ समकोण त्रिभुज है। महावेदि का विन्यास करने की यह दूसरी रीति है।]
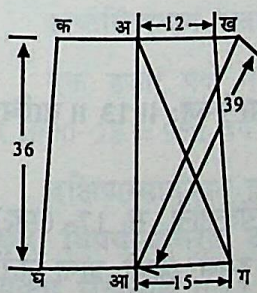
सूत्र 1 से 5
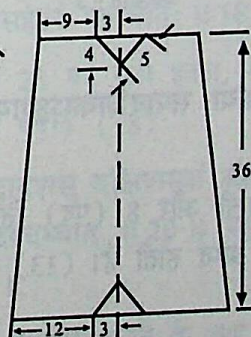
सूत्र 6 से 9
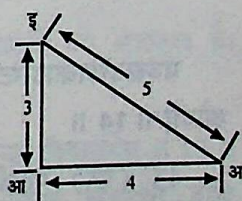
सौमिकि वेदि के विन्यास की रीतियाँ 1,2

द्वादशिकापञ्चिकयोस्त्रयोदशिकाऽक्षणया रज्जुः ।। 10 ।। ताभिरंसौ ।। 11 ।। द्विरभ्यस्ताभिः श्रोणी ।। 12 ।।

12 पद पार्श्वमानी और पांच (पद) तिर्यङ्मानी से 13 (पद) अक्ष्णयारज्जु प्राप्त होती है। (10) इससे अंस मिलते हैं। (11) पांच (पद) पार्श्वमानी की (और) दुगुनी वृद्धि करने पर (5 + 5 x 2 = 15) श्रोणी प्राप्त होती है। (12)

[$5^2 + 12^2 = 13^2$। इस रस्सी से समकोण त्रिभुज का विन्यास कर सकते हैं।]
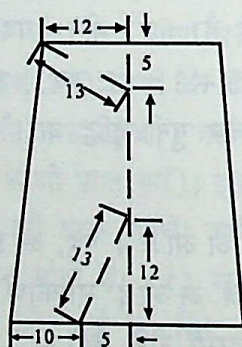
सौमिकि वेदि के विन्यास की रीति - 3

पञ्चदशिकाऽष्टिकयोः सप्तदशिकाऽक्ष्णया रज्जुः ।। 13 ।। ताभिः श्रोणी ।। 14 ।।

15 (पद) पार्श्वमानी और 8 (पद) तिर्यङ्मानी से 17 (पद) अक्ष्णया रज्जु (कर्ण) प्राप्त होती है। (13) इससे श्रोणी प्राप्त करें। (14)

[$15^2 + 8^2 = 17^2$।]

द्वादशिकापञ्चत्रिंशिकयोस्सप्तत्रिंशिकाऽक्ष्णया रज्जुः ।। 15 ।। ताभिरंसौ ।। 16 ।।

12 (पद) पार्श्वमानी और 35 (पद) तिर्यङ्मानी से 37 (पद) अक्ष्णया रज्जु प्राप्त होती है। (15) इससे अंस प्राप्त करें। (16)

[$12^2 + 35^2 = 37^2$]

एतावन्ति ज्ञेयानि वेदिविहरणानि भवन्ति ॥ 17 ॥

वेदि के इतने भिन्न भिन्न विन्यास जानने चाहिए। (17)
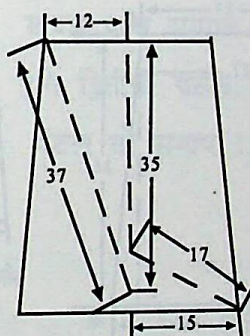
सौमिकि वेदि के विन्यास
की रीति - 4

सूत्र 15-16

अष्टविंशत्यूनं पदसहस्त्रं महावेदिः ॥ 18 ॥

एक हजार पदों में 28 पद कम इतना महावेदि का क्षेत्रफल है। (1000-28 = 972 वर्ग पद।) (18)

दक्षिणस्मादंसात् द्वादशसु दक्षिणस्यां श्रोण्यां निपातयेत् ॥ 19 ॥ छेदं विपर्यस्योत्तरत उपदध्यात् ॥ 20 ॥ सा दीर्घा चतुरश्रा तथा युक्तां संचक्षीत ॥ 21 ॥

(सौमिकि वेदि का विन्यास करने के बाद) इसके दक्षिण अंस से दक्षिण श्रोणी के ओर 12 पदों तक रस्सी रखें। (19) जो त्रिभुज प्राप्त होगा वह उलट करके उत्तर की तरफ रखें। (20) इसका (महावेदि का) दीर्घ आयत होगा ऐसे युक्ति से रखें। (21)

[मानों ई इ आ अ यह सौमिकि वेदि है। इसका क्षेत्रफल = ½ (30 + 24) x 36 = 972 वर्ग पद। इ म अ आ पर लम्ब दिया। त्रिभुज इ म आ प्राप्त होता है। वह उलट करके ई अ पर ऐसा रखें की इ आ ई अ पर आयेगी, म ठ पर आयेगा। आयत ठ इ म अ प्राप्त होता है। भुजा = ठ इ = अ म 27 पद और भुजा ठ अ = इ म = 36 पद। इस आयत का क्षेत्रफल = 27 x 36 = 972 वर्ग पद।]

महावेदि
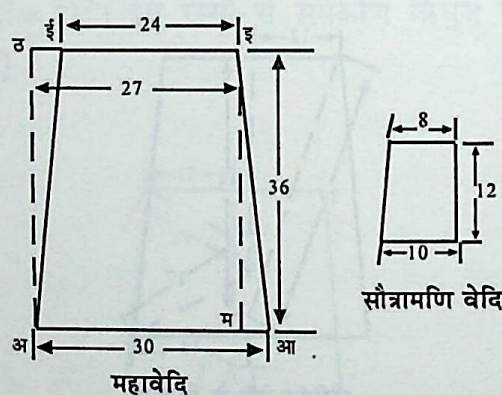
सौत्रामणि वेदि

सौमिक्या वेदेर्वितृतीयदेशे यजेतेति सौत्रामण्या वेदेर्विज्ञायते ॥ 22 ॥ प्रक्रमस्य द्विकरणी प्रक्रमस्थानीया भवति त्रिकरण्या वा ॥ 23 ॥

ऐसा ज्ञात है कि सौमिकि और सौत्रामणि वेदियों के एक तिहाई (क्षेत्र से) कुछ कम (क्षेत्र पर) आहुति डालते हैं। (22) प्रक्रम की द्विकरणी या त्रिकरणी प्रक्रम के जगह मानें। (और वेदि का विन्यास करें। (23)

अष्टिका दशिकेति तिर्यङ्मान्यौ ॥ 24 ॥ द्वादशिका पृष्ठ्या ॥ 25 ॥ त्रिणि चतुर्विंशानि पदशतानि सौत्रमणिकी वेदिः ॥ 26 ॥ द्विस्तावा वेदिर्भवतीत्यश्वमेधे विज्ञायते ॥ 27 ॥

आठ और दस (पद पूर्व और पश्चिम की) तिर्यङ्मानी होती है। (24) पृष्ठ्या 12 पद है। (25) सौत्रामणि वेदि का क्षेत्रफल 324 वर्ग पद है। (26) अश्वमेध यज्ञ के सौत्रामणि वेदि का क्षेत्रफल इससे दुगुना रखते है ऐसा बताया जाता है। (27)

[सौत्रामणि वेदि का क्षेत्रफल 324 वर्ग पद है याने सौमिकि वेदि के क्षेत्रफल का एक तिहाई है। अश्वमेध के यज्ञ में सौत्रमणि वेदि का क्षेत्रफल दुगुना चहिए। इसलिए प्रक्रम के जगह इसकी द्विकरणी लेनी चहिये।]

इति पञ्चमः खण्डः।

खण्ड पांच समाप्त।

इति द्वितीयः पटलः।

पटल दो समाप्त।

प्रक्रमस्य द्विकरणी प्रक्रमस्थानीया भवति ॥ 1 ॥ प्रक्रमो द्विपदः त्रिपदो वा ॥ 2 ॥ प्रक्रमे याथाकामी शब्दार्थस्य विशयित्वात् ॥ 3 ॥

प्रक्रम की द्विकरणी प्रक्रम के बदले में लेते है। (1) प्रक्रम दो या तीन पद होता है (2) इच्छानुसार प्रक्रम की लम्बाई लेते हैं क्योंकि वह यथाकामी होता है। (3)

[कपर्दिभाष्य में प्रक्रम की व्याख्या दी है। -क्रामत्यनेनेति क्रमः, प्रकृष्टः क्रमः इति निरूढः।)

यजमानस्य अध्वर्योर्वा ॥ 4 ॥ एष हि चेष्टानां कर्ता भवति ॥ 5 ॥

अथवा यजमान या अध्वर्यू के (पांव के) नाप से (पद की) लम्बाई निश्चित करें। (4) (क्योंकि) वह (यजमान या अध्वर्यू) सर्व क्रियाओं का कर्ता होता है। (5)

रथमात्री निरूढपशुबन्धस्य वेदिर्भवतीति विज्ञायते ॥ 6 ॥

बताया जाता है कि रथ के नापों की निरूढ पशुबंध (यज्ञ) की वेदि होती है। (6)

तस्य खल्वाहू रथाक्षमात्री पश्चात्तिर्यगीषया प्राची ॥ 7 ॥ विपथयुगेन पुरस्तात् ॥ 8 ॥

इस वेदि के बारे में सचमुच कहा है कि इसकी पश्चिम बाजू रथ के अक्ष (धुरी) इतनी और प्राची ईषा इतनी होती हैं। (7) पूर्व बाजू विपथ युग (विपथ नाम के रथ के जुअे) इतनी होती है। (8)

[खराब मार्ग के लिये विपथ नाम का रथ उपयोजित करते हैं।]

यावता वा बाह्ये छिद्रे ॥ 9 ॥

या (पूर्व बाजू) जुअे के बाहर के छिद्रों के दूरी इतनी लम्बी लें। (9)

(जुअे की लम्बाई 86 अंगुल और छिद्रों की दूरी 80 अंगुल है।)

तदेकरज्ज्वोक्तम् ॥ 10 ॥ पञ्चदशिकेनैवापायम्यार्धाक्षेणार्धयुगेन श्रोण्यंसान्निहरेत् ॥ 11 ॥

एक (ही) रस्सी से वेदि के विन्यास की रीति (5.3-4) कही हैं। (10) (इस रीति से) रस्सी 15वें (भाग के) चिन्ह से खींचकर आधे धुरी के लम्बाई से श्रोणी और आधे जुओ के लम्बाई से अंस प्राप्त करें। (11)

अथाप्युदाहरन्ति ॥ 12 ॥ अष्टशीतिशतमीषा तिर्यगक्षश्चतुश्शतम् षडशीतिर्युगं चास्य रथश्चारण उच्चते ॥ 13 ॥ इति रथपरिमाणम् ॥ 14 ॥

अब उदाहरण कहते हैं। (12) ईषा 188, आडा अक्ष 104 और युग 86 अंगुलों के हैं। इस (नापों के) रथ को 'चारण' कहते हैं। (13) यह रथ का नाप हुआ। (14)

[रथ के आयोधन, पुष्य, जैत्र और चारण ऐसे भेद हैं। विपथ और चारण एक ही प्रकार के रथ होते हैं।)

अरत्निभिर्वा चतुर्भिः पश्चात् षड्भिः प्राची त्रिभिः पुरस्तात् ॥ 15 ॥ तदेकरज्ज्वोक्तं ॥ 16 ॥ पञ्चदशिकेनैव अपायम्य द्वाभ्यामध्यर्धेनेति श्रोण्यंसान्निर्हरेत् ॥ 17 ॥

अथवा (वेदि का) अरत्नि से नाप, पश्चिम बाजू चार अरत्नि (= 96 अंगुल), प्राची छः अरत्नि (= 144 अंगुल) और पूर्व बाजू तीन अरत्नि (= 72 अंगुल) है। (15) एक ही रस्सी से वेदि के विन्यास की रीति कही हैं। (16) 15वें चिन्ह से (रस्सी) खींचकर दो और डेढ़ अरत्नि दूरी पर (क्रमशः) श्रोणी और अंस प्राप्त करें। (17)
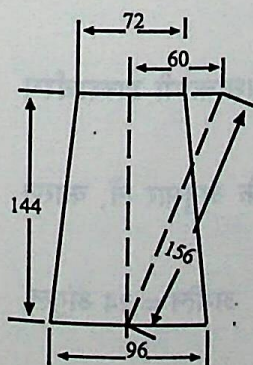
[प्राची छः अरत्नि लम्बी है। इसलिये नौ अरत्नि लम्बी रस्सी लेकर इसके $\frac{13}{12}$ $\times 6 = 6\frac{1}{2}$ अरत्नि और $\frac{5}{12} \times 6 = 2\frac{1}{2}$ अरत्नि लम्बाई के दो भाग चिन्ह से करें। $144^2 = 156^2 - 60^2$। इस रस्सी से समकोण त्रिभुज का विन्यास कर सकते हैं।]

यजमानमात्री चतुस्त्रक्तिर्भवतीति पैतृक्या वेदेर्विज्ञायते ॥ 18 ॥ तदेकरज्ज्वोक्तं पञ्चदशिकेनैवापायम्यार्धेन ततः श्रोण्यंसान्निर्हरेत् ॥ 19 ॥

बताया जाता है कि महापितृ यज्ञ में वेदि यजमान के नापों की (ऊँचाई इतनी) (वर्गाकार) होकर इसे चार सिरे होते हैं। (18) एक ही रस्सी से वेदि के विन्यास की रीति कही हैं। 15वें चिन्ह से (रस्सी) खींचकर आधे (चौड़ाई से) श्रोणी और अंस प्राप्त करें। (19)

दशोपदोत्तरा वेदिर्भवतीति सोमे विज्ञायते ॥ 20 ॥ तदेकरज्ज्वोक्तं पञ्चदशिकेनैवापायम्यार्धेन ततः श्रोण्यंसान्निर्हरेत् ॥ 21 ॥

ज्ञात हैं कि सोमयज्ञ की उत्तर वेदि दस पदों की (वर्ग पदों की) होती है। (20) एक रस्सी से वेदि के विन्यास की रीति कही है। 15वें चिन्ह से (रस्सी) खींचकर आधे (चौड़ाई से) श्रोणी और अंस प्राप्त करें। (21)

[कपर्दि भाष्य से एक पद चौड़ा और तीन पद लम्बा आयत का विन्यास करें। इसकी अक्ष्णया $\sqrt{10}$ पद प्राप्त होगी। अक्ष्णया रज्जु की लम्बाई प्रमाण रज्जु की लम्बाई है। इससे 5.3-4 से वेदि का विन्यास करें। यह वेदि वर्गाकार है, समलंब समद्विभुज चतुर्भुज नहीं। और कात्यायन शुल्बसूत्र 2.9 देखें।)

तां युगेन यजमानस्य वा पदैर्विमाय शम्यया परिमिमीते ॥ 22 ॥

वह (उत्तरवेदि) युग के नाप से या यजमान के पाँव के नाप से या शम्या के नाप से नापें। (22)

पदे युगेऽरत्नावियति शम्यायां च मानार्थेषु यथाकामी शब्दार्थस्य विशयित्वात् ॥ 23 ॥

पद, युग, अरत्नि और शम्या की नापें चाहत के अनुसार लें, कारण नापे यदृच्छया ले सकते हैं ऐसा कहा हैं। (23)

[1 पाद = 15 अंगुल, 1 युग = 86 अंगुल, 1 अरत्नि = 24 अंगुल, 1 शम्या = 36 अंगुल।

ये प्रमाण नापें हैं। या यजमान के पाँव का नाप एक पद = 15 अंगुल मानकर अंगुल का लम्बाई का प्रमाण निश्चित करें और ऊपर दिये हुए नापों से युग नाप की या दस पद नाप की उत्तर वेदि नापें।]

विमितायां पुरस्तात् पार्श्वमान्या उपसंहरेत् ॥ 24 ॥ श्रुतिसामर्थ्यात् ॥ 25 ॥

ऐसी नापी हुई वेदि की पूर्व पार्श्वमानी लम्बाई में कम करें। (24) कारण ऐसा श्रुति कहती है। (25)

इति षष्ठः खण्डः।

खण्ड छः समाप्त।
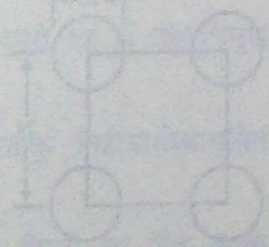
नवारत्नि तिर्यक् सप्तविंशतिरुदगायतमिति सदसो विज्ञायते ॥ 1 ॥ अष्टादशेत्येकेषाम् ॥ 2 ॥ तदेकरज्ज्वोक्तं पञ्चदशिकेनैवापायम्य अर्धपञ्चमैः श्रोण्यंसान्निर्हरेत् ॥3॥

ज्ञात है कि सदस की तिर्यङ्मानी नौ अरत्नि और 27 अरत्नि उत्तर दक्षिण बाजू (पार्श्वमानी) है। (1) कुछ लोगों के मत से (पार्श्वमानी) 18 अरत्नि है। (2) एक रस्सी से विन्यास की रीति कही है, 15वें चिन्ह से रस्सी खींचकर 4 ½ अरत्नि दूरी पर श्रेणी और अंस प्राप्त करें। (3)

प्रादेशमुखाः प्रादेशान्तराला भवन्तीत्युपरवाणां विज्ञायते ॥ 4 ॥ अरत्निमात्रं चतुरश्रं विहृत्य स्रक्तिषु शंङ्कून्निहत्यार्धप्रादेशेन तं तं परिलिखेत् ॥ 5 ॥ श्रुतिसामर्थ्यात् ॥ 6 ॥
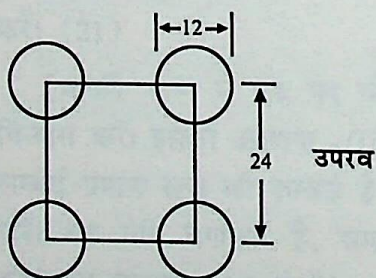
बताया जाता हैं कि एक प्रादेश मुख के (व्यास के) उपरवों के (गड्ढ़े) एक प्रादेश दूरी पर होते हैं। (4) एक अरत्नि भुजा का वर्ग खींचकर इसके सिरों पर खुंटियाँ ठोकें और आधे प्रादेश त्रिज्या से उन उन सिरों पर वृत्त खींचें। (4) (कारण) ऐसा श्रुती कहती है। (6)

व्यायाममात्री भवतीति गार्हपत्यचितेर्विज्ञायते ॥ 7 ॥ चतुरश्रेत्येकेषाम् ॥ 8 ॥ परिमण्डलेत्येकेषाम् ॥ 9 ॥

ज्ञात है कि गार्हपत्य चिति एक व्यायाम नाप की होती है। (7) कुछ लोगों के मत से वह वर्गाकार है। (8) कुछ लोगों के राय से वह वृत्ताकार है। (9)

करणं व्यायामस्य तृतीयायामं सप्तमव्यासं कारयेत् ॥ 10 ॥

(ईंटें तैयार करने के) सांचे की (करण) लम्बाई व्यायाम के एक तिहाई (32 अंगुल) और चौड़ाई एक सप्तमांश (13 अंगुल 24 तिल) लें। (10)

ता एकविंशतिर्भवन्ति ॥ 11 ॥

वे (ईंटें) 21 होती हैं। (11)

[$\dfrac{\text{गार्हपत्य चिति का क्षेत्रफल}}{\text{एक ईंट का क्षेत्रफल}} = \dfrac{96 \times 96}{\frac{96}{3} \times \frac{96}{7}} = 21$ ईंटें।]
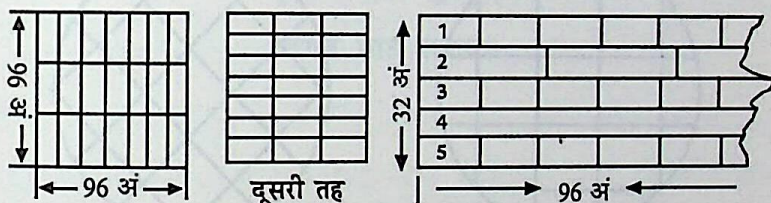
प्रागायामाः प्रथमे प्रस्तारेऽपरस्मिन्नुदगायामाः ॥ 12 ॥

(ईटें) पहली तह में पूर्वाभिमुख और दूसरी तह में उत्तराभिमुख रखते हैं। (12)

मण्डलायां मृदो देहं कृत्वा मध्ये शङ्कुं निहत्यार्धव्यायामेन सहमण्डलं परिलिखेत् ॥ 13॥

वृत्ताकार (चिति निर्माण करनी हो तो) मिट्टी का पिंड करके (इसके) मध्य बिन्दु पर खुंटि ठोकें और आधे व्यायाम त्रिज्या से वृत्त खींचें। (13)

तस्मिंश्चतुरश्रमवदध्याद्यावत्संभवेत्तन्नवधा व्यवलिख्य त्रैधमेकैकं प्रधिकं विभजेत् ॥ 14 ॥

इसमें (वृत्त में) (बड़े से बड़ा) वर्ग समायोजित करें और उसके नौं (वर्ग) विभाग करें। हर एक प्रधि के तीन-तीन भाग करें। (14)

उपधाने चतुरश्रस्यावान्तरदेशान्प्रतिस्रक्तीस्संपादयेत् ॥ 15 ॥

(ईंटें) रखते समय वर्ग के सिरे उपदिशाओं की तरफ आएं ऐसे वे पहली तह में रखें।

मध्यानीतरस्मिन्प्रस्तारे ॥ 16 ॥

दूसरी तह में वर्ग के (भुजा के) मध्य उपदिशाओं की तरफ आयेंगें, ऐसी (ईंटें रखें) (16)
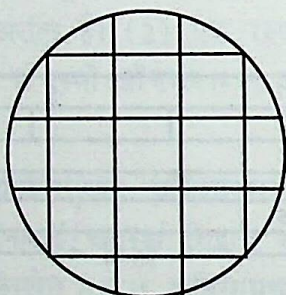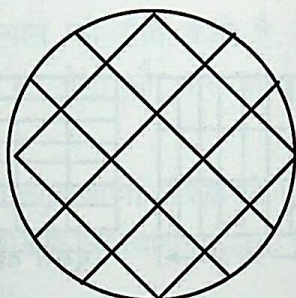
वृत्ताकार गार्हपत्य अग्नि

व्यत्यासं चिनुयाद्यावतः प्रस्तारांश्चिकीर्षेत् ॥ 17 ॥

(ईंटों की) जितनी तह निर्माण करने की इतनी एक दूसरे पर उलट सीधी रखें। (17)

पिशीलमात्रा भवन्तीति धिष्ण्यानां विज्ञायते ॥ 18 ॥ चतुरश्रा इत्येकेषाम् ॥ 19 ॥ परिमण्डला इत्येकेषाम् ॥ 20 ॥

ज्ञात है कि धिष्ण्यायों की चौड़ाई एक पिशील है। कुछ लोगों के राय से वे वर्गाकार हैं। (19) कुछ लोगों के राय से वे वृत्ताकार हैं। (20)

[कपर्दिभाष्य से एक पिशील याने दो हाथों के बीच का अंतर, या मुठ्ठी किये हुए हाथ की दूरी या एक प्रादेश अन्तर।]

मृदो देहान्कृत्वाऽग्नीध्रीयं नवधा व्यवलिख्य एकस्याः स्थाने अश्मानमुपदध्यात् ॥ 21 ॥ यथासंख्यमितरा व्यवलिख्य यथायोगमुपदध्यात् ॥ 22 ॥

मिट्टी का पिण्ड करके आग्निध्रीय धिष्ण्या के लिए नौं (वर्ग) भाग आरेखित करें परन्तु एक (वर्ग) भाग में ईंट की जगह (इस आकार का) पत्थर रखें। (21) अन्य धिष्ण्यायों के चाहिये इतने संख्या के भाग करें और (ईंटें) जैसी व्यवस्था होगी ऐसी युक्ति से रखें। (22)

इति सप्तमः खण्डः।

खण्ड सात समाप्त।

भवतीव खलु वा एष योऽग्निं चिनुते इति विज्ञायते ॥ 1 ॥ वयसां वा एष प्रतिमया चीयत इत्याकृतिचोदनात् ॥ 2 ॥ प्रत्यक्ष-विधानाद्वा ॥ 3 ॥

ज्ञात है कि समृद्धि का सचमुच लाभ होने के लिये यह अग्निचिति चिनते हैं। (1) अथवा पंछी जैसे आकार की यह चिति चिनें, कारण इसका आकार पंछी जैसा होता है (2) अथवा ऐसा प्रत्यक्ष विधान है इसीलिये। (3)

यावदाम्नानेन वेणुना चतुरश्रे आत्मनि पुरुषानवमिमीते ॥ 4 ॥

परम्परा से (चिति का) आत्मा बांस से, वर्ग पुरुष नाप से, नापते हैं। (4)

पुरुषं दक्षिणे पक्षे पुरुषं पुच्छे पुरुषमुत्तरे ॥ 5 ॥

दक्षिण पंख एक वर्ग पुरुष का, (पश्चिम की) पूँछ एक वर्ग पुरुष की (और) उत्तर पंख एक वर्ग पुरुष का होते हैं। (5)

अरत्निना दक्षिणतो दक्षिणं वर्धयति ॥ 6 ॥ एवमुत्तरत उत्तरम् ॥ 7 ॥ प्रादेशेन वितस्त्या वा पश्चात् पुच्छम् ॥ 8 ॥

दक्षिण पंख में दक्षिण की ओर एक अरत्नि से वृद्धि करते हैं। ऐसा ही उत्तर पंख उत्तर की ओर (एक अरत्नि से वृद्धि करते हैं।) पश्चिम की पूँछ में एक प्रादेश या एक वितस्ति से (वृद्धि करते हैं।)। (8)

एकविधः प्रथमो अग्निर्द्विविधो द्वितीयस्त्रिविधस्तृतीयः ॥ 9 ॥ त एवमेवोद्यन्त्यैकशतविधात् ॥ 10 ॥

पहला अग्नि एक वर्ग पुरुष का, दूसरा दो वर्ग पुरुषों का, तीसरा तीन वर्ग पुरुषों का होता है। (9) ये अग्नि इसी तरह से 101 वर्ग पुरुष तक (निर्माण करते हैं।) (10)

तदु ह वै सप्तविधमेव चिन्वीत ॥ 11 ॥ सप्तविधो वाव प्राकृतोऽग्निः ॥ 12 ॥ तत ऊर्ध्वमेकोत्तरानिति विज्ञायते ॥ 13 ॥

यह अग्नि केवल सप्तविध ही (सात वर्ग पुरुषों का ही) चिनें। (11) अग्नि प्रकृति से ही सप्तविध होता है। (12) जानते हैं कि इसके आगे एक-एक वर्ग पुरुष से इसके क्षेत्रफल में वृद्धि करते हैं। (13)

एकविधप्रभृतींना न पक्षपुच्छानि भवन्ति ॥ 14 ॥ सप्तविधवा-क्यशेषत्वाच्छ्रुति विप्रतिषेधाच्च ॥ 15 ॥

एकविध (से छः विध तक) इत्यादि अग्नियों को पंख और पूँछ नहीं होते। (14) अग्नि सातविध का ही चिनें कारण ऐसी श्रुति है और श्रुती का इनके लिये (एकविध से छः विध तक के अग्नियों के लिये) आत्यंतिक निषेध है इसलिये। (15)

अष्टविध प्रभृतींना यदन्यत्सप्तभ्यस्तत्सप्तधा विभज्य प्रतिपुरुष-मावेशयेत् ॥ 16 ॥

अष्टविध इत्यदि अग्नियों के विषय में प्रथम सप्तविध अग्नि से जितने अधिक क्षेत्रफल से (इसकी वृद्धि करने की) इस (क्षेत्रफल) के सात भाग करें और प्रत्येक भाग का (प्रथम अग्नि के) प्रत्येक वर्ग पुरुष में योग करें। (16)

[आठ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल के अग्नि का विन्यास करना हो तो (8-7 =) 1 वर्ग पुरुष के सात भाग करके उनका सात वर्ग पुरुषों से योग करें।]

आकृतिविकारस्याश्रुतत्वात् पुरुषमात्रेण विमिमीते वेणुना विमिमीते इति विज्ञायते ॥ 17 ॥

ज्ञात है कि अग्नि के आकार में (नापों में) विकार होते हैं ऐसी श्रुति नहीं है इसलिये अग्नि पुरुष नाप से ही और बांस से ही नापें। (17)

[पुरुष लम्बाई के बांस से पुरुष लम्बाई की रस्सी से अग्निचिति अधिक शुद्ध नाप सकते हैं इसलिये यह सूचना दी गई है।]

यावन्यजमान ऊर्ध्वबाहुस्तावदन्तराले वेणोश्छिद्रे करोति ॥ 18 ॥ मध्ये तृतीयम् ॥ 19 ॥

यजमान के हाथ ऊपर करके वहाँ से (जमीन तक) जो अन्तर होता है उतनी दूरी पर बांस पर दो छिद्र करें। (19) (इनके) मध्य में तीसरा छिद्र करें।

अपरेण यूपावटदेशमनुपृष्ठ्यं वेणुं निधाय छिद्रेषु शङ्कून्निहत्य उन्मुच्यापराभ्यां दक्षिणाप्राक्परिलिखेदान्तात् ॥ 20 ॥ उन्मुच्य पूर्वस्मादपरस्मिन्प्रतिमुच्य दक्षिणा प्रत्यक्परिलेखेदान्तात् ॥ 21 ॥

यूप के गडढ़े की जगह से पश्चिम की ओर पृष्ठ्या पर (ऊपर दिया हुआ नाप का) बांस रखकर इसके छिद्रों में खुंटियाँ ठोकें। पश्चिम की खुंटि निकाल कर (और पूर्व की खुंटि केन्द्र लेकर पश्चिम से) दक्षिण-पूर्व तक वृत्तखण्ड निकालें। (20) पूर्व (छिद्र) की खुंटि निकाल कर, पश्चिम के छिद्र मे खुंटि ठोकें और (पूर्व से) पश्चिम-दक्षिण तक वृत्तखण्ड खींचें। (21)

इति अष्टमः खण्डः।

खण्ड आठ समाप्त।

उन्मुच्य वेणुं मध्यमे शङ्कावन्त्यं वेणोश्छिद्रं प्रतिमुच्योपर्यु-परिलेखासमरं दक्षिणा वेणुं निधायान्त्ये छिद्रे शङ्कुं निहत्य तस्मिन्मध्यमं वेणोच्छिद्र प्रतिमुच्य लेखान्तयोरितरे प्रतिष्ठाप्य छिद्रयोः शङ्कूं निहन्ति ॥ 1 ॥

(अब) बांस हटाकर मध्य खुंटि में बांस का सिर का छिद्र रखें और जहाँ (पूर्व-दक्षिण और पश्चिम-दक्षिण तक खींचें हुए) वृत्तखण्ड एक दूसरे का काटते हैं वहाँ दक्षिण की ओर बांस रखें। (दूसरे) सिर के छिद्र में खुंटि ठोकें। इस खुंटि पर (अब) बांस का मध्य छिद्र रखकर वृत्तखंडों के अंतों पर (बांस के सिरो के) दोनों छिद्र रखें और वहाँ खुंटियाँ ठोंकें (1)

[क ख की लम्बाई एक पुरुष है। बांस क ख पर रखें। इसका पूर्व छिद्र क पर, पश्चिम छिद्र ख पर और मध्य छिद्र ग पर रखें। क छिद्र में खुंटि ठोकें और वृत्तखण्ड ख म निकालें। क छिद्र की खुंटि निकाल कर ख छिद्र में खुंटि ठोकें और वृत्तखण्ड क न खींचें। ये दोनों वृत्तखण्ड घ पर एक दूसरे को काटते हैं। बांस का पूर्व छिद्र ग पर रखें और बांस से ग घ जोड़ें। पश्चिम छिद्र च पर आता है। वहाँ खुंटि ठोकें। बांस का मध्यछिद्र च पर रखकर वह ऐसा रखें की वृत्तखण्ड ख म और क न को वह म और न यहाँ स्पर्श करेगा। बांस के सिरो के छिद्रों में याने म और न पर खुंटियाँ ठोकें।)]
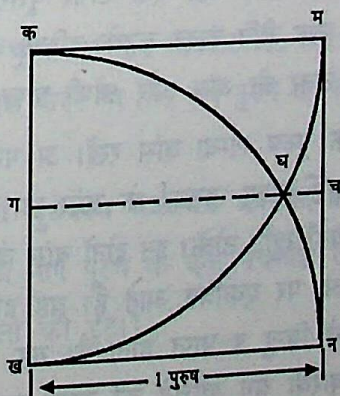
स पुरुषः चतुरश्रः ॥ 2 ॥

यह वर्ग (एक वर्ग) पुरुष है। (2)

एवं प्रदक्षिणं चतुर आत्मनि पुरुषानवमिमीते ॥ 3 ॥ पुरुषं दक्षिणे पक्षे ॥ 4 ॥ पुरुषं पुच्छे पुरुषमुत्तरे ॥ 5 ॥

इस रीति से, प्रदक्षिण क्रम से, चार (वर्ग) पुरुष (क्षेत्रफल के) आत्मा का विन्यास करें। (3) एक (वर्ग) पुरुष (क्षेत्रफल का) वर्ग दक्षिण पंख के लिये खींचें। (4) एक (वर्ग) पुरुष (क्षेत्रफल का) वर्ग (पश्चिम की ओर) पूँछ के लिये और एक (वर्ग) पुरुष (क्षेत्रफल का) वर्ग उत्तर के (पंख के) लिए खीचें। (5)

अरत्निना दक्षिणतो दक्षिणमित्युक्तम् ॥ 6 ॥

दक्षिण के (पंख की लम्बाई) दक्षिण की ओर एक अरत्नि से बढ़ाने के बारे में कहा (8.6-8) गया है। (6)

पृष्ठ्यातो वा पुरुषमात्रस्याक्ष्णया वेणुं निधाय पूर्वस्मिन्नितरम् ॥7॥ ताभ्यां दक्षिणमंसं निर्हरेत् ॥ 8॥ विपर्यस्य श्रोणी ॥ 9॥ पूर्ववदुत्तरमंसम् ॥ 10 ॥

पृष्ठ्या पर एक पुरुष लम्बा बांस रखकर (इसके पूर्व सिरे के छिद्र में खुंटि ठोकें)। पृष्ठ्या के पश्चिम अंत पर अक्ष्णया लम्बाई का ($\sqrt{2}$ पुरुष) बांस रखकर (इसके पश्चिम छिद्र में खुंटि ठोकें) इन दोनों बांस के (दूसरे सिरो के) छिद्र जहाँ एक ऊपर दूसरा ऐसे आते हैं। वह दक्षिण अंस। (8) यह रीति उलट करके दक्षिण की श्रोणी प्राप्त होती है। (9) इसी से उत्तर के अंस और श्रोणी प्राप्त करें। (10)

[अ ई पर एक पुरुष लम्बा बांस रखें। अ पर खुंटि ठोकें। ई पर $\sqrt{2}$ पुरुष लम्बाई के बांस का पश्चिम छिद्र रखकर वहाँ खुंटि ठोकें। इन दोनों बांस के दूसरे सिरो के छिद्र आ पर एकत्रित आते हैं। यह दक्षिण अंस। इस रीति से बिन्दु इ प्राप्त होता है। यह दो बांस का उपयोग करके वर्ग खींचने की दूसरी पद्धति कही गई है।]
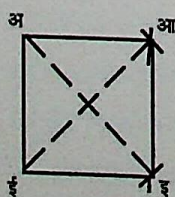
रज्ज्वा वा विमायोत्तरवेदिन्यायेन वेणुना विमिमीते ॥ 11 ॥

अथवा रस्सी से उत्तर वेदि का विन्यास जैसा करते हैं। (सूत्र 6.21) इस रीति से (परन्तु) बांस से (अग्निचिति का) विन्यास करते हैं। (11)

सपक्षपुच्छेषु विधाभ्यासे अपचये च विधासप्तमकरणीं पुरुषस्थानीयां कृत्वा विहरेत् ॥ 12 ॥

पंख और पूँछ के साथ अग्नि के क्षेत्र में वृद्धि या कमी करने की हो तो (जितने वर्ग पुरुषों से क्षेत्रफल ज्यादा या कम करने का हो इसकी) सम्तमकरणी लेकर और वह पुरुष प्रमाण मानकर अग्निचिति का विन्यास करें। (12)

[कपर्दिभाष्य से - एक पुरुष = 120 अंगुल = 120x34 = 4080 तिल। इसका वर्ग (एक वर्ग पुरुष का क्षेत्रफल) = 16646400 वर्ग तिल। इसे आठ से गुने और इसमे $\frac{4080}{2}$ = 2040 तिल का योग करें। इस योग का 15 से विभाजन करें और भागाकार दुगुना करके इसका वर्गमूल निकालें। यह अष्टविध अग्नि के पुरुष का नाप है।

$16646400 \times 8 = 133171200 + 2040 = 133173240$

$\frac{133173240}{15} = 8878216$, $8878216 \times 2 = 17756432$

$\sqrt{17756432} = 4213.8$ तिल। $\frac{4213.8}{120 \times 34} = 1.03$ पुरुष = 123.6 अंगुल।

1.03 पुरुष एक पुरुष का नाप मानकर 7½ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल की अग्निचिति का विन्यास करने पर 8½ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल की अग्निचिति प्राप्त होती है।]

करणानीष्टकानां पुरुषस्य पञ्चमेन कारयेत् ॥ 13 ॥

ईंटों के सांचे का नाप पुरुष के एक पंचमांश लें। (13)

[24 x 24 अंगुलों की ईंट।]

तासामेवैकतोऽध्यर्धस्तद् द्वितीयम् ॥ 14 ॥

इसकी एक भुजा डेढ़ गुनी करें यह दूसरी (प्रकार की) ईंट। (14)

[36x24 अंगुलों की ईंट।]

पुरुषस्य पञ्चमो भाग एकतः प्रादेश एकतः तत्तृतीयम् ॥ 15 ॥

एक भुजा पुरुष का पांचवाँ भाग और एक भुजा एक प्रादेश लम्बी यह तीसरी (ईंट)। (15)

[24 x 12 अंगुलों की ईंट।]

सर्वतः प्रादेशस्तच्चतुर्थम् ॥ 16 ॥

सब भुजाएँ एक प्रादेश लम्बी यह चौथी (ईंट)। (16)

[12 x 12 अंगुलों की ईंट।]

समचतुरश्राः पञ्चदशभागीयास्तत्पञ्चमम् ॥ 17 ॥

पुरुष के 15वें भाग के लम्बाई की वर्गाकार यह पांचवी (ईंट)। (17)

[8 x 8 अंगुलों की ईंट।]

ऊर्ध्वप्रमाणमिष्टकानां जानोः पञ्चमेन कारयेत् ॥ 18 ॥

ईंटों के ऊँचाई का नाप घुटने के एक पंचमांश लें। (18)

[1 जानू = 32 अंगुल। ईंटों की ऊँचाई = 6 अंगुल $13\frac{3}{5}$ तिल।)

अर्धेन नाकसदां पञ्चचूडानां च ॥ 19 ॥

नाकसद और पंचचूड़ (नामक ईंटों की ऊँचाई) आधी रखें। (19)

यत्पच्यमानानां प्रति-ह्रसीत पुरीषेण तत्सम्पूरयेत् अनियतपरिमाणत्वात् पुरीषस्य ॥ 20 ॥

ईंटें पकाने पर इनकी नापें कम होती हैं। (इसीलिये अग्निचिति के निर्माण के समय इसकी लम्बाई और चौड़ाई) गिली मिट्टी से पूरी करें, कारण गिली मिट्टी को विशिष्ट आकार (या नाप) नहीं होता है। (20)

इति नवमः खण्डः।

खण्ड नौ समाप्त।

उपधानेऽध्यर्धा दश पुरस्तात्प्रतीचीरात्मन्युपदधाति ॥ 1 ॥

ईंटें रखते समय आत्मा में दस अध्यर्धा (36 x 24 अंगुल) ईंटें पूर्व दिशा की ओर पश्चिमभिमुख (और दस अध्यर्धा ईंटें पश्चिम की ओर पूर्वाभिमुख रखें)। (1)

दश पश्चात्प्राचीः ॥ 2 ॥

पूर्व की (अध्यर्धा ईंटों के) पीछे (और पश्चिम की अध्यर्धा ईंटों के आगे) दस-दस अध्यर्धा ईंटें रखें। (2)

पञ्च पञ्च पक्षाग्रयोः ॥ 3 ॥

पांच-पांच (पंचमी ईंटें) पंखों के अग्र भाग में रखें। (3)

पक्षाप्यययोश्च विशयाः तासामर्धेष्टकामात्राणि पक्षयोर्भवन्ति ॥ 4 ॥

जहाँ पंख आत्मा से जोड़े गये हैं वहाँ अर्ध्या (24 x 12 अंगुल) ईंटें पंखों में रखें। (4)

पञ्च पञ्च पुच्छपार्श्वयोर्दक्षिणाः ॥ 5 ॥ उदीचीश्च ॥ 6 ॥

पूँछ के दोनों ओर पांच-पांच अध्यर्धा ईंटें दक्षिण की तरफ (5) और उत्तर की तरफ (रखते हैं।) (6)

पुच्छे प्रादेशमुपधाय सर्वमग्निं पञ्चमभागीयाभिः प्रच्छादयेत् ॥ 7 ॥

पूँछ पर प्रादेश (12 x 12 अंगुल) ईंटें रखकर सब (शेष) अग्नि पंचमी (24 x 24 अंगुल) ईंटों से ढँकें। (7)

पञ्चदशभागीयाभिः सङ्ख्यां पूरयेत् ॥ 8 ॥

पंचदशमी (8 x 8 अंगुल) ईंटों से (दो सौ की) संख्या पूरी करें। (8)

अपरस्मिन्प्रस्तारेऽध्यर्धा दश दक्षिणत उदीचीरात्मन्युपदधाति ॥ 9 ॥ दशोत्तरतो दक्षिणाः ॥ 10 ॥

दूसरी तह में, आत्मा में दस अध्यर्धा ईंटें दक्षिण की ओर उत्तराभिमुख और उत्तर की ओर दक्षिणाभिमुख रखें। (9,10)

यथा प्रथमे प्रस्तारे पक्षौ तथा पुच्छम् ॥ 11 ॥ यथा पुच्छं तथा पक्षौ विपरीता अप्यये ॥ 12 ॥

240 अं
60 अं
120 अं
144 अं
132 अं
120 अं

पहली तह खण्ड 10, सूत्र 1-8

60 अं
120 अं
60 अं
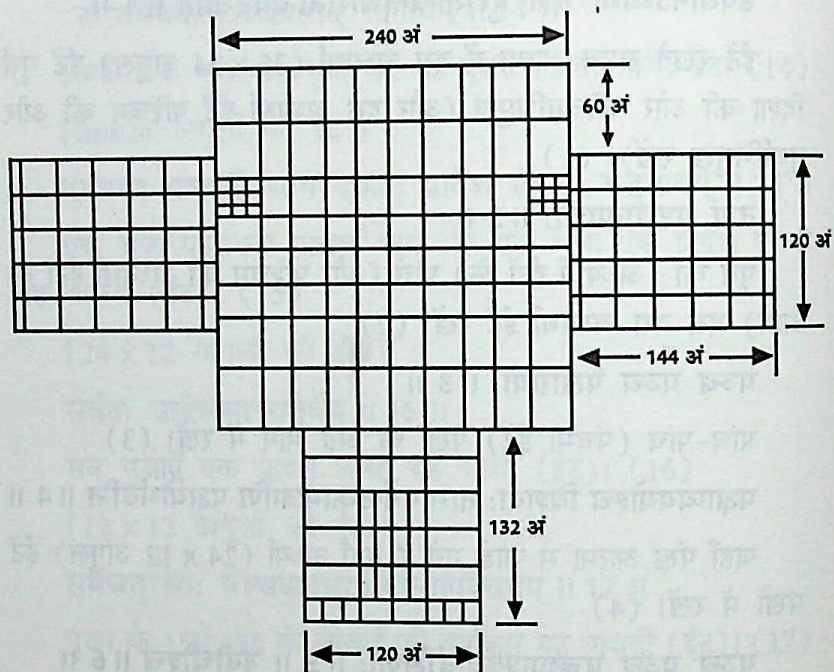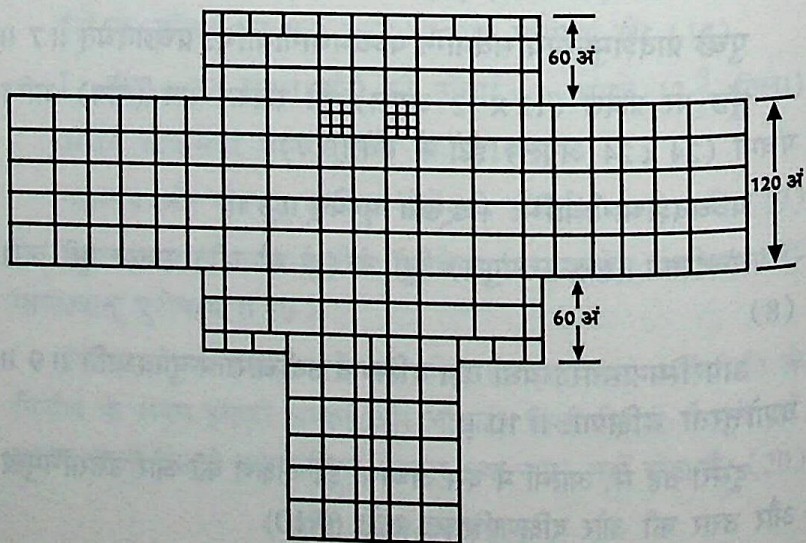
दूसरी तह खण्ड 10, सूत्र 10-14

ईंटें	अध्यर्धा	पंचमी	अध्यर्धा	पाद	पंचदशमी
पहली तह	36x24अं.	24x24अं.	12x24अं.	12x12अं.	8x8अं.
आत्मा	40	38	–	–	18
पंख	–	50	20	–	–
पूँछ	10	4	14	6	–
कुल ईंटें	50	92	34	6	18 = 200
दूसरी तह					
आत्मा	36	25	21	4	18
पंख	10	50	–	–	–
पूँछ	–	24	12	–	–
कुल ईंटें	46	99	33	4	18 = 200

(ईंटों की व्यवस्था) पहली तह में जैसी पंखों में की है वैसी (दूसरी तह में) पूँछ में करें। (11) (ईंटों की व्यवस्था पहली तह में) जैसी पूंछ में क़ी है वैसी (दूसरी तह में) पंखों में करें, जोड़ो के पास उलट रचना करें। (12)

सर्वमग्निं पञ्चमभागीयाभिः प्रच्छादयेत् ॥ 13 ॥

(शेष) सब अग्नि पंचमी ईंटों से ढंकें। (13)

पञ्चदशभागीयाभिः संख्या पूरयेत् ॥ 14 ॥

पंचदशमी (8 x 8 अंगुल) ईंटों से (दो सौ की) संख्या पूरी करें। (14)

व्यत्यासं चिनुयाद्यावतः प्रस्तारांश्चिकीर्षेत् ॥ 15 ॥

जितनी तह चिनने की हो इतनी एक के ऊपर दूसरी उलट सीधी ऐसी रखें। (15)

पञ्च चितयो भवन्ति ॥ 16 ॥

पांच तह होती हैं। (16)

पञ्चभिः पुरीषैरभ्यूहतीति पुरीषान्ता चितिः अर्थान्तरत्वात् पुरीषस्य ॥ 17 ॥

पांचवीं तह गिली मिट्टी में बाँधें। चिति की सब की ऊपर की तह गिली मिट्टी की हो (और चिति की ऊँचाई बराबर 32 अंगुल करें) कारण गिली मिट्टी को कैसा भी आकार दे सकते हैं। (17)

जानुदघ्नीं साहस्त्रं चिन्वीत प्रथमं चिन्वानः ॥ 18 ॥

पहली बार अग्नि (चिति) चिनने के समय वह एक हजार ईंटों की और घुटने तक ऊँचाई की होती है। (18)

नाभिदघ्नीं द्विषाहस्त्रं द्वितीयम् ॥ 19 ॥

दूसरी बार अग्नि (चिति) दो हजार ईंटों की और नाभि तक (ऊँची निर्माण करें) (19)

आस्यदघ्नीं त्रिषाहस्त्रं तृतीयम् ॥ 20 ॥

तीसरी (बांर) अग्नि (चिति) तीन हजार ईंटों की और मुख तक (ऊँचा निर्माण करें)। (20)

[नाभि = 64 अंगुल, आस्य = 96 अंगुल।]

उत्तरमुत्तरं ज्यायाम्सम् ॥ 21॥

(ऐसी ही) उत्तरोत्तर (क्रमशः) ऊँची-ऊँची (चिति) निर्माण करें। (21)

महान्तं बृहन्तमपरिमितं स्वर्गकामश्चिन्वीतेति विज्ञायते ॥ 22 ॥

ऐसा ज्ञात है कि जिसे स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा है उसने (क्षेत्रफल में बहुत) बड़ा, बहुत अधिक ऊँचाई का और अपरिमित (नापों का) अग्नि चिनना चहिये। (22)

द्विषाहस्त्रे द्विप्रस्ताराश्चितयो भवन्ति ॥ 23 ॥ त्रिषाहस्त्रे त्रिप्रस्ताराश्चतुर्थप्रभृतिषु आहारेषु नित्यमिष्टका परिमाणम् ॥ 24॥

दो हजार ईंटों के अग्नि (चिति) में हर तह दो स्तरों की होती हैं। (23) तीन हजार ईंटों के अग्नि (चिति) में हर तह तीन स्तरों की होती

है, इसी रीति से चौथा इत्यादि अग्नि होकर इनका परिमाण सदैव ईंटों से (ईंटों की हजार यह संख्या से) लेते हैं। (24)

विज्ञायते च न ज्यायांसं चित्वा कनियांसं चिन्वीतेति ॥ 25 ॥

और ज्ञात है कि बड़े (क्षेत्रफल का और ऊँचाई का) अग्नि रचने के बाद छोटा अग्नि चिनते नहीं ॥ 25 ॥

इति दशमः खण्डः ।

खण्ड दस समाप्तः ।

इति तृतीयः पटलः ।

पटल तीन समाप्त ।

चतुरश्राभिरग्निं चिनुत इति विज्ञायते ॥ 1॥ समचतुरश्रा अनुपपदत्वाच्छब्दस्य ॥ 2॥

बताया जाता है कि वर्गाकार ईंटों से अग्नि (चिति) चिनते हैं। (1) समचतुर्भुज (लम्बाई और चौड़ाई एक ही है ऐसा) इस शब्द के व्याख्या से। (2)

[सूत्र 2 का अनुवाद ऐसा ही कर सकते हैं-अथवा दीर्घ या विषम ऐसा उपपद (चतुर्भुज) शब्द को नहीं है इसीलिये।]

पादमात्र्यो भवन्ति अरत्निमात्र्यो भवन्ति ऊर्वस्थिमात्र्यो भवन्ति अणूकमात्र्यो भवन्तीति विज्ञायते ॥ 3॥

ज्ञात है कि (ईंटें) पुरुष के चौथाई नाप की (30 x 30 अंगुल) अरत्नि नाप की (24 x 24 अंगुल) ऊर्वस्थि नाप की और अणूक नाप की होती हैं। (3)

चतुर्भागीयमणूकम् ॥ 4 ॥ पञ्चमभागीयारत्निः ॥ 5 ॥ तथोर्वस्थिः ॥ 6॥

पुरुष का चौथाई भाग (30 अंगुल) अणूक (की लम्बाई) है। (4) (पुरुष का) पांचवाँ भाग (24 अंगुल) अरत्नि है। (5) वैसा ही (याने पुरुष का छठा भाग, 20 अंगुल) ऊर्वस्थि है (6)

पादेष्टका पादमात्री ॥ 7 ॥ तत्र यथाकामी शब्दार्थस्य विशयित्वात् ॥ 8॥

पाद ईंट (ऊपर दिये हुए ईंटों के क्षेत्रफल से) एक चौथाई (क्षेत्रफल की) होती है। (7) वे जैसी चाहिये वैसी होती है, यथाकामी शब्द के व्याख्या से। (8)

[अरत्नि ईंट = 24 x 24 अंगुल, अरत्निपाद ईंट = 12x12 अंगुल।
अणूक ईंट = 30x30 अंगुल, अणूकपाद ईंट = 15x15 अंगुल।
ऊर्वस्थि ईंट = 20x20 अंगुल, ऊर्वस्थिपाद ईंट = 10x10 अंगुल।

उपधाने अष्टावष्टौ पादेष्टकाश्चतुर्भागीयानां पक्षाग्रयोर्निदध्यात् ॥ 9॥

ईंटें रखते समय आठ-आठ चतुर्थी ईंटों की पाद ईंटें (15 x 15 अंगुल) पंखों के अग्र भाग में रखें। (9)
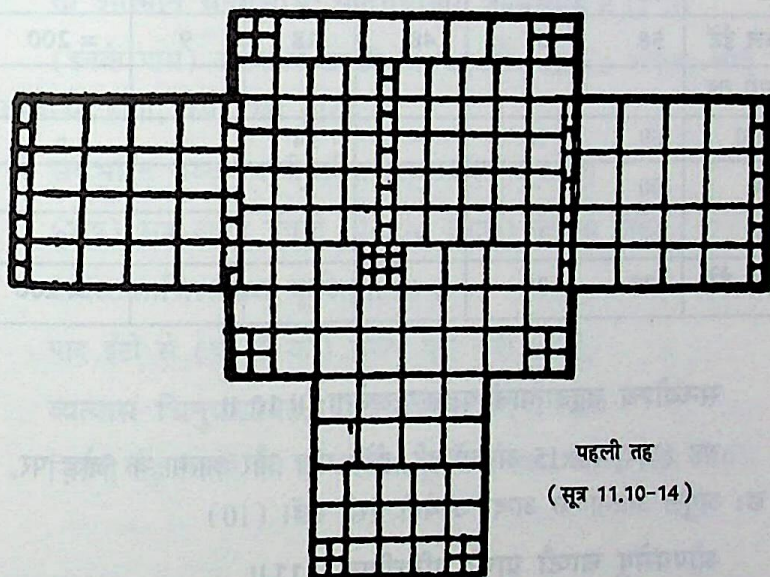
पहली तह
(सूत्र 11.10-14)
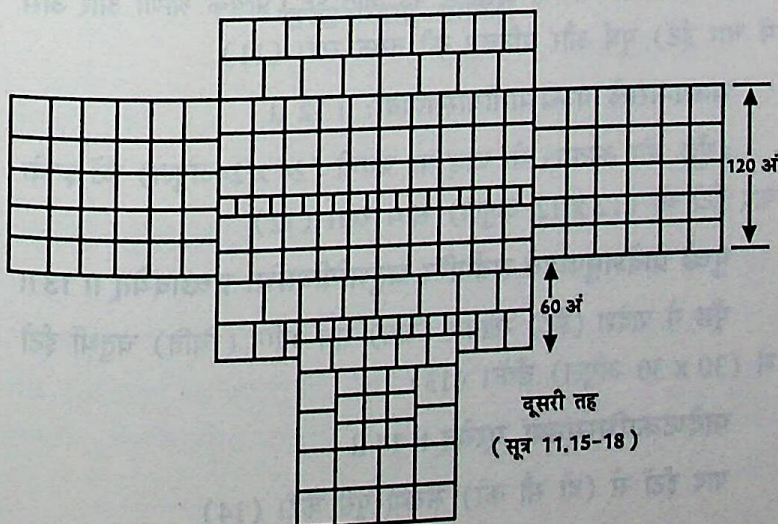
दूसरी तह
(सूत्र 11.15-18)

ईंटें	24x24अं.	30x30अं.	15x15अं.	12x12अं.	10x10अं.	20x20अं.
पहली तह						
आत्मा	45	27	16	10	9	-
पंख	-	32	32	-	-	-
पूँछ	13	8	-	8	-	-
कुल ईंटें	58	67	48	18	9	= 200
दूसरी तह						
आत्मा	69	16	-	34	-	-
पंख	60	-	-	-	-	-
पूँछ	-	12	-	-	-	9
कुल ईंटें	129	28	-	34	-	9 = 200

सन्ध्योश्च तद्वदात्मानं षडङ्गुलावेताः ॥ 10 ॥

यह (पाद, 15x15 अंगुलों की, ईंटें) पंख और आत्मा के जोड़ पर, छः अंगुल आत्मा के अन्दर आयेगी ऐसी रखें। (10)

श्रोण्यंसेषु चाष्टौ प्राची प्रतिचीश्च ॥ 11 ॥

(दो) श्रोणी और दो अंसो में यह आठ ईंटें (प्रत्येक श्रोणी और अंस में चार ईंटें) पूर्व और पश्चिम की तरफ रखें। (11)

सन्ध्यन्तराले पञ्चभागीयास्सपादाः ॥ 12 ॥

(पूँछ और आत्मा) के जोड़ पर पंचमी (24 x 24अंगुल) ईंटें इनके पाद ईंटों के (12 x 12 अंगुल) साथ रखें। (12)

पुच्छे प्रादेशमुपधाय सर्वमग्निं चतुर्भागीयाभिः प्रच्छादयेत् ॥ 13 ॥

पूँछ मे प्रादेश (ईंटें) रखकर (शेष) सब अग्नि (चिति) चतुर्थी ईंटों से (30 x 30 अंगुल) ढँकें। (13)

पादेष्टकाभिस्संख्यां पूरयेत् ॥ 14 ॥

पाद ईंटों से (दो सौ की) संख्या पूरी करें। (14)

अपरस्मिन्प्रस्तारे पुच्छाप्यये पञ्चमभागीयाः विशयाः ॥ 15 ॥

दूसरी तह में पूँछ और आत्मा के जोड़ पर पंचमी ईंटें (24 x 24 अंगुल) दोनों में आयेगी (आत्मा में 12 अंगुल और पूँछ में 12 अंगुल) ऐसी रखें। (15)

ता आत्मनि चतुर्दशभिः पादैर्यथायोगं उपदध्यात् ॥ 17 ॥

(इनके पास) आत्मा में उनकी 14 पाद ईंटें (12x12 अंगुल) जैसी व्यवस्था होगी, वैसी रखें। (16)

सर्वभग्नि पञ्चमभागीयाभिः प्रच्छादयेत् ॥ 17 ॥

(शेष) सब अग्नि पंचमी (24x24 अंगुल) ईंटों से ढंकें। (17)

पादेष्टकाभिस्संख्यां पूरयेत् ॥ 18 ॥

पाद ईंटों से (दो सौ की) संख्या पूरी करें। (18)

व्यत्यासं चिनुयाद्यावतः प्रस्तारांश्चिकीर्षेत् ॥ 19 ॥

जितनी तह चिनने की हो वे एक दूसरे पर उलट सीधी रखें। (19)

इति एकादशः खण्डः।

खण्ड ग्यारह समाप्त।

एकविधप्रभृतीनां करणीनां द्वादशेन त्रयोदशेनेतीष्टकाः कारयेत् ॥ 1॥

एकविध इत्यादि अग्नियों के (ईंटों के) लिये सांचे का नाप इस अग्नि के (भुजा के) $\frac{1}{12}$ और $\frac{1}{13}$ करें। (1)

पादेष्टकाश्च ॥ 2॥

पाद ईंटें भी करें। (2)

व्यत्यासं चिनुयाद्यावतः प्रस्तारांश्चिकीर्षेत् ॥ 3॥

जितनी तह चिनने की हो वे एक दूसरी पर उलटी-सीधी रखें। (3)

एकविधप्रभृतीनां प्रथमाहारेण द्वितीयेन तृतीयेनेति यो युज्येत ॥ 4 ॥ सर्वेषां यथा श्रुतिसंख्या तथोर्ध्वप्रमाणम् ॥ 5॥

एकविध इत्यादि अग्नियों के (क्षेत्रफल) पहले अग्नि के समय, दूसरे और तीसरे अग्नियों के समय (ईंटों की) संख्या, अग्नि की ऊँचाई ये सब अग्नियों के लिये श्रुती में दिये प्रमाण से लें। (5)

काम्या गुणविकाराः गुणशास्त्रत्वात् ॥ 6॥

कामना पूरी करने के लिये किया हुआ अग्नि गुणशास्त्र के अनुसार गुणों से विकार पाता है। (6)

प्रउगं चिन्वीत भ्रातृव्यवानिति विज्ञायते ॥ 7॥

ज्ञात है कि जिसके बहुत भाई बंद है उसे प्रउग चितिं चिननी चहिये। (7)

यावानग्निः सारत्निप्रादेशो द्विस्तावतीं भूमिं चतुरश्रां कृत्वा पूर्वस्याः करण्या अर्धाच्छ्रोणीं प्रत्यालिखेत् ॥ 8॥ सा नित्या प्रउगम् ॥ 9॥

अरत्नि और प्रादेश के साथ जितना अग्नि का क्षेत्रफल है उसके दुगुने क्षेत्रफल का वर्ग करें और इसके पूर्व भुजा का मध्यबिन्दु और पश्चिम की श्रोणियाँ जोड़ें। (8) यह शुद्ध (क्षेत्रफल का) त्रिभुज है। (9)

करणानि चयनमित्येकविधोक्तम् ॥ 10 ॥ प्रउगा इष्टकाः कारयेत् ॥ 11 ॥

ईंटों के सांचे एकविध अग्नि के लिये कहे पद्धति से (त्रिभुज के भुजा के $\frac{1}{12}$ और $\frac{1}{13}$ भागों से) बनाइये और अग्नि चिनें। (10) ईंटें त्रिभुजाकार होती हैं। (11)

[प्रउग अग्निचिति के लिये ईंटों का आकार और नापें नीचें दिये हैं। कोष्ठक में लिखी हुई संख्याएँ $\frac{1}{13}$ भाग ईंटों की हैं।)
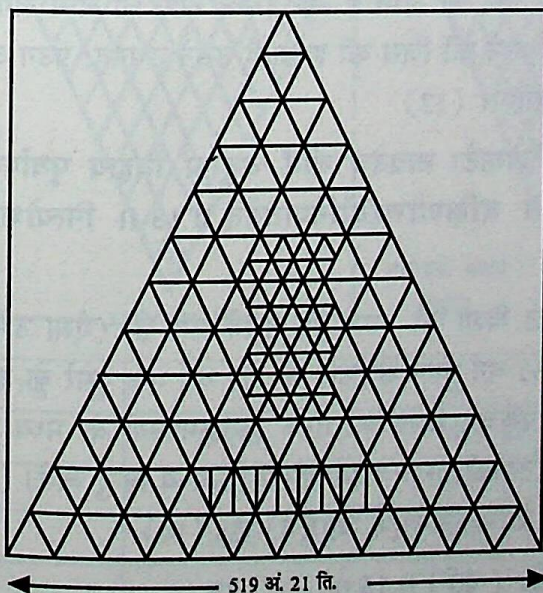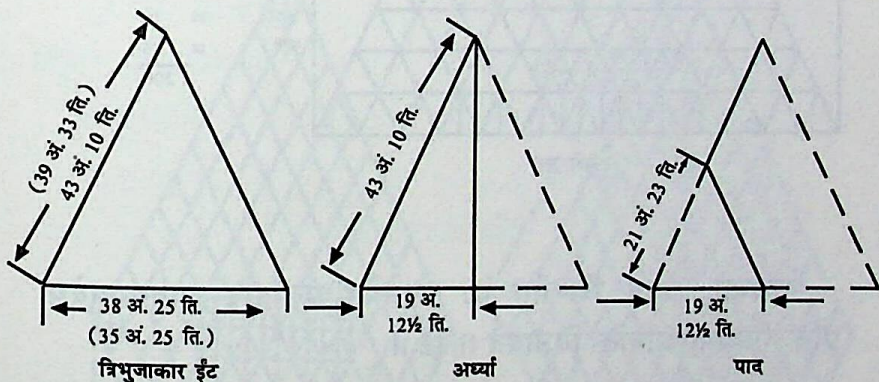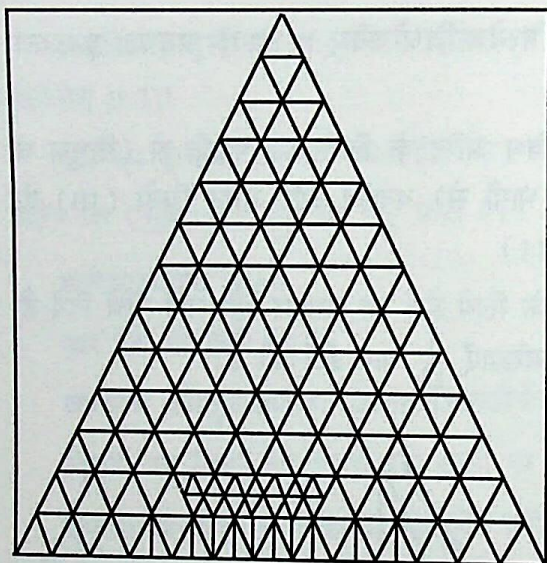
दूसरी तह

उभयतः प्रउगं चिन्वीत यः कामयेत प्रजातान् भ्रातृव्यान्नुदेय प्रतिजनिष्यमाणानिति विज्ञायते ॥ 12 ॥

बताया जाता है कि, जो अभी है और इसके आगे जो जन्म लेगें उन भाई बंदों का नाश करने की जिस की इच्छा है उसने उभयतः प्रउग अग्नि (चिति) चिननी चहिये। (12)

यथा विमुखे शकटे। तावदेव दीर्घं चतुरश्रं विहृत्य पूर्वापरयोः करण्योरर्धात्तावति दक्षिणोत्तरयोर्निपातयेत् ॥ 13 ॥ नित्योभयतः प्रउगम् ॥ 14 ॥

दो शकट उलट दिशा की तरफ मुँह करके रखें है। (ऐसा उभयतः प्रउग होता है) (7½ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल के दो) वर्ग एक दूसरे के संपर्क में रखें। पूर्व और पश्चिम दिशा की तरफ तिर्यङ्मानियों के मध्य बिन्दु और दक्षिण और उत्तर की तरफ पार्श्वमानियों के मध्य बिन्दु जोड़ें। (13) यह शुद्ध उभयतः प्रउग (समभुज चतुर्भुज) है। (14)

प्रउगचितोक्तीः (क्तं) ॥ 15 ॥

प्रउग चिति में कहे अनुसार (उभयतः प्रउग चिति चिनें)। (15)

[ईंटें समभुज चतुर्भुज आकार की और भुजा के $\frac{1}{12}$ और $\frac{1}{13}$ भागों की होती हैं। उभयतः प्रउग के भुजा की लम्बाई = 367 अंगुल, 17 तिल।

पहली तह में रखने की $\frac{1}{12}$ ईंटों की भुजाओं का नाप 30 अंगुल, 25 तिल।

दूसरी तह में रखने की $\frac{1}{13}$ ईंटों की भुजाओं का नाप 28 अंगुल, 8 तिल।]
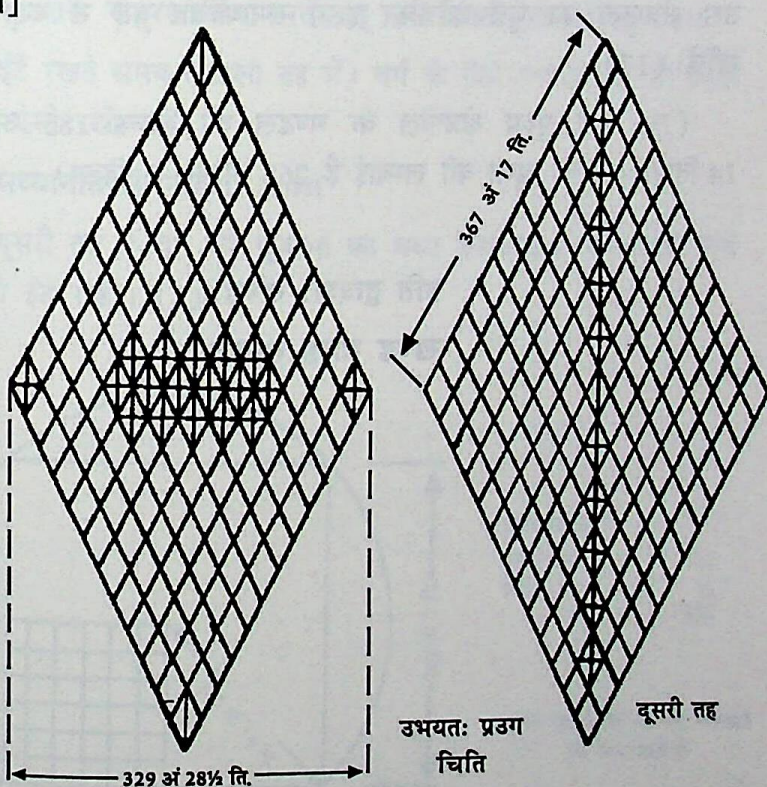
उभयतः प्रउग चिति

पहली तह			दूसरी तह
	उभयतः	प्रउग ईंट	
124	द्वादशी	त्रयोदशी	158
4	अर्ध्या	अर्ध्या	2
72	पाद	पाद	40
200	कुल ईंटें		200

रथचक्रचितं चिन्वीत भ्रातृव्यवानिति विज्ञायते ।। 16 ।।

(शत्रु जैसे) जिसके भाई बंद है उसने रथचक्रचिति चिननी चहिये, ऐसा बताया है। (16)

यावानग्निः सारत्निप्रादेशस्तावतीं भूमिं परिमण्डलां कृत्वा तस्मिन् चतुरश्रमवदध्यात् यावत् संभवेत् ।। 17 ।।

अरत्नि और प्रादेश के साथ अग्नि (चिति) का जितना क्षेत्रफल है उस क्षेत्रफल का वृत्त खींचकर इसमें समायोजित बड़े से बड़ा वर्ग खींचें। (17)

(7½ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल के मण्डल की त्रिज्या 185 अंगुल, 14 तिल। वर्ग के भुजा की लम्बाई है 262 अंगुल, 7 तिल।)

इति द्वादशः खण्डः।

खण्ड बारह समाप्त।

तस्य करण्या द्वादशेनेष्टकाः कारयेत् ॥ 1 ॥

इस वर्ग के भुजा के $\frac{1}{12}$ लम्बाई के (वर्ग) ईंटें (21 अंगुल, 29 तिल x 21 अंगुल, 29 तिल) करें। (1)

तासां षट्प्रधा उपधाय शेषमष्टधा विभजेत् ॥ 2॥

इनमें से छः (ईंटें) प्रधि में रखकर शेष (प्रधि के) आठ भाग करें। (2)

उपधाने चतुरश्रस्यावान्तरदेशान् प्रतिस्त्रक्तीस्सम्पादयेत् ॥ 3॥

ईंटें रखते समय (पहली तह में) वर्ग के सिरे उपदिशाओं की तरफ होंगी ऐसी रखें। (3)

मध्यानीतरस्मिन्प्रस्तारे ॥ 4॥

दूसरी तह में वर्ग की भुजाओं का मध्य उपदिशाओं की तरफ होंगें (ऐसी ईंटें रखें)। (4)
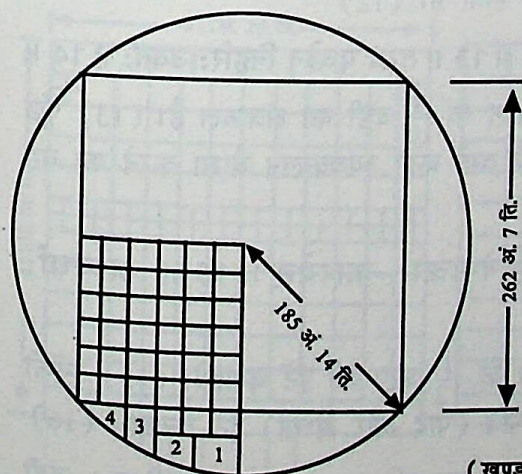
(खण्ड 13, सूत्र 1-5)

व्यत्यासं चिनुयाद्यावतः प्रस्तारांश्चिकीर्षेत् ॥ 5॥

जितनी तह रचने की हैं वे एक दूसरे पर उलट सीधी रखें। (5)

द्रोणचितं चिन्वीत अन्नकाम इति विज्ञायते ॥ 6॥

बहुत अन्न की जिसको इच्छा है उसे द्रोणचिति चिननी चहिये, ऐसा ज्ञात है। (6)

द्वयानि खलु द्रोणानि ॥ 7॥ चतुरश्राणि परिमण्डलानि च ॥ 8 ॥

द्रोण सचमुच दो प्रकार के होते हैं। (7) वर्गाकार और मण्डलाकार। (8)

तत्र यथाकामी शब्दार्थस्य विशयित्वात् ॥ 9॥

जैसी इच्छा होगी उसी आकार की अग्नि करें, यथाकामी इस शब्द की व्याख्या से। (9)

चतुरश्रं वा यस्य गुणशास्त्रम् ॥ 10 ॥ स चतुरश्रः ॥ 11 ॥

अथवा वह गुणशास्त्र से वर्गाकृति होता है। (10) (इसीलिये द्रोणचिति) वर्गाकृति है। (11)

पश्चात्सरुर्भवति अनुरूपत्वायेति विज्ञायते ॥ 12 ॥

बताया जाता है कि अनुरूपता के लिये (द्रोणचिति द्रोण जैसी दिखने के लिये) इसके पीछे दंडी होती है। (12)

सर्वस्या भूमेर्दशमं त्सरू ॥ 13 ॥ तस्य पुच्छेन निर्हारः उक्तः ॥ 14 ॥

(चिति के) कुल क्षेत्रफल के $\frac{1}{10}$ दंडी का क्षेत्रफल है। (13) पूँछ के लिये (कही हुई रीति से वर्गों का) व्यवकलन कैसा करने का यह कहा गया है। (14)

तस्य करण्या द्वादशेनेष्टकाः कारयेत् ॥ 15 ॥ अध्यर्धाः पादेष्टकाश्च ॥ 16 ॥

इसके (द्रोण के) भुजा के $\frac{1}{12}$ भाग की ईंटें बनाइये। (15) इनकी डेढ़ गुनी (अध्यर्धा) और पाव (पाद और अर्ध्या) ईंटें बनाइयें। (16)

[द्रोण के वर्ग के भुजा की लम्बाई = 311 अंगुल, 26 तिल । दंडी के वर्ग के भुजा की लम्बाई = 103 अंगुल, 31 तिल। द्वादशी ईंट = 25 अंगुल, 33 तिल x 25 अंगुल, 33 तिल। अध्यर्धा ईंट 38 अंगुल 32½ तिल x 25 अंगुल 33 तिल। पाद ईंट = 12 अंगुल 33½ तिल x 12 अंगुल 33½ तिल। अर्ध्या ईंट = 25 अंगुल 33 तिल x 12 अंगुल 33½ तिल।

अर्ध्या ईंटों का उल्लेख सूत्र में नहीं है फिर भी कपर्दिभाष्य से 'और' इस अर्थ में 'च' शब्द आया है इसीलिये सूत्रकार अर्ध्या ईंटें लेने को कहते हैं।)

उपधानेऽध्यर्धाः पुरस्तात्प्रतीचीरात्मन्युपदधाति ॥ 17 ॥

ईंटें रखते समय, आत्मा में अध्यर्धा ईंटें पूर्व और पश्चिम की तरफ रखें। (17)

त्सर्वग्रे श्रोण्योश्च प्राची ॥ 18 ॥

दंडी के अग्र में और दोनों श्रोणियों पर पूर्वाभिमुख (अध्यर्धा ईंटें रखें) (18)

सर्वमग्निं चतुरश्राभिः प्रच्छादयेत् ॥ 19 ॥

(शेष) सब अग्नि वर्ग (द्वादशी) ईंटों से ढँकें। (19)

पादेष्टकाभिस्सङ्ख्यां पूरयेत् ॥ 20 ॥

पाद ईंटों से (दो सौ की) संख्या पूरी करें। (20)
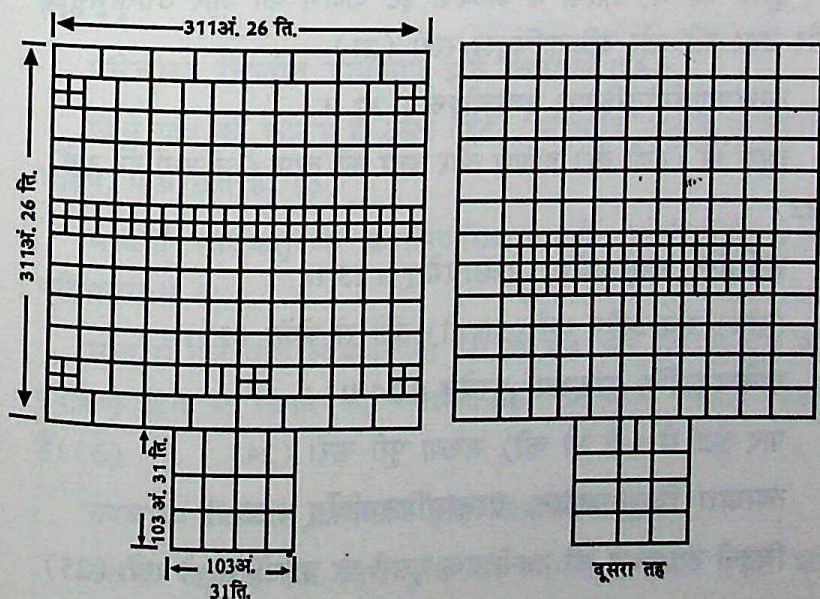
(खण्ड 13, सूत्र 21-24)

पहली तह

(खण्ड 13, सूत्र 17-22)

	द्वादशी 25 अं 33 ति x 25 अं 33 ति	अध्यर्धा 25 अं 33 ति x 38 अं 31½ ति	अर्ध्या 12 अं 33½ ति x x25 अं 33 ति	पाद 12 अं 33½ ति x x 12 अं 33½ ति x
पहली तह				
द्रोण	102	16	2	68
त्सरु	4	8	–	–
कुल ईंटें	106	24	2	68 = 200
दूसरी तह				
द्रोण	89	24	2	72
त्सरु	3	8	2	–
कुल ईंटें	92	32	4	72 = 200

अपरस्मिन्प्रस्तारेऽध्यर्धा दक्षिणतः उदीचीरात्मन्युपदधात्युत्तरश्च दक्षिणाः ॥ 21 ॥

दूसरी तह में, आत्मा में अध्यर्धा ईंटें दक्षिण की ओर उत्तराभिमुख और उत्तर की ओर दक्षिणाभिमुख रखें। (21)

त्सरूपार्श्वयोर्दक्षिणा उदीचीश्च ॥ 22 ॥

त्सरू के (दंडी के) दक्षिण और उत्तर की तरफ (अध्यर्धा ईंटें रखें) (22)

सर्वमग्निं चतुरश्राभिः प्रच्छादयेत् ॥ 23 ॥

(शेष) सब अग्नि वर्ग (द्वादशी) ईंटों से ढँकें। (23)

पादेष्टकाभिः संङ्ख्यां पूरयेत् ॥ 24 ॥

पाद ईंटों से (दो सौ की) संख्या पूरी करें। (24)

व्यत्यासं चिनुयाद्यावतः प्रस्तारांश्चिकीर्षेत् ॥ 25 ॥

जितनी तह रचने की उतनी एक दूसरी पर उलटी-सीधी रखें। (25)

इति त्रयोदशः खण्डः।

खण्ड तेरह समाप्त।

समूह्यं चिन्वीत पशुकाम इति विज्ञायते ॥ 1॥

ज्ञात है कि, जिसे बहुत पशुधन की कामना है उसने समूह्य पद्धति से अग्निचिति चिननी चहिये। (1)

समूहन्नेवेष्टका उपदधाति ॥ 2 ॥

ईंटें समूह में हैं ऐसी रखें। (2)

[यह अग्निचिति का कोई अलग प्रकार नहीं है परन्तु मिट्टी की व्यवस्था भिन्न प्रकार की है। ईंटें रखते समय गिली मिट्टी किनारें पर ज्यादा और मध्य में कम ऐसी रखते हैं। इसी से अग्निचिति मध्य भाग में गहरी दिखाई देती है।]

दिक्षु चात्वाला भवन्ति ॥ 3॥ तेभ्यः पुरीषमभ्युदूहतीति विज्ञायते ॥ 4 ॥

चारों दिशाओं की तरफ चात्वाल (नाम के गड्ढ़े) होते हैं। उनमें से गिली मिट्टी लेकर (चिति की) ऊँचाई की वृद्धि करें ऐसा जानते हैं। (4)

परिचाय्यं चिन्वीत ग्रामकाम इति विज्ञायते ॥ 5॥

जिसे गांव की कामना है उसने (ईंटें) 'परिचाय्य' पद्धति से चिननी चहिये, ऐसा ज्ञात हैं। (5)

मध्यमां स्वयमातृण्णां प्रदक्षिणमिष्टकागणैः परिचिनोति । स परिचाय्यः॥ 6॥

मध्य में होने वाले स्वयमातृण्णा ईंटों के सब ओर ईंटों के गुटों की प्रदक्षिण क्रम से चिनने की व्यवस्था को 'परिचाय्य' पद्धति कहते हैं। (6)

उपचाय्यं चिन्वात ग्रामकाम इति विज्ञायते ॥ 7 ॥

बताया जाता है कि जिसे गाँव की कामना है उसने (ईंटों की व्यवस्था) 'उपचाय्य' पद्धति से करनी चहिये। (7)

परिचाय्येनोक्तः ॥ 8 ॥

'परिचाय्य' पद्धति से यह पद्धति कही गई है। (8)

[उपचाय्य पद्धति में ईंटों के गुट अप्रादक्षिण्य क्रम से रखते हैं।]

श्मशानचितं चिन्वीत यः कामयेत पितृलोक ऋध्नुयामिति विज्ञायते ॥ 9 ॥

ज्ञात है कि, जिसे पितृलोक में (अपनी) वृद्धि होने की इच्छा है उसने शमशान चिति चिननी चहिये। (9)

द्वयानि खुल श्मशानानि ॥ 10 ॥ चतुरश्राणि परिमण्डलानि च ॥ 11 ॥

श्मशान चिति के सचमुच दो प्रकार हैं। (10) वर्गाकार और मण्डलाकार। (11)

तत्र यथाकामी शब्दार्थस्य विशयित्वात् ॥ 12 ॥

जैसी इच्छा होगी वैसी (अग्नि) करें, यथाकामी शब्द के व्याख्या से। (12)

चतुरश्रं वा यस्य गुणशास्त्रम् ॥ 13 ॥

अथवा गुणशास्त्र से वह (श्मशानचिति) वर्गाकार है। (13)

स चतुरस्त्रः ॥ 14 ॥ त्सरूवर्जं द्रोणचितोक्तः ॥ 15 ॥

वह वर्गाकार है। (14) दंडी निकाली हुई द्रोणचिति जैसी (ईंटों की) रचना कही हैं। (15)

श्मशान चिति
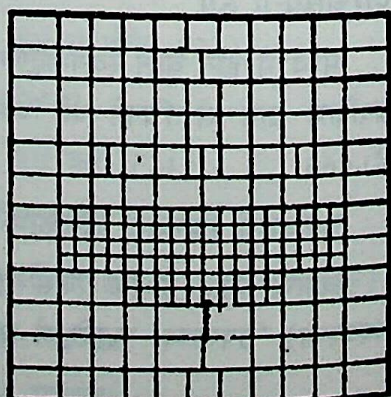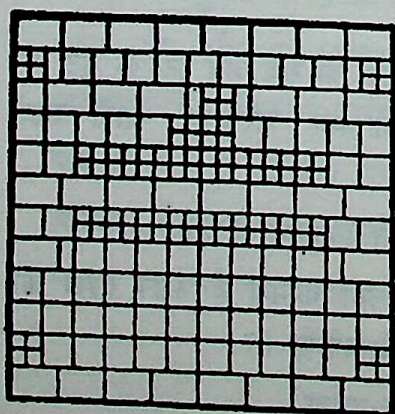
ईंटें	द्वादशी 27अं 13 ति. x27अं 13 ति.	अध्यर्धा 41अं 2½ ति. x27अं 13 ति.	अर्ध्या 27अं 13 ति. x13अं 23½ ति.	पाद 13अं 23½ ति. x13अं 23½ ति.
पहली और दूसरी तह	70	32	6	92
				कुल ईंटें = 200

छन्दश्चितं चिन्वीत पशुकाम इति विज्ञायते ॥ 16 ॥

बताया जाता है कि जिसे बहुत पशुधन की कामना है उसने छन्दों से (मन्त्रों से) अग्निचिति चिननी चहिये। (16)

(छन्दचिति में ईंटें नहीं बनाते, ईंटें रखते समय केवल मन्त्र रटते हैं और जहाँ चाहिये वहाँ ईंट रखी है ऐसा केवल हाथ से दिखाते हैं।)

सर्वैच्छन्दोभिश्चिनुयादित्येकम् ॥ 17 ॥ प्राकृतैरित्यपरम् ॥ 18 ॥

सब अग्निचितियाँ छन्दों से (मन्त्रों से) चिननी चहिये ऐसा किसी का मत है। प्राकृत ईंटों से चिने ऐसा अन्य कुछ लोगों का मत है। (18)

इति चतुर्दशः खण्डः।

खण्ड चौदह समाप्त।

इति चतुर्थः पटलः।

पटल चार समाप्त।

श्येनचितं चिन्वीत सुवर्गकाम इति विज्ञायते ॥ 1 ॥

जिसे स्वर्ग लोक प्राप्त करने की इच्छा है उसने श्येनचिति चिननी चहिये, ऐसा ज्ञात हैं। (1)

वक्रपुक्षो व्यस्तपुच्छो भवति ॥ 2 ॥

बांकदार पंख और फैली हुई पूँछ (उसे) होती है। (2)

पश्चात् प्राङ्उदूहति ॥ 3 ॥ पुरस्तात् प्रत्यङ्उदूहति ॥ 4 ॥

(पंख का) पीछे का भाग पूर्व की ओर ऊपर उठा हुआ होता है। (3) आगे का भाग पश्चिम की ओर ऊपर उठा हुआ होता है। (4)

एवमिव हि वयसां मध्ये पक्षनिर्णामो भवतीति विज्ञायते ॥ 5 ॥

बताया जाता है कि ऐसे ही पंछियों के पंख मध्य में बांकदार होते हैं। (5)

यावानग्निस्सारत्निप्रादेशस्सप्तविधस्संपद्यते ॥ 6 ॥

अरत्नि और प्रादेश के साथ सात वर्ग पुरुष क्षेत्रफल का अग्नि संपादित करते हैं। (6)

प्रादेशं चतुर्थं आत्मनश्चतुर्भागीयाश्चाष्टौ ॥ 7 ॥ तासां तिस्रः शिरः ॥ 8 ॥ इतरत्पक्षयोर्विभजेत् ॥ 9 ॥

(पूँछ में) एक प्रादेश, आत्मा में एक चौथाई पुरुष। (7) आठ ईंटों में से तीन शीर्ष में। (8) और उर्वरित ईंटें दोनों पंखों में विभागें। (9)

पञ्चारत्निः पुरुषः ॥ 10 ॥ चतुररत्निर्व्यायामः ॥ 11 ॥ चतुर्विंशति अङ्गुलयोः अरत्निः ॥ 12 ॥ तदर्धंप्रादेश इति क्लृप्तिः ॥ 13 ॥

पांच अरत्नियों का पुरुष होता है। (10) चार अरत्नियों का एक व्यायाम होता है। (11) 24 अंगुलों की एक अरत्नि। (12) और इसका आधा प्रादेश (12 अंगुलों का) होता है ऐसी युक्ति है। (13)

अर्धदशमा अरत्नयोऽङ्गुलयश्च चतुर्भागोनाः पक्षायामः ॥ 14 ॥

9½ अरत्नियों से चार अंगुल कम इतनी पंख की लम्बाई है। (14)

[9½ x 24 - 4 = 224 अंगुल पंख की लम्बाई है]

द्विपुरुषं रज्जुमुभयतः पाशां करोति ॥ 15 ॥ मध्ये लक्षणम् ॥ 16 ॥

दो पुरुष लम्बी रस्सी के दोनों सिरो पर गाँठ बाँधें। (15) मध्यबिंदु पर चिन्ह करें। (16)

पक्षस्यापरयोः कोट्योरन्तौ नियम्य लक्षणेन प्राचीनमायच्छेत् ॥ 17 ॥ एवं पुरस्तात् ॥ 18 ॥ स निर्णाम ॥ 19 ॥

(दक्षिण) पंख के पश्चिम के सिरो को रस्सी के सिरे बाँधकर चिन्ह से रस्सी पूर्व की तरफ खींचें। (17) ऐसे ही पूर्व की ओर करें। (18) यह पंख का बांक है। (19)

एतेनोत्तरः पक्षो व्याख्यातः ॥ 20 ॥

इसी से उत्तर पंख (का विन्यास और बांक) कहा गया है। (20)

आत्मा द्विपुरुषायामोऽध्यर्धपुरुषव्यासः ॥ 21 ॥

आत्मा दो पुरुष (240 अंगुल) लम्बा और डेढ़ पुरुष (180 अंगुल) चौड़ा होता है। (21)

पुच्छेऽर्धपुरुषव्यासं पुरुषं प्रतीचीनमायच्छेत् ॥ 22 ॥ तस्य दक्षिणतोऽन्यमुत्तरतश्च ॥ 23 ॥

पूँछ के लिये आधे पुरुष (60 अंगुल) चौड़ाई और एक पुरुष (120 अंगुल) लम्बाई का आयत पश्चिम की ओर खींचें। (22) इसके दक्षिण की तरफ एक और इसके उत्तर की तरफ दूसरा आयत रखें। (23)

तावक्ष्णया व्यवलिखेत्। यथाऽर्धपुरुषोऽप्यये स्यात् ॥ 24 ॥

उनके (दोनों बाजू रखें हुए आयत के) अक्ष्णयों से ऐसे विभाग करें की (पूँछ और आत्मा के) जोड़ पर आधा पुरुष (60 अंगुल) चौड़ाई होगी। (24)

[आत्मा के जोड़ के पास पूँछ की चौड़ाई 60 अंगुल इसकी पश्चिम भुजा 180 अंगुल और पूर्व-पश्चिम लम्बाई 120 अंगुल है।]

शिरस्यार्धपुरुषेण चतुरश्रं कृत्वा पूर्वस्याः करण्या अर्धात्तावति दक्षिणयोर्निपातयेत् ॥ 25 ॥

शीर्ष के लिये आधा पुरुष भुजा का वर्ग खींचें; पूर्व भुजा का मध्य बिन्दु दक्षिण (और उत्तर) भुजाओं के मध्य बिन्दुओं को जोड़ें। (25)

[सूत्र 16.21 से पंख 120 अंगुल चौडे हैं। आत्मा दो पुरुष लम्बा और डेढ़ पुरुष चौड़ा है। इसके अंस और श्रोणी साठ-साठ अंगुलों से कम होते हैं।

आत्मा का क्षेत्रफल $= 120 \times 180 + 2 \times \frac{1}{2} (60 + 180) \times 60$
$= 36000$ वर्ग अंगुल।

शीर्ष का क्षेत्रफल $= 60 \times 30 + \frac{1}{2} (60 \times 30) = 2700$ वर्ग अंगुल।

पूँछ का क्षेत्रफल $= \frac{1}{2} \times 120 \; (60+180) = 60 \times 240$
$= 14400$ वर्ग अंगुल।

दो पंखों का क्षेत्रफल $= 108000 - (36000 + 2700 + 14400)$
$= 54900$ वर्ग अंगुल

एक पंख का क्षेत्रफल $= 27450$ वर्ग अंगुल। पंख की लम्बाई $= \frac{27450}{120} = 228\frac{3}{4}$ अंगुल। (सूत्र 14 देखिये)

इति पञ्चदशः खण्डः।
खण्ड पंद्रह समाप्त।

अप्ययान्प्रति श्रोण्यंसानपच्छिन्द्यात् ॥ 1 ॥ एवमिव हि श्येनः ॥ 2 ॥

(पंख, पूँछ और शीर्ष के आत्मा के साथ होने वाले) जोड़ें के पास की श्रोणी और अंस निकाल दें। (1) यह है वह (प्रसिद्ध) श्येन (चिति)। (2)

करणं पुरुषस्य पञ्चमायामं षष्ठव्यासं कारयेत् यथा योगनतं तत् प्रथमम् ॥ 3 ॥

पुरुष के एक पंचमांश लम्बा और एक पष्ठांश चौड़ा (24 x 20 अंगुल) ऐसा सांचा करें। जैसा चहिये वैसा बांक सांचे को दें। यह पहली ईंट। (3)

ते द्वे प्राची संहिते ॥ 4 ॥ तद् द्वितीयम् ॥ 5 ॥

वे दो ईंटें इनकी पूर्व की भुजाऐं जोड़कर रखें। (4) यह दूसरी ईंट। (5) (24 x 40 अंगुलों की ईंट।)

प्रथमस्य षड्भागमष्टभागेन वर्धयेत् ॥ 6 ॥ यथायोगनतं तत् तृतीयम् ॥ 7 ॥

पहली ईंट की एक षष्ठांश (चौड़ाई) अब एक अष्टमांश लें। (6) जैसा चहिये वैसा बांक सांचे को दें। यह तीसरी ईंट। (7)

[24x15 अंगुलों की ईंट।]

चतुर्भागीयाऽध्यर्धा ॥ 8 ॥ तस्याश्चतुर्भागीयामात्रमक्ष्णया छिन्द्यात् ॥ 9 ॥ तच्चतुर्थम् ॥ 10 ॥

चतुर्थी ईंट की (30 x 30 अंगुल) अध्यर्धा (45 x 30 अंगुल) लेकर इसके केवल चतुर्थी ईंट के भाग की अक्ष्णया खींचकर (बाहर का भाग) निकाल दें, यह चौथी ईंट। (8,9,10)

[पूर्व की तिर्यङ्मानी 30 अंगुल, उत्तर की पार्श्वमानी 45 अंगुल, दक्षिण की पार्श्वमानी 15 अंगुल और पश्चिम की तिर्यक् रेखा 42 अंगुल 14 तिल है।]

चतुर्भागीयार्धं पञ्चमम् ॥ 11 ॥

चतुर्थी ईंट की (30 x 30 अंगुल) आधी ईंट (30 x 15 अंगुल) यह पांचवीं (ईंट)। (11)

तस्याक्ष्णया भेदष्षष्ठम् ॥ 12 ॥

इसके (पांचवीं ईंट के) अक्ष्णया से दो भाग करें, एक भाग इतनी छठी (ईंट)। (12)

पुरुषस्य पञ्चमभागं दशभागव्यासं प्रतीचीनमायच्छेत् ॥ 13 ॥ तस्य दक्षिणतोऽन्यमुत्तरतश्च ॥ 14 ॥ तावक्ष्णया दक्षिणावरयोः कोट्योरालिखेत् ॥ 15 ॥ तत्सप्तमम् ॥ 16 ॥

पुरुष के एक पंचमांश (24 अंगुल) लम्बा और एक दशांश (12 अंगुल) चौड़ा ऐसा आयत खींचें। (13) इस आयत के दक्षिण और उत्तर की तरफ (इस नाप के) दो आयत रखें। (36 अंगुल लम्बा और 24 अंगुल चौड़ा आयत प्राप्त होता हैं।) (14) (पार्श्व में रखें दो आयतों की) दक्षिण से उत्तर की तरफ अक्ष्णया खींचें। (15) यह सातवीं ईंट। (16)

[इस ईंट की पूर्व और पश्चिम भुजाऐं समान लम्बी याने 24 अंगुल हैं और दक्षिण और उत्तर की तिर्यक् रेखाएँ 26 अंगुल 28 तिल हैं।]

एवमन्यत् ॥ 17 ॥ उत्तरं तूत्तरस्याः कोट्या लिखेत् ॥ 18 ॥ तदष्टमम् ॥ 19 ॥

ऐसे ही (यह तीन आयत) दूसरी (ईंट के लिये) खींचें। (17) उत्तर के आयत की अक्ष्णया उत्तर की तरफ (और दक्षिण के आयत की अक्ष्णया दक्षिण की तरफ) खींचें। (18) यह आठवीं ईंट। (19)

[पूर्व की भुजा 12 अंगुल और पश्चिम की भुजा 36 अंगुल हैं। दक्षिण और उत्तर की तिर्यक् रेखाएँ 26 अंगुल, 28 तिल लम्बी हैं।]
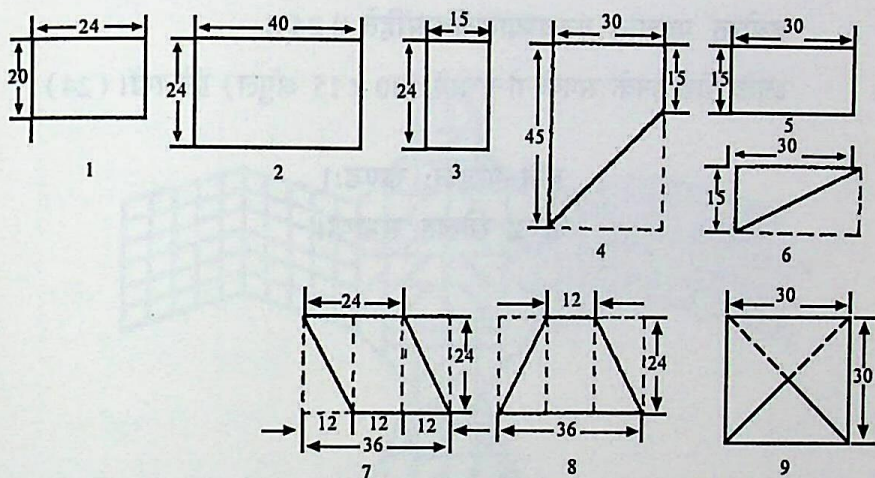
चतुर्भागीयाक्ष्णतोभयतो भेदो नवमम् ॥ 20 ॥

चतुर्थी ईंट के अक्ष्णया से दोनों तरफ भेद करें, यह नौवीं ईंट। (20)

[यह त्रिभुज ईंट - आधार 30 अंगुल लम्बा और दो समद्विबाहुओं की लम्बाई 21 अंगुल 7 तिल हैं।)

उपधाने षष्टिः षष्टिः पक्षयोः उदीचीर्निरुपदध्यात् ॥ 21 ॥

ईंटें रखते समय दोनों पखों में साठ-साठ प्रथमी ईंटें उत्तरभिमुख रखें। (21)

पुच्छपार्श्वयोरष्टावष्टौ षष्ट्यस्तिस्त्रोऽग्रे तत एकान्ततस्तिस्त्रः ततः एका ॥ 22 ॥

पूँछ के दोनों ओर आठ-आठ षष्ठी (त्रिभुज) ईंटें रखें। इनमें से तीन ईंटें पूँछ के अग्र भाग में (पश्चिम - दक्षिण कोण में) और इनके आगे (पूर्व की तरफ) एक (और पश्चिम - उत्तर कोण में) तीन ईंटें और इनके आगे एक ऐसी रखें। (22)

पुच्छाप्यये चतुर्थ्यौ विशये ॥ 23 ॥

पूँछ और आत्मा के जोड़ पर दो चतुर्थी ईंटें रखें। (23)

तयोस्तु पश्चात् पञ्चम्यावनीकसंहिते ॥ 24 ॥

इनके पीछे इनके संपर्क में पंचमी (30 x 15 अंगुल) ईंटें रखें। (24)

इति षोडशः खण्डः।

खण्ड सोलह समाप्त।

पहली तह (खण्ड 16, सूत्र 21-24)

180अं
60अं 60अं
30
30
60
120अं
228¾ अं
60 अं
120 अं
180अं
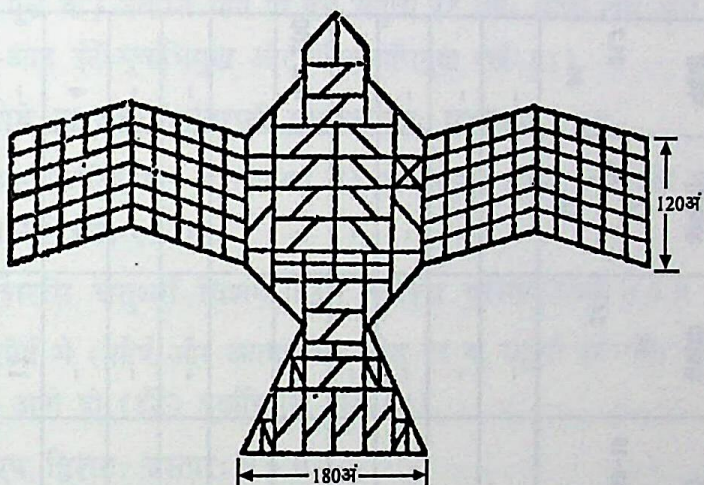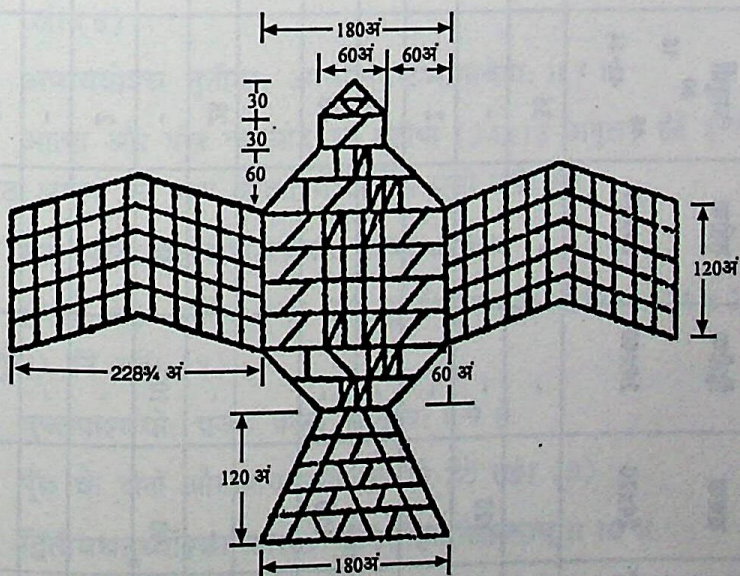
दूसरी तह (खण्ड 17, सूत्र 6-15)

श्येनचिति

ईंटें	प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी	पंचमी	षष्टी	सप्तमी	अष्टमी	नवमी
पहली तह	24X20	24X40	24X15	30 15 45 42-14	30X15	30 33-19 15	24 24	12 24 36	21.7 30
आत्मा	-	-	-	36	10	-	-	-	-
पंख	120	-	-	-	-	-	-	-	-
शीर्ष	-	-	-	2	-	-	-	-	-
पूँछ	-	-	-	10	2	16	-	-	4
कुल ईंटें	120	-	-	48	12	16	-	-	4 = 200
दूसरी तह									
आत्मा	-	-	-	28	9	22	-	-	-
पंख	90	10	10	-	-	-	-	-	-
शीर्ष	-	-	-	2	-	-	-	-	4
पूँछ	-	-	-	-	-	-	12	13	-
कुल ईंटें	90	10	10	30	9	22	12	13	4 = 200

शेषे दश चतुर्थ्यः श्रोण्यंसेषु चाष्टौ प्राचीः प्रतीचीश्च ॥ 1॥

(पूँछ के) उर्वरित भाग पर दस चतुर्थी ईंटें रखें। श्रोणी और अंस मे आठ-आठ ईंटें पूर्वाभिमुख और पश्चिमाभिमुख रखें। (1)

शेषे च षड्विंशतिरष्टौ षष्टश्चतस्त्रः पञ्चम्यः ॥ 2॥

और उर्वरित भाग में (आत्मा में) 26 चतुर्थी, आठ षष्ठी और चार पंचमी ईंटें रखें। (2)

शिरसि चतुर्थ्यौ विशये ॥ 3॥ तयोश्च पुरस्तात्प्राच्यौ ॥ 4 ॥

शीर्ष मे (शीर्ष और आत्मा के) जोड़ पर दो चतुर्थी ईंटें रखें। (3) इनके आगे दो (ईंटें) पूर्वाभिमुख रखें। (4)

एष द्विशतः प्रस्तारः ॥ 5 ॥

यह दो सौ ईंटों की तह। (5)

अपरस्मिन्प्रस्तारे पञ्च पञ्च निर्णामयोर्द्वितीयाः ॥ 6 ॥

दूसरी तह में पंख के बांक में पांच-पांच द्वितीया (24x40 अंगुल) ईंटें रखें। (6)

अप्यययोश्च तृतीयाः आत्मानमष्टभागावेताः ॥ 7 ॥

आत्मा और पंख के जोड़ पर तृतीया (24x15 अंगुल) ईंटें इनके आठ अंगुलों का भाग आत्मा में आयेगा ऐसी रखें। (7)

शेषे पञ्चचत्वारिंशत्प्रथमाः प्राचीः ॥ 8 ॥

(पंख के) उर्वरित भाग पर पूर्वाभिमुख 45 प्रथमा (24 x 20 अंगुल) ईंटें रखें। (8)

पुच्छपार्श्वयोः पञ्च पञ्च सप्तम्यः ॥ 9 ॥

पूँछ के दोनों और पांच-पांच सप्तमी ईंटें रखें। (9)

द्वितीयचतुर्थ्योश्चान्यतरतः प्रतिसंहितामेकैकाम् ॥ 10 ॥

दुसरे और चौथे (कतार में) और उनके दोनों ओर एक-एक सप्तमी ईंट रखें। (10)

शेषे त्रयोदशाष्टम्यः ॥ 11 ॥

(पूँछ के) शेष भाग पर तेरह अष्टमी ईंटें रखें। (11)

श्रोण्यंसेषु चाष्टौ चतुर्थ्यौ दक्षिणा उदीचीश्च ॥ 12 ॥

(आत्मा के) श्रोणी और अंस पर आठ-आठ चतुर्थी ईंटें दक्षिणाभिमुख और उत्तराभिमुख रखें। (12)

शेषे च विंशतिस्त्रिंशत् षष्ठ्यः एकां पञ्चमीम् ॥ 13 ॥

उर्वरित (आत्मा में) बीस चतुर्थी ईंटें, तीस षष्ठी और एक पञ्चमी ईंट रखें। (13)

शिरसि चतुर्थ्यौ तयोश्च पुरस्तात् चतस्रो नवम्यः ॥ 14 ॥

शीर्ष में दो चतुर्थी ईंटें और इनके आगे चार नवमी ईंटें रखें। (14)

एष द्विशतः प्रस्तारः ॥ 15 ॥

यह दो सौ (ईंटों) की दूसरी तह। (15)

व्यत्यासं चिनुयाद्यावतः प्रस्तारांश्चिकीर्षेत् ॥ 16 ॥

जितनी तह रचने की उतनी एक दूसरी पर उलट सीधी रखें। (16)

इति सप्तदशः खण्डः।

खण्ड सतरह समाप्त।

इति पञ्चमः पटलः।

पटल पांच समाप्त।

श्येनचितं चिन्वीत सुवर्गकाम इति विज्ञायते ॥ 1॥

ज्ञात है कि, जिसे स्वर्गलोक प्राप्त करने की कामना है उसको श्येनचिति चिननी चहिये। (1)

वक्रपक्षो व्यस्तपुच्छो भवति ॥ 2 ॥

बांकदार पंख और फैली हुई पूँछ (उसे) होती है। (2)

पश्चात् प्राङुदूहति ॥ 3 ॥ पुरस्तात् प्रत्यङ्उदूहति ॥ 4 ॥

पीछे का भाग पूर्व की ओर ऊपर उठा हुआ होता है। (3) आगे का भाग पश्चिम की ओर ऊपर उठा हुआ होता है। (4)

एवमिवहि वयसां मध्ये पक्षनिर्णामो भवतीति विज्ञायते ॥ 5 ॥

बताया जाता है कि, ऐसे ही पंछियों के पंख मध्य में बांकदार होते हैं। (5)

पुरुषस्य षोडशभिर्विंशं शतं सारत्निप्रादेशस्सप्तविधस्संपाद्यते ॥ 6 ॥

(वर्ग) पुरुष के $\frac{1}{16}$ (क्षेत्रफल के) 120 (वर्गाकार ईंटों से) अरत्नि और प्रादेश के साथ सप्तविध अग्नि संपादित करते हैं। (6)

[एक वर्ग पुरुष = 120 x 120 वर्ग अंगुल। $\frac{1}{16}$ x 120 x 120 = 900 वर्ग अंगुल।

ईंटें 30 x 30 अंगुलों की। 7½ वर्ग पुरुष = 7½ x 120 x 120 = 108000 वर्ग अंगुल।

900 x 120 (ईंटें) = 108000 वर्ग अंगुल = 7½ वर्ग पुरुष।]

तासां चत्वारिंशदात्मनि तिस्त्रश्शिरसि पञ्चदश पुच्छे एकत्रिंशद् दक्षिणे पक्षे ॥ 7 ॥ तथोत्तरे ॥ 8 ॥

इनमें से 40 ईंटें आत्मा में, तीन शीर्ष में, 15 पूँछ में और 31 (ईंटें) दक्षिण के पंख में रखें। (7) उतनी ही (31 ईंटें) उत्तर के (पंख में) रखें। (8)

[40 + 3 + 15 + 31 + 31= 120 ईंटें]

अध्यर्धपुरुषः तिर्यग् द्वावायामत इति दीर्घं चतुरश्रं विहृत्य श्रोण्यंसेभ्यो द्वे द्वे षोडश्यौ निरस्येत् ॥ 9 ॥

डेढ़ पुरुष (180 अंगुल) चौड़ा और दो पुरुष लम्बा (240 अंगुल) ऐसा आयत (48) ईंटों से बनाकर श्रोणी और अंस से दो-दो षोडशी ईंटें निकाल दें। (9)

चत्वारिंशत् परिशिष्यन्ते ॥ 10 ॥ स आत्मा ॥ 11 ॥

40 ईंटें रहती हैं। (10) यह आत्मा (है)। (11)

[180 अंगुल (30 x 6) चौड़ा और 240 अंगुल (30 x 8) लम्बा ऐसे आयत में 30 x 30 अंगुलों की 48 ईंटें समायोजित होती हैं। इनमें हर एक श्रोणी और अंस से (2 x 4 = 8) ईंटें निकाल देने पर 40 ईंटें शेष रहती हैं। ये ईंटें श्येनचिति के विन्यास के लिये हैं।]

शिरस्यार्धषुरुषेण चतुरश्रं कृत्वा पूर्वस्याः करण्या अर्धात्तावति दक्षिणोत्तरयोर्निपातयेत् ॥ 12 ॥ तिस्रः परिशिष्यन्ते ॥ 13 ॥ तच्छिरः॥ 14 ॥

शीर्ष के लिये आधा पुरुष का (60 x 60 अंगुलों का, चार ईंटों से) वर्ग करें और पूर्व की ईंटें आधी करके (क्रमशः) दक्षिण और उत्तर के भाग निकाल दें। (12) तीन ईंटें शेष रहती हैं। (13) यह शीर्ष (है)। (14)

पुरुषस्तिर्यग् द्वावायामतः षोडशभागश्च दक्षिणः पक्षः ॥ 15 ॥

एक पुरुष (120 अंगुल) चौड़ा और दो पुरुष और पुरुष का सोलहवां भाग (247½ अंगुल) लम्बा दक्षिण पंख खींचें। (15)

तथोत्तरः ॥ 16 ॥

वैसा ही उत्तर (पंख खींचें)। (16)

पक्षाग्रे पुरुषचतुर्थेन चत्वारि चतुरश्राणि कृत्वा तान्यक्ष्णया व्यवलिख्यार्धानि निरस्येत् ॥ 17 ॥

पंख के अग्र पर पुरुष के चौथे भाग से (30 अंगुल) चार वर्ग करें। इन हर एक (वर्ग के) अक्ष्णया से दो भाग करें। आधे भाग निकाल दें। (17)

एकत्रिंशत् परिशिष्यन्ते ॥ 18 ॥

31 ईंटें (पंख में) रहती हैं। (18)

[आयत 120 अंगुल चौड़ा और 247½ लम्बा है। 30 x 4 अंगुल चौड़ाई और 30 x 8 + 7½ अंगुल लम्बाई। 32 षोडशी ईंटें +120 x 7½ वर्ग अंगुल। याने 32 षोडशी ईंटें + 900 वर्ग अंगुल 33 षोडशी ईंटें। इनमें से दो ($\frac{4}{2}$) ईंटें घटाने से 31 ईंटें शेष रहती हैं।]

पक्षाग्रमुत्सृज्य मध्ये पक्षस्य प्राचीं लेखामालिखेत् ॥ 19 ॥

पंख के अग्र का (30 अंगुल चौड़ा) भाग छोड़ कर (शेष लम्बाई के) मध्य में पूर्व-पश्चिम जाने वाली रेखा (प्राची) खींचें। (19)

पक्षाप्यये पुरुषं नियम्य (लेखायां) पुरुषान्ते नितोदं कुर्यात ॥ 20 ॥

पंख और आत्मा के जोड़ पर (श्रोणी पर) एक पुरुष लम्बाई का बांस का एक सिर रखकर (पश्चिम-दक्षिण रेखा पर) दूसरे सिरे से चिन्ह (नितोद करें। (20)

नितोदात्माचीनं पुरुषान्ते नितोदम् ॥ 21 ॥ नितोदयोर्ना (गा) नान्तावालिखेत् ॥ 22 ॥

नितोद पर (पूर्व-पश्चिम रेखा पर जहाँ एक पुरुष लम्बे बांस से निशाना किया है इस निशाने पर) एक पुरुष लम्बाई के बांस का सिर रखकर दूसरे सिरे से प्राची पर पूर्व की ओर चिन्ह करें। (21) यह दोनों चिन्ह पंख के अग्रों से (आग्नेय्य, नैर्ऋत्य, वायव्य और ईशान्य कोणों को) जोड़े। (22)

[पक्षाग्र = 30 अंगुलों का है। पंख की पक्षाग्र के सिवाय लम्बाई 217½ अंगुल। प्राची 108¾ अंगुल दूरी पर है। पंख और आत्मा के जोड़ पर पश्चिम के कोण पर एक पुरुष लम्बा बांस का एक सिर रखें और दूसरे सिरे से पश्चिम-दक्षिण रेखा को काटने से छेद पंख के पश्चिम की रेखा के आगे 50 अंगुल 25 तिल दूरी पर आता है- करविन्दीय व्याख्या से)]

श्येनचिति का विन्यास
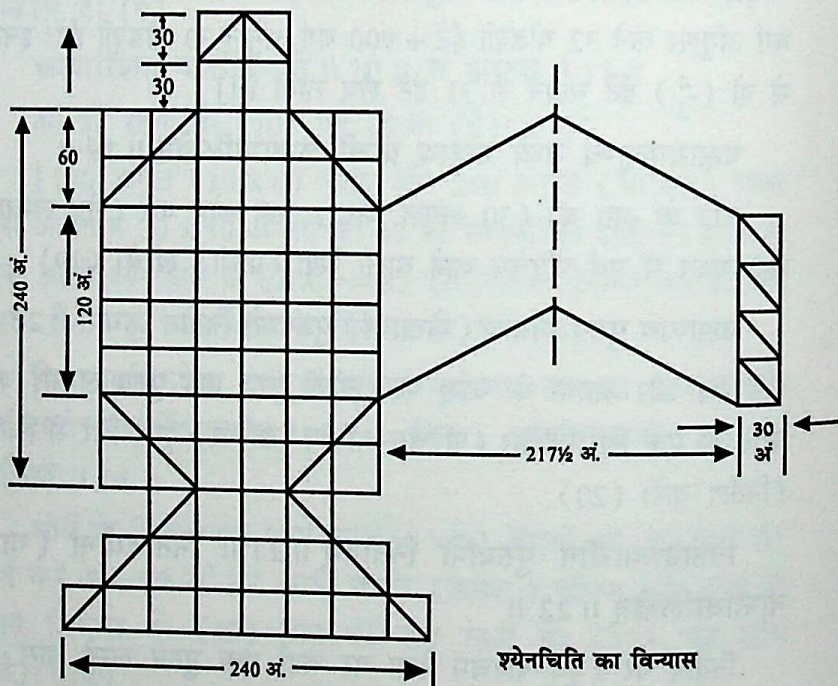
क्षेत्रफल - शीर्ष = 30x60 + ½ x 60 x 30 = 1800 + 900 = 2700 वर्ग अंगुल

आत्मा = 120x180 + ½ x (60 x 180) x 60 x 2

= 21600 + 14400 वर्ग अंगुल

पंख = 2(217.5x120 + ½ x 30 x 30 x 4) = 52200 + 3600 वर्ग अंगुल

पूँछ = ½ (60+240) x 90 = 13500 वर्ग पुरुष

कुल = 108000 वर्ग अंगुल = 7½ वर्ग पुरुष.

तत्पक्षनमनम् ॥ 23 ॥

यह पंख का बांक (का विन्यास कहा) (23)

एतेनोत्तरपक्षो व्याख्यातः ॥ 24 ॥

इसीसे उत्तर के पंख का (विन्यास) कहा गया है। (24)

इति अष्टदशः खण्डः।

खण्ड अठारह समाप्त।

द्विपुरुषं पश्चादर्धपुरुषं पुरस्ताच्चतुर्भागोनः पुरुष आयामो अष्टादशकरण्यौ पार्श्वयोस्ताः पञ्चदश परिगृण्हन्ति ॥ 1 ॥

पीछे (पश्चिम की ओर) दो पुरुष (240 अंगुल) आगे (पूर्व की ओर) आधा पुरुष (60 अंगुल) और ¾ पुरुष (90 अंगुल) लम्बाई में (इस समलंब चतुर्भुज में) 18 ईंटें समायोजित होती हैं। इनमें से दोनों पार्श्वों की (आधी ईंटें निकालकर) 15 ईंटें रहती हैं। (1)

तत्पुच्छम् ॥ 2 ॥

यह पूँछ (है) (2)

षोडशीं चतुर्भिः परिगृह्णायात् ॥ 3 ॥

चार भुजाओं की षोडशी ईंट करें। (3)

[जैसी नीचे दी है।]

अष्टमेन त्रिभिरष्टमैश्चतुर्थेन चतुर्थसविशेषेण इति ॥ 4 ॥

पुरुष के एक अष्टमांश भाग से (15 अंगुल), $\frac{3}{8}$ भाग से (45 अंगुल), चौथे भाग से (30 अंगुल) और चौथाई भाग के सविशेष से (42 अंगुल 14 तिल) (4)

[½ (15 + 45) x 30 = 900 वर्ग अंगुल = षोडशी ईंट।]

अर्धेष्टकां त्रिभिर्द्वाभ्यां चतुर्थाभ्यां चतुर्थसविशेषण इति ॥ 5 ॥

अर्ध्या त्रिभुजाकार ईंट, जिसकी दोनों बाजुओं की लम्बाई $\frac{1}{4}$ पुरुष (30 अंगुल) और आधार की लम्बाई $\frac{1}{4}$ पुरुष के सविशेष इतनी (42 अंगुल, 14 तिल) होती है। (5)

[½ x 30 x 30 = 450 वर्ग अंगुल = अर्ध्या ईंट।]

पादेष्टकां त्रिभिश्चतुर्थैनैकं चतुर्थसविशेषार्धाभ्यां चेति ॥ 6 ॥

और त्रिभुजाकार पाद ईंट, एक भुजा पुरुष के $\frac{1}{4}$ भाग की (30 अंगुल) और दो भुजाऐं पुरुष के $\frac{1}{4}$ भाग के विशेष के आधे भाग की (21 अंगुल 7 तिल)। (6)

पक्षेष्टकां चतुर्भिर्द्वाभ्यां चतुर्थाभ्यां सप्तमाभ्यां चेति ॥ 7 ॥

पंख की ईंटें चतुर्भुज होकर, दो भुजाएं पुरुष के चौथाई भाग के (30 अंगुल) और दो भुजाऐं पुरुष के $\frac{1}{7}$ भाग के (17 अंगुल 5 तिल) होते हैं। (7)

पक्षमध्यीयां चतुर्भिर्द्वाभ्यां चतुर्थाभ्यां द्विसप्तमाभ्यां चेति ॥ 8॥

पंख के मध्य में (बांक में) रखने की ईंटें चतुर्भुज होती हैं। दो भुजाएं पुरुष के चौथाई भाग के और दो भुजाएं पुरुष के $\frac{2}{7}$ भाग के (34 अंगुल 10 तिल) होते है। (8)

पक्षाग्रीयां त्रिभिश्चतुर्थेनैकं चतुर्थसप्तमाभ्यामेकं चतुर्थसविशेष-सप्तमाभ्यां चेति ॥ 9 ॥

पंख के अग्र की ईंटें त्रिभुज हैं। एक बाजू पुरुष के चौथाई भाग की (30 अंगुल), दूसरी बाजू पुरुष के $\frac{4}{7}$ भाग की (68 अंगुल 20 तिल) और तीसरी बाजू पुरुष के $\frac{4}{7}$ भाग के सविशेष इतनी है। (9)

पक्षकरण्यास्सप्तमं तिर्यङ्मानी ॥ 10 ॥ पुरुषचतुर्थं पार्श्वमानी ॥ 11 ॥ तस्य अक्ष्णया रज्ज्वा करणं प्रजम्भयेत् ॥ 12 ॥ पक्षनमन्या-स्सप्तमेन फलकानि नमयेत् ॥ 13 ॥

पंख में रखने की ईंटों की तिर्यङ्मानी $\frac{1}{7}$ पुरुष (17 अंगुल 5 तिल) है। (10) पार्श्वमानी पुरुष के चौथाई भाग की (30 अंगुल) है। (11) इनके सांचे को अक्ष्णया रज्जु पर खींचकर पंख के बांक के $\frac{1}{7}$ भाग से (सांचे की) फलिकाएं तिर्यक् करें। (12,13)

उपधाने चतस्त्रः पादेष्टकाः पुरस्ताच्छिरसि ॥ 14 ॥

ईंटें रखते समय चार पाद ईंटें शीर्ष में आगे (पूर्व की तरफ) रखें। (14)

अपरेण शिरसोऽप्ययं पञ्च ॥ 15 ॥

इनके पीछे शीर्ष और आत्मा के जोड़ पर पांच पाद ईंटें रखें। (15)

पूर्वेण पक्षाप्ययावेकादश ॥ 16 ॥

पंख और आत्मा के दोनों जोड़ों पर पूर्व की तरफ 11 पाद ईंटें रखें। (16)

अपरेणैकादश ॥ 17 ॥

(पंख और आत्मा के दोनों जोड़ों पर) पश्चिम की तरफ 11 पाद ईंटें रखें। (17)

पूर्वेण पुच्छाप्ययं पञ्चापरेण पञ्च पञ्चदश पुच्छाग्रे ॥ 18 ॥

पूँछ और आत्मा के जोड़ के पूर्व की तरफ पांच, पश्चिम की तरफ पांच और पूँछ के अग्र में 15 पाद ईंटें रखें। (18)

इति एकोनविंशः खण्डः।
खण्ड उन्नीस समाप्त।

चतस्त्रश्चतस्त्रः पक्षाग्रीयाः पक्षाग्रयोः पक्षाप्यययोश्च विशयाः ॥ 1 ॥

पंखों के अग्र भाग में चार-चार पक्षाग्रीया ईंटें रखें। पंख और आत्मा के जोड़ के अंदर (आत्मा में ईंटों का कुछ भाग आयेगा ऐसी) चार पक्षाग्रीया ईंटें रखें। (1)

ता आत्मनि चतुसृभिश्चतुसृभिष्षोडशीभिर्यथायोगं पर्युपदध्यात् ॥ 2 ॥

वे (पक्षाग्रीया ईंटें) आत्मा में चार-चार षोडशी ईंटों के साथ जैसी व्यवस्था होगी वैसी रखें। (2)

चतुस्त्रश्चतस्त्रः पक्षमध्यीयाः ॥ 3 ॥ पक्षमध्ययोः पक्षेष्टकाभिः प्राचीभिः पक्षौ प्रच्छादयेत् ॥ 4 ॥

(पंखों के मध्य में जहाँ बांक है वहाँ) चार-चार पक्षमध्यीया ईंटें रखें। (3) पक्षमध्यीया ईंटों के दोनों पार्श्वों में पक्षेष्टका पूर्वाभिमुख रखकर दोनों पंख ढँकें। (4)

अवशिष्टं षोडशीभिः प्रच्छादयेत् ॥ 5 ॥

उर्वरित भाग षोडशी ईंटों से ढँकें। (5)

अन्त्या बाह्यविशेषा अन्यत्र शिरसः ॥ 6 ॥

शीर्ष छोड़कर इतर सब तिर्यक् भुजाओं पर बाहर ईंट की विशेष बाजू आयेगी ऐसी (षोडशी ईंटें) रखें। (6)

अपरस्मिन्प्रस्तारे पुरस्ताच्छिरसि द्वे षोडश्यौ बाह्यविशेषे उपदध्यात् ॥ 7 ॥

दूसरी तह में, शीर्ष में अगली तरफ दो षोडशी ईंटें विशेष की बाजू बाहर आयेगी ऐसी रखें। (7)

तेऽपरेण द्वे विशये अभ्यन्तरविशेषे ॥ 8 ॥

इनके पीछे और (शीर्ष और आत्मा के) जोड़ के पास विशेष की बाजू अन्दर आयेगी ऐसी दो षोडशी ईंटें रखें। (8)
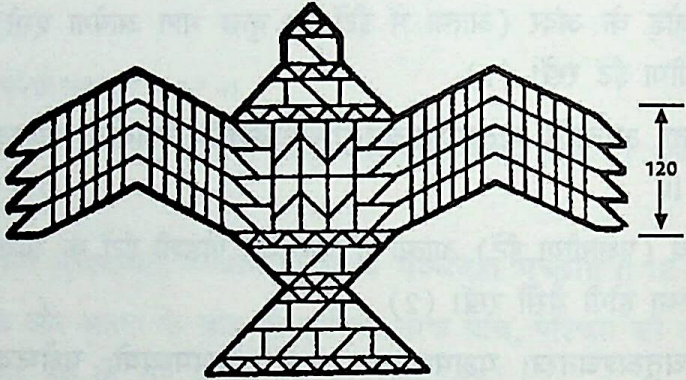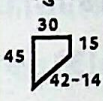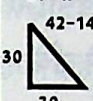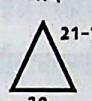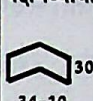
पहली तह

खण्ड 19, सूत्र 14-18, खण्ड 20, सूत्र 1-6)

दूसरी तह

(खण्ड 20, सूत्र 7-18)

	चतुर्थी (30, 15, 45, 42-14)	अर्ध्या (42-14, 30, 30)	पाद (21-7, 30)	पक्षीया	पक्षमध्यीया (30, 34-10)	पक्षाग्रीया
आत्मा	28	-	32	-	-	8
पंख	-	-	-	80	8	8
शीर्ष	2	-	4	-	-	-
पुँछ	10	-	20	-	-	-
कुल ईंटें	40	-	56	80	8	16 = 200
दूसरी तह						
आत्मा	24	32	-	-	-	-
पंख	-	8	-	112	-	-
शीर्ष	2	2	-	-	-	-
पुँछ	10	10	-	-	-	-
कुल ईंटें	36	52	-	112	-	= 200

द्वाभ्यामर्धेष्टकाभ्यां यथायोगं पर्युपदध्यात् ॥ 9 ॥

दो अर्ध्या ईंटें जैसी व्यवस्था होगी वैसी रखें। (9)

बाह्यविशेषाभ्यां परिगृण्हीयात् ॥ 10 ॥

उनके दोनों ओर विशेष की बाजू बाहर आयेगी ऐसी दो (अर्ध्या ईंटें) रखें। (10)

आत्मनः करणीनां सन्धिषु षोडश्यो बाह्यविशेषा उपदध्यात् ॥ 11 ॥

आत्मा के जोड़ों पर षोडशी ईंटें विशेष की बाजू बाहर आयेगी ऐसी रखें। (11)

चतस्रश्चतस्रोऽर्धेष्टका पक्षाग्रयोः ॥ 12 ॥

चार-चार अर्ध्या ईंटें पंखों के अग्र पर रखें। (12)

पक्षेष्टकाभिरुदीचीभिः पक्षौ प्रच्छादयेत् ।। 13 ।।

दोनों पंख उत्तराभिमुख पक्षेष्टकाओं से ढँकें। (13)

तिस्रस्तिस्रोऽर्धेष्टकाः पुच्छपार्श्वयोः ।। 14 ।।

तीन-तीन अर्ध्या ईंटें पूँछ के दोनों ओर रखें। (14)

अवशिष्टं षोडशिभिः प्रच्छादयेत् ।। 15 ।।

उर्वरित (पूँछ) षोडशी ईंटों से ढँकें। (15)

अन्त्या बाह्यविशेषा अन्यत्र पुच्छात् ।। 16 ।।

पूँछ छोड़कर अन्य सब जगह विशेष की भुजा बाहर किनारे की तरफ आयेगी ऐसी (ईंटें) रखे। (16)

समचतुरश्रं त्र्य (श्रि) श्रं वा सम्पद्येतार्धेष्टकाभिः पादेष्टकाभिर्वा प्रच्छादयेत् ।। 17 ।।

वर्गाकार या त्रिभुज अर्ध्या या पाद ईंटों से (शेष) अग्नि चिति ढँकें। (17)

अणूकाः पञ्चदशभागीयानां स्थाने ।। 18 ।।

पंचदशमी ईंटों के जगह अणूका ईंटें रखें। (18)

व्यत्यासं चिनुयाद्यावतः प्रस्तारांश्चिकीर्षेत् ।। 19 ।।

जितनी तह चिननी है उतनी एक दूसरी पर उलट सीधी रखें। (19)

इति विंशः खण्डः।

खण्ड बीस समाप्त।

कङ्कचिदलजचिदिति श्येनचिता व्याख्यातौ ॥ 1॥

श्येनचिति से कंकचिति और अलजचिति कह गई। (1)

एवमिव हि श्येनस्य वर्षीयांसौ पक्षौ पुच्छाद् वक्रौ सन्नतं पुच्छं दीर्घ आत्माऽमण्डलं शिरश्च ॥ 2 ॥ तस्मात् श्रुतिसामर्थ्यात् ॥ 3 ॥

ऐसे ही श्येन के पंख बड़े अंस के और पूँछ से अधिक बांकदार होते हैं। पूँछ साँकडी (और) आत्मा आयताकार हैं। शीर्ष वृत्ताकार नहीं है। (2) कारण ऐसी श्रुती कहती हैं। (3)

अशिरस्को वाऽनाम्नात् ॥ 4 ॥

अथवा परम्परा से कहा नहीं हो तो बिना शीर्ष की होती है। (4)

ज्ञायते च ॥ 5 ॥ कङ्कचितं शीर्षण्वन्तं चिन्वीत यः कामयेत सशीर्षोऽमुष्मिन् लोके सम्भवेयमिति विद्यमाने कथं ब्रूयात् ॥ 6 ॥

और ज्ञात हैं कि (5) जिसे इस लोक में शीर्ष के साथ पुनर्जन्म लेने की इच्छा है उसने कंकचिति शीर्ष के साथ चिननी चहिये, ऐसे जानते हुए भी यह (सूत्र 4) कैसे कहा है (6)

प्राकृतौ वक्रौ पक्षौ सन्नतं पुच्छं विकारश्रवणात् ॥ 7 ॥ यथा प्रकृत्यात्माऽविकारात् ॥ 8 ॥

सुनते हैं कि वक्राकार पंख और साँकडी पूँछ निसर्ग से ही विकारी हैं। (7) जैसा आत्मा निसर्ग से ही अविकारी है। (8)

[कंक और अलज के पंख और पूँछ श्येन के पंख और पूँछ से भिन्न हैं परन्तु इन सब के आत्मा का आकार और नापें एक ही हैं।)]

अथो एतच्छेनचितं चिन्वीतेति ॥ 9 ॥

अब ऐसी श्येनचिति चिनें। (9)

यावदाम्ना (तं) न सारुप्यं तद् व्याख्यातम् ॥ 10 ॥

(श्येन, कंक और अलजचितियों में) परम्परा से जो साधर्म्य नहीं है वह कहा। (10)

त्रिस्तावोऽग्निर्भवतीत्यश्वमेधे विज्ञायते ॥ 11 ॥

जानते हैं कि, अश्वमेध में अग्नि तीन गुना (क्षेत्रफल का, 22½ वर्ग पुरुष का) होता है। (11)

तत्र सर्वाऽभ्यासोऽविशेषात् ॥ 12 ॥

वहाँ सब के बारे में वृद्धि कैसी करने की यह निश्चित कहा नहीं है (इसीलिये)। (12)

दीर्घचतुरश्राणां समासेन पक्षपुच्छानां समासः उक्तः ॥ 13 ॥

आयतों के (क्षेत्रफलों का) योग करने के पद्धति से पंख और पूँछ के (आयताकार) क्षेत्रफलों का योग (कैसे करने का) यह कहा है। (13)

एकविंशोऽग्निर्भवतीत्यश्वमेधे विज्ञायते ॥ 14 ॥

ज्ञात है कि अश्वमेध का अग्नि इक्कीस विध है। (14)

तत्र पुरुषाभ्यासो नारत्निप्रादेशानां संख्यासंयोगात् संख्या संयोगात् ॥ 15 ॥

वहाँ पुरुष नाप की वृद्धि होती है, अरत्नि और प्रादेश नापों की नहीं कारण (श्रुती ने) संख्या (21 वर्ग पुरुष) निश्चित की है, संख्या निश्चित की है। (15)

इति एकविंशः खण्डः।

खण्ड इक्कीस समाप्त।

इति षष्ठः पटलः।

पटल छ समाप्त।

समाप्तः शुल्बप्रश्नः।

शुल्बप्रश्न समाप्त हुआ।

आपस्तम्ब शुल्बसूत्र में उल्लेखित नाप

1 प्रक्रम = 2 या 3 पाद	= 30 या 45 अंगुल (6.2,3)	= 57.0 या 85.5 सें.मी.
1 अक्ष	= 104 अंगुल (6.13)	= 197.6 सें. मी.
1 ईषा	= 188 अंगुल (6.13)	= 357.2 सें. मी.
1 युग	= 86 अंगुल (6.13)	= 163.4 सें. मी.
1 शम्या	= 36 अंगुल (6.22)	= 68.4 सें. मी.
1 पद	= 15 अंगुल (6.23)	= 28.5 सें. मी.
1 अणूक	= 30 अंगुल (11.4)	= 57.0 सें. मी.
1 अरत्नि	= 24 अंगुल (11.5,15.12)	= 45.6 सें. मी.
1 ऊर्वस्थि	= 20 अंगुल (11.6)	= 38.0 सें. मी.
1 पुरुष = 5 अरत्नि	= 120 अंगुल (15.10)	= 228.0 सें. मी.
1 व्यायाम = 4 अरत्नि	= 96 अंगुल (15.11)	= 182.4 सें. मी.
1 प्रादेश = ½ अरत्नि	= 12 अंगुल (15.13)	= 22.8 सेंमी.
1 जानु	= 32 अंगुल (10.18)	= 60.8 सें. मी.
1 नाभि	= 64 अंगुल (10.19)	= 121.6 सें. मी.
1 आस्य	= 96 अंगुल (10.20)	= 182.4 सें. मी.

सूत्र 6.23 के कपर्दिभाष्य में नीचे दिये हुई अधिक नापें दी हैं।

1 अंगुल	= 14 अणू	= 1.9 सें. मी.
1 अंगुल	= 34 तिल	= 1.9 सें. मी.
1 वितस्ति	= 13 अंगुल	= 24.7 सें. मी.

आपस्तम्ब शुल्बसूत्रों में उल्लेखित भौमितिक शब्द

अतिशय - वर्ग के बाहर का भाग (चतुरश्रमतीत्य शेते सोऽतिशयः।)(3.3)

अन्तराल - दो अग्नियों के बीच का अंतर (4.1)

अनित्या - शुद्ध, सूक्ष्म (3.8)

अनीक - नजदीक (14.24)

अंहियसी - छोटी (4.10)

अंस - वर्ग या किसी भी सरल भौमितिक रेखाकृति के ईशान्य और आग्नेय सिरे (1.16)

अपच्छिन्द्यात् - निकाल देना (2.16)

अप्यय - जोड़ (16.1)

अभ्यस्य - वृद्धि करके (1.3)

अर्ध - आधा (3.19)

अक्ष्णयारज्जू - कर्ण (1.7)

आगन्तु - अधिक लेकर, आगन्तुक (1.7)

आगमयेत् - योग करें (2.1)

आयाम - लम्बाई (1.2)

उद्धरेत् - निकाल दें (3.6)

उन्नयेत् - ऊँचाई में वृद्धि करें (4.9)

उपसंहरेत् - रखें (2.15)

उपरि उपरि - बार बार (9.1)

उपलब्धिः - उदहारण (3.14)

कोटी - अर्धकर्ण (3.2)

चतुष्करणी - प्रमाण वर्ग के क्षेत्रफल के चार गुना क्षेत्रफल के वर्ग की बाजू (2.18)

चतुःस्त्रक्ति - चार सिरे होने वाली आकृति, चतुर्भुज (6.18)

छेदम् - छेद (5.18)

तिर्यङ्मानी - आडी बाजू (1.7)
ततीयाकरणी - प्रमाण वर्ग के क्षेत्रफल के एक तिहाई क्षेत्रफल के वर्ग की बाजू (2.7)
दीर्घ चतुरश्र - आयत (1.8)
नमन - पंख का बांक, झुकाव, मोड (18.23)
नित्या - स्थूल, अशुद्ध (3.4)
निरस्तम् - सिद्ध हुआ (2.17)
निर्जिहीर्षन् - व्यवकलित करना हो तो (2.14)
निर्णाम - पंख का बांक (15.5)
निर्ह्रासः - घटाना (1.6)
पाद - एक चौथाई (3.19)
पार्श्वमानी - पार्श्व में होने वाली बाजू (1.8)
पृथक् - विभिन्न (1.8)
पृष्ठ्या - सममिति अक्ष (पूर्व-पश्चिम) (1.4)
प्रउग - समद्विभुज त्रिभुज (12.6)
प्रथीयसी - बड़ी (4.10)
प्रमाणमात्री - प्रमाण बाजू (1.11)
ह्रसीयसः - छोटी (2.11)
लक्षणम् - चिन्ह (1.3)
लेखासमरम् - रेखाओं का छेदना या काटना (9.1)
वर्षीयसः - बड़ी (2.11)
वितृतीय - एक तिहाई से कुछ कम (4.6)
विपर्यस्य - उलट करके (1.5)
विवृद्धि - वृद्धि करना (1.6)
विशय - जोड़ (16.23)
विष्कंभ - वृत्त का व्यास (3.6)
विशेष - $\sqrt{2}$ (1.10)
शेषः - शेष (1.7)

स समाधि	-	ऐसा प्राप्त हुआ, ऐसा सिद्ध हुआ वह विन्यास (1.5)
समस्य	-	योग करके (1.10)
सन्नत	-	नीचे (4.10)
संपूरयेत्	-	पूरा करें (2.21)
संविभज्य	-	विभाजन करके (4.8)

4 कात्यायन शुल्बसूत्र

कण्डिका 1 से 6

हिन्दी भाषा

कात्यायन शुल्बसूत्र

कण्डिका एक

रज्जुसमासं वक्ष्यामः ॥ 1 ॥

रस्सी से विन्यास करने की पद्धति कहते हैं। (1)

समे शङ्कुं निखाय शङ्कुसम्मितया रज्ज्वा मण्डलं परिलिख्य यत्र लेखयोः शङ्क्वग्रच्छाया निपतति तत्र शङ्कूं निहन्ति सा प्राची ॥ 2 ॥

समतल जमीन में शंकु गाढ़कर शंकु के लम्बाई जितनी लम्बी रस्सी से (शंकु केन्द्र मानकर) वृत्त खीचें। जहाँ शंकु की छाया वृत्त को काटती हैं वहाँ दो खुंटियाँ ठोकें। यह पूर्व दिशा। (2)

[पूर्व इत्यादि दिशायें निश्चित करने के लिये जहाँ शंकु रखने की वह जगह समतल होनी चहिये। शंकु सीधा, वृत्ताकार छेद का और नोक वाला होता है। वह 18 अंगुल लम्बा लेते हैं। नीचे का छः अंगुल भाग जमीन में गाढ़ते हैं और अणिदार नोक जमीन के ऊपर 12 अंगुल ऊँचा होता है। वृत्त की त्रिज्या 12 अंगुल लें।]

तदन्तरं रज्ज्वाऽभ्यस्य पाशौ कृत्वा शङ्क्वोः पाशौ प्रतिमुच्य दक्षिणायम्य मध्ये शङ्कुमेवमुत्तरतः सोदीची ॥ 3 ॥
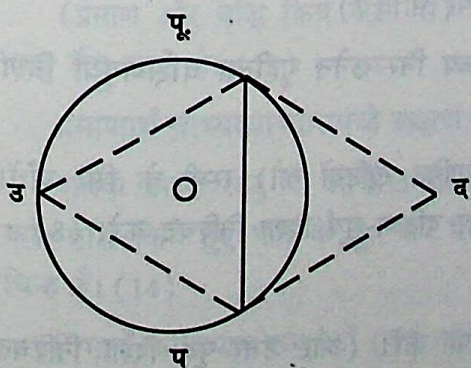
इसके बाद दुगनी लम्बी (24 अंगुल) रस्सी लेकर इसके दोनों सिरों पर गाँठ बाँधे। दोनों खुंटियों को रस्सी के सिरे से बाँधकर इसे मध्य चिन्ह से दक्षिण की तरफ खीचें। जहाँ मध्य बिन्दु

आता है वहाँ खुंटि ठोकें। यह दक्षिण दिशा ऐसी रस्सी उत्तर की तरफ खीचें और उत्तर दिशा निश्चित करें। (3)

रज्ज्वन्तयोः पाशौ करोति ॥ 4 ॥

रस्सी के दोनों सिरो पर गाँठ बाँधें। (4)

श्रोण्यंसनिरञ्छनसंख्यासमासभङ्गेषु लक्षणानि ॥ 5 ॥

श्रोणी, अंस, निरंञ्छन (और) समासभङ्के चिन्ह रस्सी पर करें। (5)
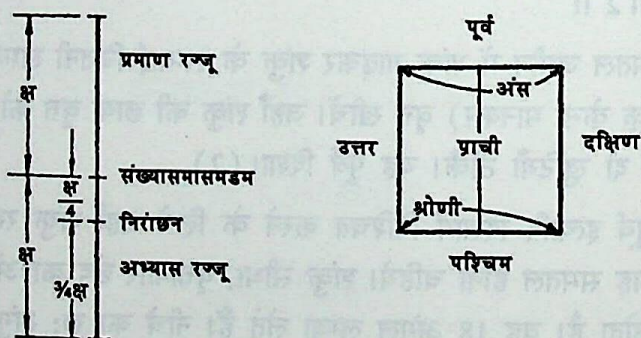
प्राच्यन्तयोः शङ्कू निहन्ति ॥ 6 ॥

प्राची के सिरो पर खुंटियाँ ठोकें। (6)

श्रोण्यंसयोश्च ॥ 7 ॥

श्रोणी और अंस स्थानों पर भी। (7)

शङ्क्वोः पाशौ प्रतिमुच्य निरञ्छनेन गृहीत्वा दक्षिणपूर्वां दिशं हरन्ति ॥ 8 ॥

(प्राची के सिरों पर स्थापित खुंटियों को) रस्सी के सिरे बाँधें। निरांछन उंगलियो में पकड़कर दक्षिण-पूर्व दिशा निश्चित करें। (8)

एवमुत्तरतः ॥ 9 ॥

ऐसे ही उत्तर की तरफ करें। (और उत्तर-पूर्व दिशा निश्चित करें)। (9)

विपर्यस्येतरतः ॥ 10 ॥

व्योम रीति से (रस्सी के सिरो की उलट-पलट करके) उर्वरित दिशाएँ (नैर्ऋत्य और वायव्य) निर्धारित करें। (10)

स समाधिः सर्वत्र ॥ 11 ॥

यह (वर्ग के) विन्यास की रीति सर्वत्र उपयोग में लाईये। (11)

प्रमाणमभ्यस्याभ्यासचतुर्थे लक्षणं करोति तन्निरञ्छनम् ॥ 12 ॥
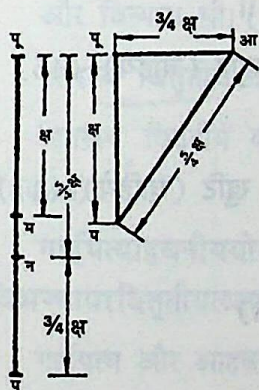
प्रमाण रज्जु की लम्बाई में उतनी ही वृद्धि करें और वृद्धि किये हुए भाग के चौथाई भाग पर चिन्ह करें, वह निरंछन है। (12)

[मानों की प्रमाण रज्जु की (वर्ग की) लम्बाई क्ष है। रस्सी 2क्ष लम्बाई की लें। निरंछन से रस्सी के दो भाग होते हैं, $\frac{5}{4}$क्ष और ¾क्ष। त्रिभुज प पू आ में पू प = क्ष, पूआ = ¾क्ष और आ प = $\frac{5}{4}$क्ष। क्ष^2 + (¾क्ष)^2 = ($\frac{5}{4}$क्ष)^2। त्रिभुज प पू आ समकोण त्रिभुज है।]

अक्ष्णया तिर्यङ्मानी शेषः ॥ 13 ॥

(प्रमाण और वृद्धि किये रस्सी से) तिर्यङ्मानी घटाने से अक्ष्णया रज्जु शेष रहती है। (13)

प्रमाणार्धं वाभ्यस्याभ्यासषष्ठे लक्षणं करोति तन्निरञ्छनम् ॥ 14 ॥

अथवा प्रमाण रज्जु के आधे लम्बाई से रस्सी के लम्बाई में वृद्धि करें। वृद्धि किये हुऐ भाग के $\frac{1}{6}$ भाग पर चिन्ह करें, यह निरंछन का चिन्ह है। (14)

[मानों की प्रमाण रज्जु की (वर्ग की) लम्बाई क्ष है। वह डेढ़ गुनी करें, $\frac{3}{2}$क्ष लम्बाई होगी। निरंछन से रस्सी के $\frac{13}{12}$ क्ष और $\frac{5}{12}$ क्ष ऐसे दो
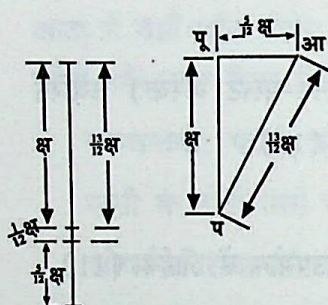
विभाग होते हैं। त्रिभुज प पू आ में क्ष^2+($\frac{5}{12}$क्ष)^2 =($\frac{13}{12}$ क्ष)^2। त्रिभुज प पू आ समकोण त्रिभुज है।)

अक्ष्णया तिर्यङ्मानी शेषः ॥ 15 ॥

(यहाँ वृद्धि किये रस्सी से) तिर्यङ्मानी घटाने से अक्ष्णया रज्जु शेष रहती है। (15)

प्रमाणार्द्धे समचतुरस्रस्य शङ्कुः ॥ 16 ॥

वर्ग के प्रमाण लम्बाई के आधे दूरी पर खुंटि (चहिये)। (16)

शास्त्रवद् अर्द्धे दीर्घचतुरस्रस्य ॥ 17 ॥

शास्त्र से आयत के (भी) आधे दूरी पर खुंटि (चाहिये)। (17)

शकटमुखस्य चैवम् ॥ 18 ॥

शकट मुख के बारे में ही ऐसा करें। (18)

[शकटमुख याने त्रिभुज का आधार।]

एतेन प्राग्वंशवेदिमानानि व्याख्यातानि ॥ 19 ॥

इससे प्राग्वंश, वेदी इत्यादियों की विन्यास की रीत कही। (17)

शालामानं च ॥ 20 ॥

शाला का ही विन्यास कहा। (20)

तत्रोदीची प्राचीवत् ॥ 21॥

वहाँ उत्तर-दक्षिण सममिति अक्ष प्राची (पूर्व-पश्चिम सममिति अक्ष) जैसा है। (21)

सदसश्चैवम् ॥ 22 ॥

सदस के लिये भी (यह विन्यास की रीत है)। (22)

अपरिमितं प्रमाणाद् भूयः ॥ 23 ॥

अपरिमित याने प्रमाण से अधिक। (23)

[उदा. द्वादशदीक्षा अपरिमिता वा।- दीक्षा 12 या अपरिमित याने 13 हैं।]

प्रमाणेशास्त्रं प्रमाणं निह्रासविवृद्धयोः ॥ 24 ॥

शास्त्र से प्रमाण नाप लें। प्रमाण नाप से कम या अधिक शास्त्र से ही करें। (24)

योगश्च ॥ 25 ॥

और विन्यास भी। (25)

इतरस्य वितृतीये दक्षिणत इत्येतद् वक्ष्यामः ॥ 26 ॥

'इतरस्य वितृतीये दक्षिणतः' इत्यादि के बारे में स्पष्टीकरण देते हैं। (26)

गार्हपत्याहवनीययोरन्तरालं षट्ढा सप्तधा वाऽऽगन्तुसमं त्रैधा विभज्यापरवितृतीयलक्षणेन दक्षिणायम्य तस्मिन्नग्निः ॥ 27 ॥

गार्हपत्य और आहवनीय के दूरी के छः या सात विभाग करें। और इसमे छठें या सातवें भाग का योग करें। (यह रस्सी की लम्बाई है।) इस लम्बाई के तीन विभाग करें और पश्चिम के सिरे के नजदीक एक तिहाई चिन्ह से रस्सी दक्षिण की तरफ खींचें। जहाँ चिन्ह आयेगा वह दक्षिणग्नि का स्थान। (27)

विपर्यस्योत्तरत उत्करः ॥ 28 ॥

(यह विन्यास की रीति) उलट करके उत्तर की ओर उत्कर का स्थान प्राप्त करें। (28)

अपि वाऽन्तरत्रिभागोनया रज्ज्वा पूर्वार्द्धे समचतुरस्रं कृत्वा श्रोण्यामग्निः ॥ 29 ॥

अथवा (गार्हपत्य और आहवनीय के) दूरी के तीन भाग करें और रस्सी की लम्बाई एक भाग से कम करें। इस रस्सी के (नाप के) पूर्व

के आधे भाग में वर्ग खींचें। इस वर्ग के (दक्षिण) श्रोणी पर दक्षिणाग्नी का स्थान है। (29)

विपर्यस्योत्तरांसः उत्करः ॥ 30 ॥

(यह रीत) उलट करके वर्ग के उत्तर अंस पर उत्कर का स्थान प्राप्त करें। (30)
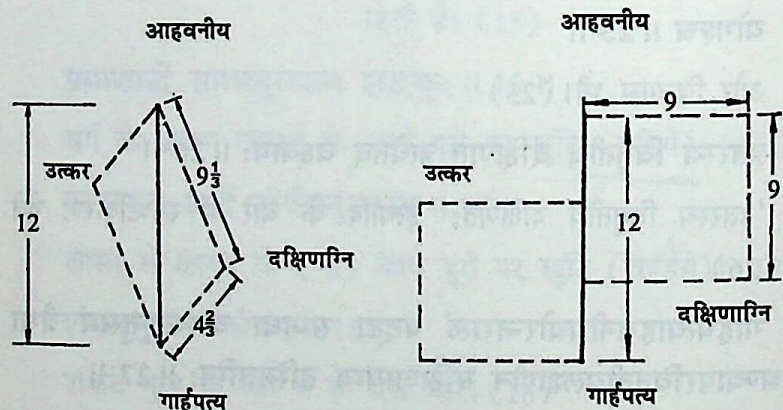
सूत्र 1.27-28

इति प्रथमा कण्डिका

कण्डिका एक समाप्त

कण्डिका दो

अङ्गुलैः रथसम्मितायाः प्रमाणम् ॥ 1 ॥

रथ के आकार की वेदि का नाप अंगुलों में कहते हैं। (1)

तत्राष्टाशीतिशतमीषा ॥ 2 ॥

वहाँ ईषा (वेदि की प्राची) 188 अंगुल है (2)

चतुःशतमक्षः ॥ 3 ॥

अक्ष-धुरी (वेदि की पश्चिम भुजा) 104 अंगुल है। (3)

षडशीतिर्युगम् ॥ 4 ॥

युग (वेदि की पूर्व भुजा) 86 अंगुल है। (4)
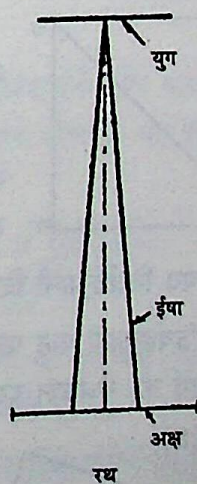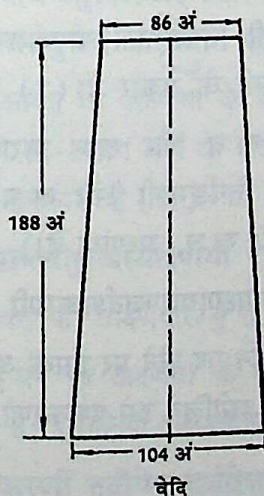
चत्वारोऽष्टकाः शम्या ॥ 5 ॥

चार आठ बार (= 32) अंगुल शम्या (का नाप) है। (5)

पैतृक्यां द्विपुरुषं चतुरस्रं कृत्वा करणीमध्येषु शङ्कवः स समाधिः ॥ 6 ॥
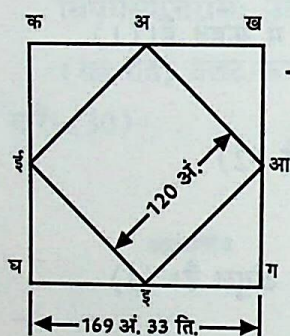
महापितृयज्ञ के वेदि के (विन्यास के) लिये दो वर्ग पुरुष क्षेत्रफल का वर्ग खींचें और इसके ओर के मध्यबिंदुओं पर खुंटियाँ ठोकें। इससे (मुख्य दिशाओं की तरफ सिरे होने वाली और एक पुरुष क्षेत्रफल की) वेदि प्राप्त होती है। (6)

वर्ग क ख ग घ का क्षेत्रफल = 2 वर्ग पुरुष।

वर्ग अ आ इ ई का क्षेत्रफल = 1 वर्ग पुरुष।

करणी तत्करणी तिर्यङ्मानी पार्श्वमान्यक्ष्णया चेति रज्जवः ॥ 7 ॥
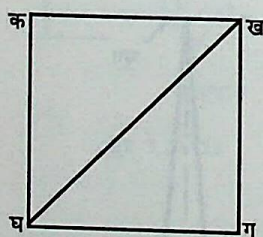
करणी, तत्करणी, तिर्यङ्मानी, पार्श्वमानी और अक्ष्णया ये सब रस्सी के प्रकार हैं। (7)

क ख, घ ग, क घ और ख ग करणी हैं। क ख, और घ ग, तिर्यङ्मानी और क घ, और ख ग, पार्श्वमानी हैं। ख घ, अक्ष्णया है।)

पदं तिर्यङ्मानी त्रिपदा पार्श्वमानी तस्याक्ष्णयारज्जुर्दशकरणी ॥ 8 ॥

तिर्यङ्मानी एक पद और पार्श्वमानी तीन पद लेने पर इसके अक्ष्णया के वर्ग का क्षेत्रफल दस वर्ग पद होता है, इसीलिये इसे दशकरणी कहते हैं। (8)
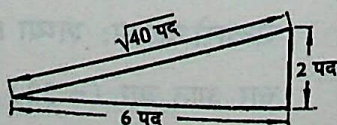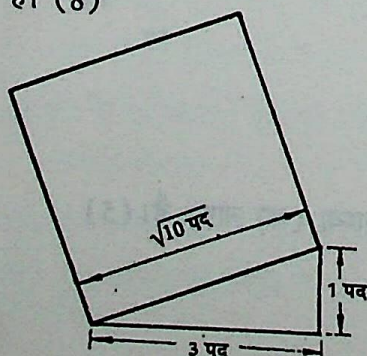
एवं द्विपदा तिर्यङ्मानी षट्पदा पार्श्वमानी तस्याक्ष्णयारज्जुः चत्वारिंशत्करणी ॥ 9 ॥

ऐसी ही दो पद तिर्यङ्मानी और छः पद पार्श्वमानी लेने पर अक्ष्णया रज्जु चालीस करणी होती है। (9)

[$2^2 + 6^2 = 40$, अक्ष्णया के वर्ग का क्षेत्रफल 40 वर्ग पद है। उत्तर वेदि विभिन्न नापों की होती है। (1) शम्यामात्री - 32 x 32 अंगुल-वर्गाकार (2) वितृतीया - प्रमाण वेदि के $\frac{1}{3}$ क्षेत्रफल की (3) अपरिमिता (4) युगमात्री 86 x 86 अंगुल (5) दशपदा -10 वर्ग पद क्षेत्रफल की और (6) 40 वर्ग पद क्षेत्रफल की।]

उपदिष्टं युगप्रमाणं शम्याप्रमाणं च दर्शनात् ॥ 10 ॥

युग और शम्या की नापें शास्त्र से कह गईं हैं। (10)

दीर्घचतुरस्त्रस्याक्ष्णयारज्जुस्तिर्यङ्मानी पार्श्वमानी च यत्पृथग्भूते कुरुतस्तदुभयं करोतीति क्षेत्रज्ञानम् ॥ 11 ॥

आयत के अक्ष्णया के वर्ग का क्षेत्रफल तिर्यङ्मानी और पार्श्वमानी के अलग-अलग वर्गों के क्षेत्रफलों के योग जितना होता है। यह क्षेत्रफल की जानकारी है (11)

समचतुरस्त्रस्याक्ष्णया रज्जर्द्विकरणी ॥ 12 ॥ 2098

वर्ग की अक्ष्णयारज्जु द्विकरणी होती है। (12)

[वर्ग के अक्ष्णया के वर्ग का क्षेत्रफल वर्ग के क्षेत्रफल से दुगुना होता है, इसीलिये अक्ष्णयारज्जु को द्विकरणी कहते हैं।)

करणीं तृतीयेन वर्धयेत्तच्च स्वचतुर्थेनात्मचतुस्त्रिंशोनेन स विशेष इति विशेषः ॥ 13 ॥

वर्ग की भुजा की एक तिहाई से वृद्धि करें। इस तिहाई के चौथाई भाग से उसका $\frac{1}{34}$वाँ भाग घटाने से (आने वाली लम्बाई को) विशेष कहते हैं। यह विशेष की व्याख्या है। (13)

[मानों वर्ग की भुजा क्ष है। विशेष की लम्बाई = क्ष + $\frac{क्ष}{3}$ + $\frac{क्ष}{3x4}$ - $\frac{क्ष}{3x4x34}$। विशेष याने $\sqrt{2}$। $\sqrt{2} = 1+\frac{1}{3} + \frac{1}{3x4} - \frac{1}{3x4x34} =$ 1.41421516]
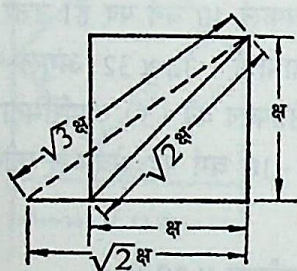
प्रमाणं तिर्यक् द्विकरण्यायामः तस्याक्ष्णयारज्जुस्त्रिकरणी ॥ 14 ॥

प्रमाण वर्ग की अक्ष्णया तिर्यङ्मानी और प्रमाण वर्ग की बाजू पार्श्वमानी लेने पर इसकी अक्ष्णया रज्जु त्रिकरणी होती है। (4)

[प्रमाण वर्ग के तिगुना क्षेत्रफल का वर्ग खींचने की यह रीति है।

मानों प्रमाण वर्ग की लम्बाई = चौड़ाई = क्ष। इसका क्षेत्रफल = क्ष^2। इस वर्ग के अक्ष्णया की लम्बाई $\sqrt{2}$ क्ष है। $\sqrt{2}$ क्ष लम्बाई और क्ष चौड़ाई होने वाले आयात की अक्ष्णयारज्जु की लम्बाई $\sqrt{3}$ क्ष है। इस लम्बाई और चौड़ाई के वर्ग का क्षेत्रफल = ($\sqrt{3}$क्ष)^2 = 3क्ष^2।]

तृतीय करण्येतेन व्याख्याता ॥ 15 ॥

इसी से तृतीयकरणी कही गई है। (15)

[प्रमाण वर्ग के एक तिहाई क्षेत्रफल के वर्ग के भुजा को तृतीयकरणी कहते हैं।)

प्रमाणविभागस्तु नवधा ॥ 16 ॥

प्रमाण वर्ग के नौ (समान वर्ग) विभाग करें। (16)

करणीतृतीयं नवभागः ॥ 17 ॥

(प्रमाण वर्ग के) ओर के तिहाई विभागों से नौ (वर्ग) भाग प्राप्त होते हैं। (17)

नवभागास्त्रयस्तृतीयकरणी ॥ 18 ॥

नौ वर्गों में से तीन वर्गों के क्षेत्रफलों के योग से होने वाले वर्ग की भुजा तृतीयकरणी होती है। (18)

[मानों वर्ग कखगघ की करणी क्ष है। इस वर्ग का क्षेत्रफल = $क्ष^2$। इसके समान नौ वर्ग भाग किये। तीन वर्गों का क्षेत्रफल = क्ष x $\frac{क्ष}{3} = \frac{क्ष^2}{3}$ । इस वर्ग के बाजू की लम्बाई = $क्ष/\sqrt{3}$ । यह तृतीयकरणी।]
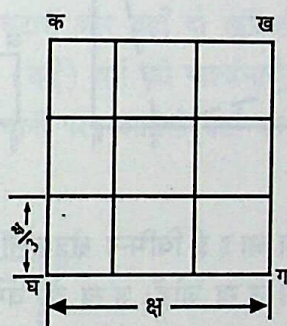
सौत्रामण्यां प्रक्रमार्था ॥ 19 ॥

सौत्रामणि वेदि के प्रक्रम नाप के लिये (तृतीयकरणी चाहिये।) (19)

तृतीयकरणी समासार्था ॥ 20 ॥

तृतीयकरणी से वर्गों के क्षेत्रफलों का योग कर सकते हैं। (20)

तुल्यप्रमाणानां समचतुरस्त्राणामुक्तः समासः ॥ 21 ॥

समक्षेत्र वर्गों के क्षेत्रफलों के योग करने की पद्धति कही गई। (21)

नानाप्रमाणसमासे ह्रसीयसः करण्या वर्षीयसोपच्छिन्द्यात् तस्याक्ष्णया रज्जुरुभे समस्यतीति समासः ॥ 22 ॥

विभिन्न क्षेत्रफलों के दो वर्गों के क्षेत्रफलों के योग इतना क्षेत्रफल का वर्ग खींचना हो तो बड़े वर्ग के ओर पर छोटे वर्ग का ओर रखें ओर शेष भाग निकाल दें। (बड़े वर्ग की पार्श्वमानी और छोटे वर्ग की तिर्यङ्मानी जोड़ें। यह) अक्ष्णया के वर्ग का क्षेत्रफल दिये हुये वर्गों के

क्षेत्रफलों के योग इतना होता है। (22)
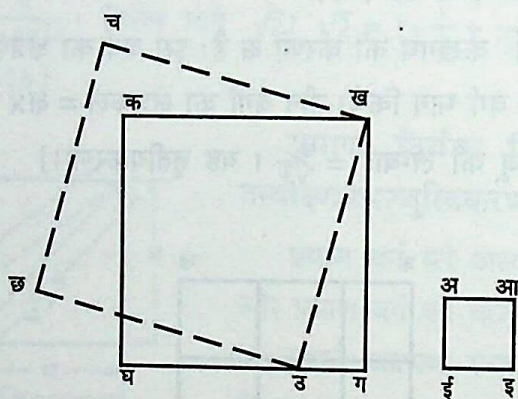
[क ख ग घ और अ आ इ ई विभिन्न क्षेत्रफलों के दो वर्ग हैं। ग घ पर इ ई इतनी ग उ खींचें। उ ख जोड़ें। उ ख के वर्ग का क्षेत्रफल ख ग और ग उ के वर्गों के क्षेत्रफलों के योग जितना है। वर्ग क ख ग घ + वर्ग अ आ इ ई = वर्ग च ख उ छ, कारण ख $ग^2$ + उ $ग^2$ = ख $उ^2$।

इति द्वितीया कण्डिका

कण्डिका दो समाप्त

कण्ड़िका 3

चतरस्त्राच्चतुरस्त्रं निर्जिहीर्षन् यावन्निर्जिहीर्षेत्तावदुभयतोऽपच्छिद्य शङ्कू निखाय पार्श्वमानीं कृत्वा पार्श्वमानीसम्मितयामक्ष्णयां तत्रोपसंरहरति स समासेऽपच्छेदः सा करण्येष निह्रासः ॥ 1 ॥

(बड़े) वर्ग के क्षेत्रफल से (छोटे) वर्ग का क्षेत्रफल घटाकर शेष क्षेत्रफल का वर्ग खींचना हो तो (बड़े) वर्ग की दोनों भुजाओं से (छोटे) वर्ग की दो भुजाएं घटाएँ और वहाँ दो खुंटियाँ स्थापित करें। यह भुजा पार्श्वमानी मानें और (बड़े) वर्ग की पार्श्वमानी अक्ष्णया जैसी लेकर वह जहाँ उस पर (पार्श्वमानी पर) आयेगी वहाँ का शेष भाग निकाल दें। वह (इच्छित) करणी है। (इस करणी के लम्बाई के वर्ग का क्षेत्रफल दोनों वर्गों के क्षेत्रफलों के व्यवकलन इतना होता है।) यह क्षेत्रफलों के व्यवकलन की रीति। (1)

क ख ग घ और अ आ इ उ विभिन्न क्षेत्रफलों के दो वर्ग हैं।
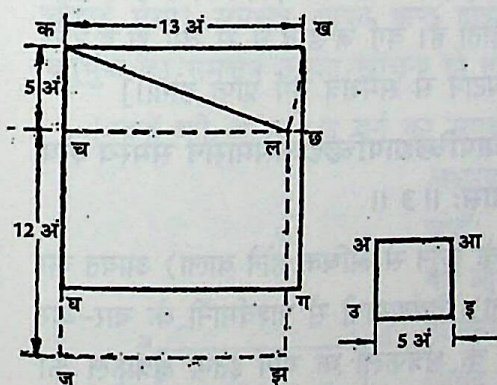
क घ पर क च = अ उ और ख ग पर ख छ = आ इ खींचें।

'क' केन्द्र बिन्दु मानकर और त्रिज्या क ख लेकर ख ल वृत्तखंड खींचें। वह च छ को ल पर काटता है क ल जोड़े। च ल^2 = क ल^2 – क च^2, च ल^2 = क ख^2–अ आ^2)

दीर्घचतुरस्त्रं समचतुरस्त्रं चिकीर्षन्मध्ये तिर्यगपच्छिद्यान्यतर-द्विभज्येतरत्पुरस्ताद् दक्षिणतश्चोपदध्याच्छेषमागन्तुना पूरयेत्तस्योक्तो निह्रासः ॥ 2 ॥

(चौड़ाई से दुगुनी लम्बाई के) आयत का समक्षेत्र वर्ग करना हो तो, आयत मध्य में तिर्यक् काटकर, इसके दूसरे भाग के फिर दो समान भाग करें और पूर्व का भाग दक्षिण की तरफ रखें। शेष भाग अधिक वर्ग लेकर पूरा करें। दोनों वर्गों के क्षेत्रफलों के व्यवकलन की रीत कही है। (2)
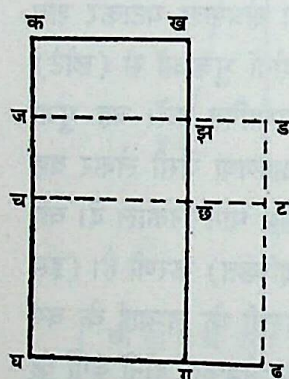
[आयत क ख ग घ में क घ = 2 क ख। क घ का मध्यबिन्दु च और ख ग का मध्यबिन्दु छ, च छ जोडें। क च का मध्यबिन्दु ज और ख छ का मध्यबिन्दु झ। ज झ जोडें। आयत क ख झ ज उठाकर छ ग पर ऐसा रखें की आयत छ ग ढ ट प्राप्त होगा। वर्ग झ ड ट छ खींचें, वर्ग ज ड ढ घ प्राप्त होता है। वर्ग ज ड ढ घ से वर्ग झ ड ट छ घटाने से समक्षेत्र वर्ग प्राप्त होगा।]

अतिदीर्घं चेत् तिर्यङ्मान्यापच्छिद्यापच्छिद्यैकसमासेन समस्य शेषं यथायोगमुपसंहरेदित्येकः समासः ॥ 3 ॥

अतिदीर्घ (लम्बाई चौड़ाई के दुगुने से अधिक होने वाला) आयत का (समक्षेत्र वर्ग खींचने का हो तो) तिर्यङ्मानी से पार्श्वमानी के बार-बार विभाग करके आने वाले वर्गों के क्षेत्रफलों के योग इतना क्षेत्रफल का वर्ग खींचें। शेष आयत का यथायोग्य रीति से समक्षेत्र वर्ग खींचें। दोनों वर्गों के योग इतना क्षेत्रफल का वर्ग खींचें, (वह प्रमाण आयत का समक्षेत्र होगा। (3)

[अ इ उ क यह अतिदीर्घ आयत। इसके अ इ पार्श्वमानी के अ क तियङ्मानी से अ ग, ग च, च प ऐसे विभाग करके अ ग ल क, ग च व ल और च प र व समक्षेत्र वर्ग प्राप्त होते हैं। इन तीन वर्गों के क्षेत्रफलों के योग इतना क्षेत्रफल का वर्ग खींचें। शेष प इ उ र आयत का समक्षेत्र वर्ग करें और दोनों वर्गों का योग करके आयत का समक्षेत्र वर्ग खींचें।)
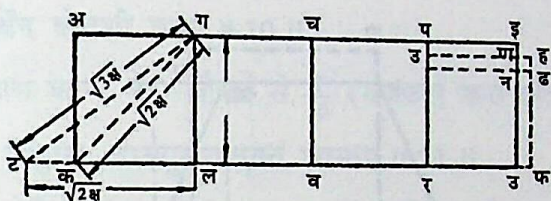
समचतुरश्रं दीर्घचतुरश्रं चिकीर्षन् मध्येऽक्ष्णयाऽपच्छिद्य तच्च विभज्यान्यतरत्पुरस्तादुत्तरतश्चोपदध्याद्विषमं चेद्यथायोगमुपसंहरेदिति व्यासः ॥ 4 ॥

वर्ग का समक्षेत्र आयत करने का हो तो अक्ष्णया से वर्ग के दो सम विभाग करें और एक भाग के फिर दो भाग करें। (दो त्रिभुज प्राप्त होते हैं)। वे (त्रिभुज) पूर्व और उत्तर की ओर रखें। इसी से (लम्बाई = 2 x चौड़ाई ऐसा) समक्षेत्र आयत प्राप्त होता है। यदि समलम्ब समद्विभुज चतुर्भुज का समक्षेत्र आयत खींचना हो तो यथायोग्य रीति से करें। (4)

[मानों की अ आ इ उ वर्ग का समक्षेत्र आयत करने का है। उ आ अक्ष्णया है। इसका मध्यबिन्दु क। इ क जोडें। त्रिभुज इ क आ उठाकर पूर्व की ओर अ आ पर रखें। त्रिभुज इ क उ उठाकर उत्तर की ओर अ उ पर रखें। आयत ख ग आ उ वर्ग का समक्षेत्र है और उसकी लम्बाई = 2 x चौड़ाई।
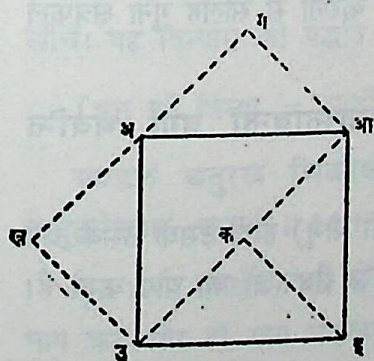
अ आ इ उ समलंब समद्विभुज चतुर्भुज है। इसकी चौड़ाई इसके छोटे भुज इतनी है और इसकी बड़ी बाजू (आधार) छोटी बाजू से दुगुनी है। उ इ पर अ क लम्ब दिया गया। त्रिभुज अ क उ उठाकर आ इ पर ऐसा रखें की अ उ आ इ पर आयेगी और क कोण बिन्दु ग पर आयेगा। अ ग इ क यह समक्षेत्र आयत है। सूत्र 3.2 से इसके समक्षेत्र वर्ग का विन्यास करें।)
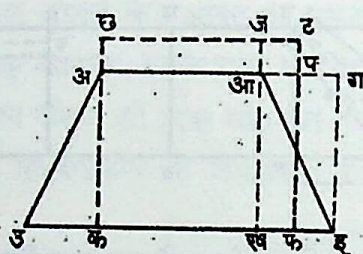
प्रमाणं चतुरस्त्रमादेशादन्यत् ॥ 5 ॥

वर्ग का परिमाण भुजा के परिमाण से लें। वैसा कहा होगा तो दूसरे परिमाण से लें। (भुजा की लम्बाई जिस परिमाण में (मानों पद में) है इस परिमाण से ही वर्ग का क्षेत्रफल लें याने वर्ग पद से लें, वर्ग अंगुलों से या दूसरे कोई परिमाण से न लें।)

द्विः प्रमाणा चतुःकरणी त्रिःप्रमाणा नवकरणी चतुःप्रमाणा षोडषकरणी ॥ 6॥

प्रमाण करणी के दुगुनी करणी से चार गुना (क्षेत्रफल प्राप्त होता है) तिगुनी करणी से नौ गुना और चार गुनी करणी से सोलह गुना क्षेत्रफल प्राप्त होता है। (6)

यावत्प्रमाणा रज्जुर्भवति तावन्तस्तावन्तो वर्गा भवन्ति तान्त्समत्स्येत् ॥ 7 ॥

जिस-जिस प्रमाण की रस्सी (वर्ग की बाजू) होगी उसके उसके वर्ग से क्षेत्रफल (प्राप्त होता है।) इस रीति से क्षेत्रफलों का योग करते हैं। (7)

अर्धप्रमाणेन पादप्रमाणं विधीयते ॥ 8 ॥

प्रमाण करणी के आधे से चौथाई (क्षेत्रफल) प्राप्त होता है। (8)

तृतीयेन नवमांशः ॥ 9 ॥

(प्रमाण करणी के) तिहाई से $\frac{1}{9}$ (क्षेत्रफल प्राप्त होता है। (9)

चतुर्थेन षोडशी कला ॥ 10 ॥

(प्रमाण करणी के) चौथाई से $\frac{1}{16}$ (क्षेत्रफल प्राप्त होता है। (10)

एष निह्रासः तस्यपुरस्तादुक्तं शास्त्रम् ॥ 11 ॥

यह वर्गों के क्षेत्रफलों के व्यवकलन की रीति कही। इसका सामान्य नियम आगे दिया है। (11)

यावत्प्रमाणा रज्जुर्भवतीति विवृद्धेर्ह्रासो भवति ॥ 12 ॥

(प्रमाण रज्जु) जिस प्रमाण से (कम या अधिक करेगें इसके वर्ग से क्षेत्रफल) अधिक या कम होता है। (12)

चतुरस्त्रं मण्डलं चिकीर्षन्मध्यादंसे निपात्य पार्श्वतः परिलिख्य तत्र यदतिरिक्तं भवति तस्य तृतीयेन सह मण्डलं परिलिखेत् स समाधिः ॥ 13 ॥

वर्ग का (समक्षेत्र) वृत्त खींचने का हो तो वर्ग के मध्य से अंस तक की दूरी पार्श्वमानी के मध्य पर लाकर वहाँ (इस दूरी का) जितना भाग (पार्श्वमानी के) बाहर रहता है इसके एक तिहाई भाग के साथ वृत्त खींचें। यह विन्यास की पद्धति है। (13)

[वृत्त की त्रिज्या = आधी पार्श्वमानी + $\frac{1}{3}$ प फ।]

मण्डलं चतुरस्त्रं चिकीर्षन् विष्कम्भं पञ्चदशभागान् कृत्वा द्वावुद्धरेच्छेषः करणी ॥ 14 ॥

वृत्त का (समक्षेत्र) वर्ग खींचने का हो तो (वृत्त के) व्यास के 15 भाग करें और दो भाग घटाकर शेष लम्बाई (वर्ग की) करणी होती है। (14)
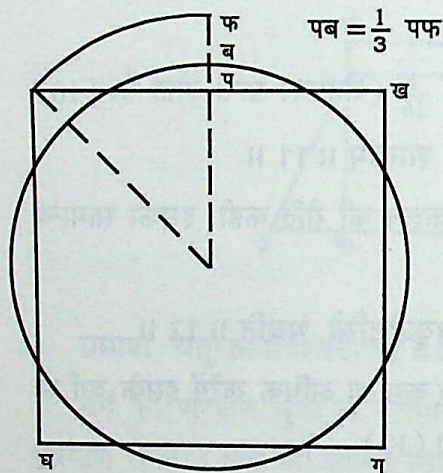
वर्ग के समक्षेत्र वृत्त का विन्यास (सूत्र 3.13)
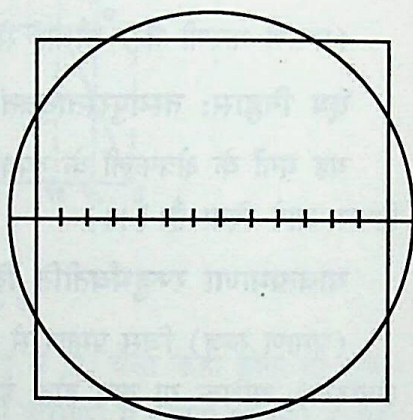
वृत्त के समक्षेत्र वर्ग का विन्यास (सूत्र 3.14)

इति तृतीय कण्डिका
कण्डिका तीन समाप्त

कण्ड़िका चार

द्रोणचिद्रथचक्रचित्कङ्कचित्प्रउगचिदुभयतः प्रउगः समुह्यपुरीष इत्यग्नयः ॥ 1 ॥

द्रोणचिति, रथचक्रचिति, कंकचिति, प्रउगचिति, उभयतः प्रउगचिति और समुह्यपुरीष ऐसे अग्नि के प्रकार हैं। (1)

द्रोणे यावानग्निः सपक्षपुच्छविशेषस्तावच्चतुरस्त्रं कृत्वा द्रोण-दशमविभागो वृन्तमित्येके ॥ 2 ॥

द्रोणचिति के लिये पक्ष, पूँछ के साथ जितने क्षेत्रफल का अग्नि होता है इस क्षेत्रफल का वर्ग करें। द्रोण के $\frac{1}{10}$ क्षेत्रफल की द्रोण की दंडी होती है ऐसे कुछ लोग कहते हैं। (2)

[प्रथम अग्नि का क्षेत्रफल 7½ वर्ग पुरुष है। इस क्षेत्रफल का वर्ग खींचें। इस वर्ग की लम्बाई है 328.6 अंगुल।)

तद् दशमेनापच्छिद्यापच्छिद्यैकसमासेन समस्य निर्हृत्य सर्वमग्निं तथा कृतिं कृत्वा पुरस्ताद् पश्चाद् वोपदध्यात् ॥ 3 ॥

इस वर्ग के बार-बार दस भाग करें। एक भाग के दीर्घ आयत का समक्षेत्र वर्ग करें और शेष नौं भागों के आयत का भी वर्ग करें। सब अग्नि आकार में (द्रोण) जैसी करें और दंडी का वर्ग इसके आगे या पीछे रखें। (3)
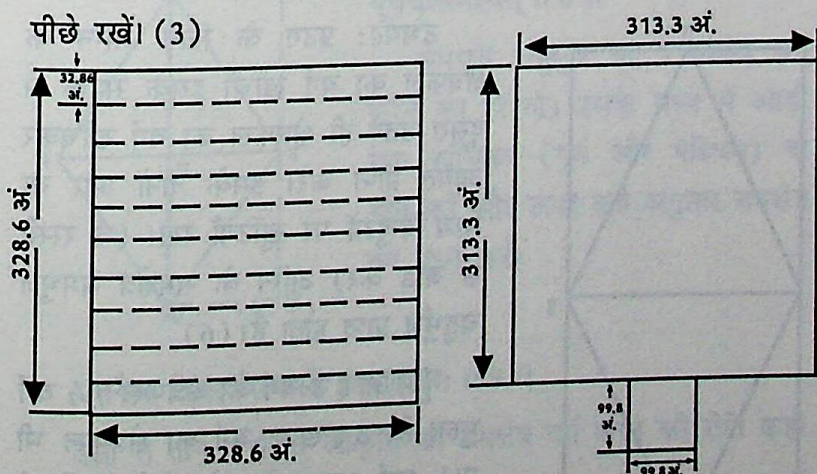
मण्डले ऽप्येवम् ॥ 4 ॥

वृत्ताकृति चिति के बारे में ही ऐसा करें। (4)

प्रउगे यावानग्निः सपक्षपुच्छविशेषः तावद् द्विगुणं चतुरस्त्रं कृत्वा यःपुरस्तात्करणीमध्ये शङ्कुंयौंच श्रोण्योः सोऽग्निः ॥ 5 ॥

प्रउग चिति में पंख, पूँछ के साथ जितने क्षेत्रफल का अग्नि है इसके दुगुने क्षेत्रफल का वर्ग खींचकर इसके पूर्व की ओर के मध्य में और दोनों श्रोणीयों पर खुंटियाँ रखें, वह (ईष्ट क्षेत्रफल का प्रउगाकार) अग्नि। (5)
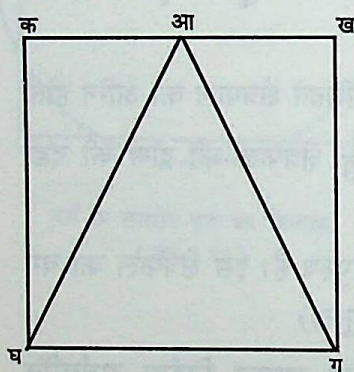
[मानों क ख ग घ वर्ग का क्षेत्रफल 15 वर्ग पुरुष है। क ख का मध्यबिन्दु आ। आ घ और आ ग जोडें। त्रिभुज आ ग घ का क्षेत्रफल 7½ वर्ग पुरुष है।]

उभयतः प्रउगे तावदेव दीर्घचतुरस्त्रं कृत्वा करणीमध्येषु शङ्कवः स समाधिः ॥ 6 ॥
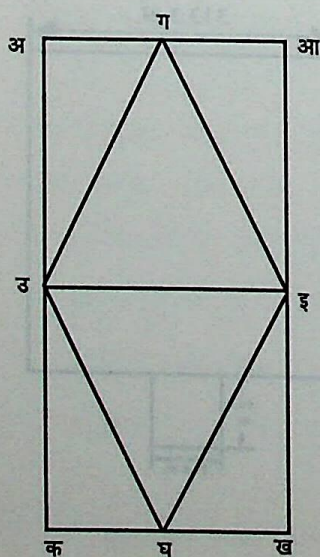
उभयतः प्रउग के लिये अग्नि के क्षेत्रफल का वर्ग खींचें। इसके संपर्क मे दूसरा उतने ही क्षेत्रफल का वर्ग खींचकर आयत प्राप्त करें। इसके दोनों ओर के मध्य बिन्दुओं पर खुंटियाँ रखें। (वे रस्सी से जोड़ कर) अग्नि के समक्षेत्र समभुज चतुर्भुज प्राप्त होता है। (6)

[अ आ इ उ वर्ग का क्षेत्रफल 7½ वर्ग पुरुष है। उ इ ख क वर्ग का क्षेत्रफल भी 7½ वर्ग पुरुष है। ये दोनों वर्गों से

अ आ ख क आयत प्राप्त होता है।

इस आयत के ओर के ग उ घ और इ मध्यबिन्दु जोड़ के ग इ घ उ 7½ वर्ग पुरुष का समभुज चतुर्भुज प्राप्त होता है।]

प्रउगं चतुरस्त्रं चिकीर्षन् मध्ये प्राञ्चमपच्छिद्य विपर्यस्येतरत उपधाय दीर्धचतुरस्त्रसमासेन समस्येत्स समाधिः ॥ 7 ॥
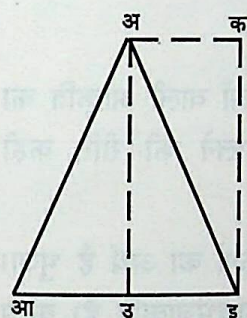
त्रिभुज का (समक्षेत्र) वर्ग खींचने का हो तो त्रिभुज मध्य में पूर्व-पश्चिम रेखा से विभागें। एक भाग उलट करके दूसरी जगह रखकर (समक्षेत्र) आयत प्राप्त होता है। इसी से समक्षेत्र वर्ग प्राप्त करें। (7)

[अ आ इ समद्विभुज त्रिभुज है। अ उ प्राची है। त्रिभुज अ उ आ उठाकर उलटा करके ऐसा रखें की अ आ बाजू अ इ पर आयेगी और उ कोण बिन्दु क पर आयेगा। अ क इ उ समक्षेत्र आयत प्राप्त हुआ। इस आयत का सूत्र 3.2 से समक्षेत्र वर्ग खींचें।]

उभयतः प्रउगं चेन्मध्ये तिर्यगपच्छिद्य पूर्ववत्समस्येत् ॥ 8 ॥
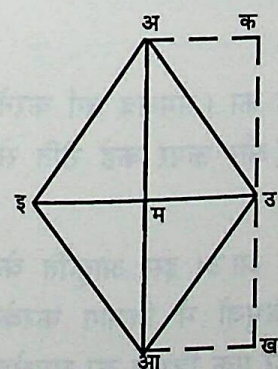
समभुज चतुर्भुज का (समक्षेत्र वर्ग करने का हो तो) इसके मध्य में आड़ी रेखा खींचकर (पूर्व और पश्चिम) दो भाग करें और ऊपर कहे अनुसार समक्षेत्र वर्ग प्राप्त करें।

एतनैव त्रिकर्णसमासो व्याख्यातः ॥ 9 ॥

इसी से तीन कर्ण के आकृति का समक्षेत्र वर्ग करने की रीति कही गई। (9)
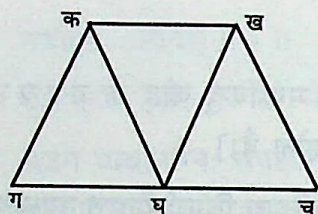
[यहाँ त्रिकर्ण शब्द का अर्थ है तीन त्रिभुजों से बनी हुई आकृति। इस अर्थ में त्रिभुज एक कर्ण है। हर एक त्रिभुज का सूत्र 4.7 से समक्षेत्र वर्ग खींचें। इन वर्गों के क्षेत्रफलों के योग के क्षेत्रफल का वर्ग सूत्र 2.22 से खींचें।]

पञ्चकर्णानां च ॥ 10 ॥
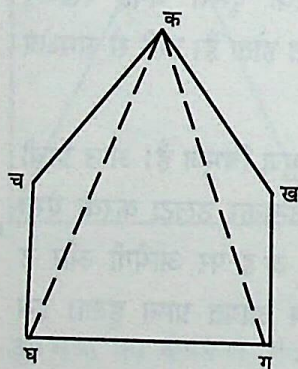
और पांच भुजाओं वाली आकृति का (समक्षेत्र वर्ग निकालने की रीति कही गई)। (10)

[इस सूत्र मे कर्ण का अर्थ है भुजा। क ख ग घ च यह पंचभुजाकृति है। क घ और क ग जोड़ के त्रिभुज क च घ, क घ ग और क ख ग प्राप्त होते हैं। इनके समक्षेत्र वर्ग खींचें और इनके क्षेत्रफलों का योग करके समक्षेत्र वर्ग खींचें।)

प्रउगेऽपच्छिद्यैककर्णानाम् ॥ 11 ॥

समान लम्बाई के कर्ण होने वाले आकृति का (समक्षेत्र वर्ग करने का हो तो) इसका त्रिभुजों मे विभाग करें। (और ऊपर कहे रीति से समक्षेत्र वर्ग करें। (11)

आकृति अ आ इ उ मे कर्ण अ इ = कर्ण आ उ। इस आकृति के त्रिभुजों में विभाग करके हर एक त्रिभुज का समक्षेत्र वर्ग खींचें। इन वर्गों के क्षेत्रफलों के योग के इतना क्षेत्रफल का वर्ग खींचें।
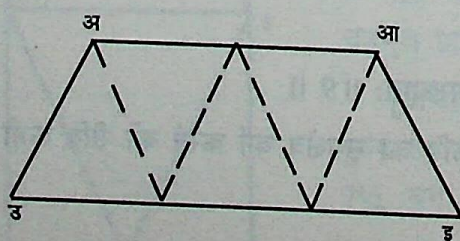
[सूत्र 4.9 से 4.11 मे दिये हुये कर्ण शब्द के अर्थ महीधर भाष्य के अनुसार किये हैं।]

इति चतुर्थी कण्ड़िका

कण्ड़िका चार समाप्त

कण्ड़िका पांच

उत्तरेषु पुरुषोच्चयेनैकशतविधादित्येन वक्ष्यामः ॥ 1 ॥

'उत्तरेषु पुरुषोच्चयेनैकशतविधात्' इस सूत्र का स्पष्टीकरण देते हैं। (1)

[प्रथम अग्नि के क्षेत्रफल में (7½ वर्ग पुरुष) एक वर्ग पुरुष क्षेत्रफल का बार-बार योग करके अग्नि का क्षेत्रफल 101½ वर्ग पुरुष वृद्धि करने की रीति कहता हूँ।]

आद्योऽग्निर्द्विगुणस्त्रिगुणो भवतीति सर्व समासः ॥ 2 ॥

प्रथम अग्नि के (क्षेत्रफल के) दुगुना और तिगुना (क्षेत्रफल का) अग्नि इनके योग से प्राप्त करें। (2)

[सूत्र 2.12 और 2.13 से दुगुने और तिगुने क्षेत्रफल के अग्नियों का विन्यास करें।]

एकविंशतिविधो भवतीति पुरुषाभ्यासः ॥ 3 ॥

एक वर्ग पुरुष से वृद्धि करके इक्कीस विध (21½ वर्ग पुरुष क्षेत्रफल का) अग्नि (अश्वमेध यज्ञ में) करें। (3)

पुरुषाभ्यासे यावानग्निः समक्षपुच्छविशेषः तावच्चतुरस्रं कृत्वा तस्मिन् पुरुषप्रमाणमवदध्यात् ॥ 4 ॥

एक पुरुष से क्षेत्रफल में वृद्धि करनी हो तो पंख और पूँछ के साथ अग्नि का जितना क्षेत्रफल होगा इतने क्षेत्रफल का वर्ग खींचकर इसमे एक वर्ग पुरुष क्षेत्रफल के वर्ग का योग करें। (4)

समस्तं पञ्चदशभागान् कृत्वा द्वावेकसमासेन समस्येत्स पुरुषः ॥ 5 ॥

सब (अग्नि के क्षेत्रफल के) वर्ग के पंद्रह विभाग करें। इनमें से दो विभागों के क्षेत्रफलों का योग करके एक वर्ग पुरुष क्षेत्रफल का वर्ग प्राप्त होता है। दोनों वर्गों के क्षेत्रफलों का योग करने पर एक वर्ग पुरुष से क्षेत्रफल में वृद्धि हुआ वर्ग प्राप्त होता है। (5)

पञ्चविभागेन बृहती तस्य दशमविभागेन पादमात्री भवति ।। 6 ।।

(एक विध से एकशतिविध अग्नि के क्षेत्रफल के वर्ग खींचने पर इनके भुजा के) पांच विभाग करें (याने 25 वर्ग विभाग करें) इस (हर एक वर्ग को) बृहती कहते हैं। दस विभाग (याने सौ वर्ग विभाग) करें तो इस (हर एक वर्ग को) पादमात्री कहते हैं। (6)

पुरुषं वा पञ्चमेनोभयतोऽपच्छिद्य पञ्चविभागान्समस्य तृतीयं निर्हृत्य तस्मिन्पुरुषप्रमाणेऽवदध्यादित्यपरम् ।। 7 ।।

अथवा एक वर्ग पुरुष क्षेत्रफल के दोनों भुजाओं के पांच-पांच विभाग करें (याने 25 वर्ग विभाग करें) इनमें से पांच (वर्ग) विभागों के क्षेत्रफलों का योग करें। उससे एक तिहाई (वर्ग) भाग घटाकर शेष भागों का (प्रथम अग्नि के क्षेत्रफल के) हर एक वर्ग पुरुष से योग करें। यह दूसरी रीति। (7)
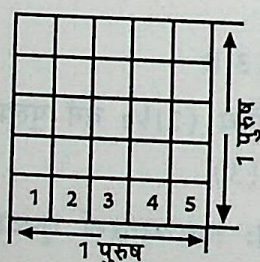
[एक वर्ग पुरुष क्षेत्रफल का वर्ग खींचें। इसके 25 वर्ग विभाग करें। 1 से 5 तक के समक्षेत्र वर्गों के क्षेत्रफलों का योग करें और इसका समक्षेत्र वर्ग खींचें। इस वर्ग का क्षेत्रफल $\frac{1}{5}$ वर्ग पुरुष है।
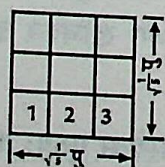
इस वर्ग के नौं वर्ग विभाग करें। 1 से 3 तक के समक्षेत्र वर्गों के क्षेत्रफलों का योग करें और इसका समक्षेत्र वर्ग खींचें। इसका क्षेत्रफल $\frac{1}{15}$ वर्ग पुरुष है। $\frac{1}{5}$ वर्ग पुरुष वर्ग से $\frac{1}{15}$ वर्ग पुरुष का वर्ग घटाएँ। $\frac{1}{5} - \frac{1}{15} = \frac{2}{15}$ वर्ग पुरुष। इस क्षेत्रफल के वर्ग का अग्नि क्षेत्र के हर एक वर्ग पुरुष से योग करें। $7\frac{1}{2} + 7\frac{1}{2} \times \frac{2}{15} = 8\frac{1}{2}$ वर्ग पुरुष। जो वर्ग आयेगा इसका क्षेत्रफल प्रथम अग्नि के क्षेत्रफल से एक वर्ग पुरुष से अधिक होगा।]

पञ्चदशविभागोऽष्टाङ्गुलम् ॥ 8 ॥

पुरुष का पंद्रहवाँ भाग आठ अंगुल है। (8)

पञ्चारत्निर्दशवितस्तिर्विंशतिशतांगुलः पुरुष इत्येतस्माद् द्वादशाङ्गुलं पदमिति च ॥ 9 ॥

पांच अरत्नि, दश वितस्ति (या) 120 अंगुलों का एक पुरुष और 12 अंगुलों का एक पद होता है। (9)

पुरुषं वा सप्तमेनोभयतोऽपच्छिद्य सप्तभागान् समस्य ससप्तमभागमङ्गुलं निर्हृत्य पुरुषप्रमाणेऽवदध्यादित्यपरम् ॥ 10 ॥

अथवा एक वर्ग पुरुष क्षेत्रफल के वर्ग के दोनों ओर के सात-सात विभाग करें (याने 49 वर्ग विभाग करें) इनमें से सात वर्ग विभागों के क्षेत्रफलों का योग करें। वहाँ से $1\frac{1}{7}$ अंगुल घटाकर (याने इस आयत की चौड़ाई $1\frac{1}{7}$ अंगुलों से कम करके) शेष क्षेत्रफल का अग्निक्षेत्र के हर एक वर्ग पुरुष क्षेत्रफल में योग करें। यह दूसरी रीति। (10)

[एक वर्ग पुरुष क्षेत्रफल के 49 वर्ग विभाग करें। सात वर्ग विभागों का क्षेत्रफल है $\frac{1}{7}$ वर्ग पुरुष। $120 \times 1\frac{1}{7} = \frac{960}{7}$ वर्ग अंगुल $= \frac{960}{7 \times 120 \times 120}$ $= \frac{1}{15 \times 7}$ वर्ग पुरुष। $\frac{1}{7} - \frac{1}{15 \times 7} = \frac{2}{15}$ वर्ग पुरुष। $7\frac{1}{2} + 7\frac{1}{2} \times \frac{2}{15} = 8\frac{1}{2}$ वर्ग पुरुष। यह द्वितीय अग्नि का क्षेत्रफल।]

नारत्निवितस्तीनां समासो विद्यते संख्यायोगात् ॥ 11 ॥

अरत्नि और वितस्ति इनका क्षेत्रफल में योग न करें कारण (अरत्नि और वितस्ति की) वृद्धि संख्या में कहते हैं। (न की वर्ग संख्या में)। (11)

इति पञ्चमी कण्ड़िका

कण्ड़िका पांच समाप्त

कण्ड़िका छः

यथाग्नि वेदीष्टकाप्रमाणं वर्द्धत इत्येतद्वक्ष्यामः ॥ 1 ॥

अग्नि, वेदि और ईंटों के नापों में कैसी वृद्धि करते हैं यह कहते हैं। (1)

या करणी चतुर्दशप्रक्रमान्सङ्क्षिपति त्रींश्च प्रक्रमसप्तभागान् स एकाशतविधे प्रक्रमः ॥ 2 ॥

$14\frac{3}{7}$ वर्ग प्रक्रम क्षेत्रफल के वर्ग की भुजा (करणी) एकशतविध अग्नि के प्रक्रम का नाप होती है। (2)

[$14\frac{3}{7}$ वर्ग प्रक्रम क्षेत्रफल के वर्ग की लम्बाई 114 अंगुल है। 101 ½ वर्ग पुरुष का अग्नि क्षेत्र खींचने के लिये एक प्रक्रम = 114 अंगुल। इस अनुपात से नाप लें। (सामान्यतः 1 प्रक्रम = 30 अंगुल)। 7 ½ वर्ग पुरुष = 108000 वर्ग अंगुल। इस क्षेत्रफल के वर्ग की लम्बाई 328.6 अंगुल याने 10.95 प्रक्रम है। एकशतविध अग्नि के वर्ग की लम्बाई = 10.95 x 114 अंगुल। इस वर्ग का क्षेत्रफल = $\frac{10.95 \times 114 \times 10.95 \times 114}{120 \times 120}$ = 108¼ वर्ग पुरुष। परिशुद्ध क्षेत्रफल है 101 ½ वर्ग पुरुष।]

द्वितीये वा सप्तसु प्रक्रमेषु प्रक्रममवधाय तस्य सप्तमभागेन प्रक्रमार्थः ॥ 3 ॥

द्वितीय अग्नि के लिये सात वर्ग प्रक्रम (क्षेत्रफल) में एक वर्ग प्रक्रम (क्षेत्रफल) का योग करें और इसकी $\frac{1}{7}$ भाग की लम्बाई प्रक्रम जैसी लें। (3)

[7 + 1 = 8 वर्ग प्रक्रम क्षेत्रफल का वर्ग। इस बाजू की लम्बाई $\sqrt{8}$ प्रक्रम। इस वर्ग के पार्श्वमानी के सात विभाग करें। इसी से हर एक विभाग $\sqrt{8}$ प्रक्रम लम्बा और $\frac{1}{7} \times \sqrt{8}$ प्रक्रम चौड़ा होता है। इस आयत के समक्षेत्र वर्ग की लम्बाई है $\sqrt{\frac{8}{7}}$ प्रक्रम = 1.069 प्रक्रम 1.069 x 30 = 32.070 अंगुल। यह प्रक्रम का नाप द्वितीय अग्नि के विन्यास के लिये लें।

$7\frac{1}{2}$ वर्ग पुरुष = $7\frac{1}{2} \times \frac{120 \times 120}{30 \times 30}$ = 10.95×10.95 वर्ग प्रक्रम।

द्वितीय अग्नि का क्षेत्रफल = $\frac{10.95 \times 32.07 \times 10.95 \times 32.07}{120 \times 120} = 8.4386$ वर्ग पुरुष $\doteqdot 8.5$ वर्ग पुरुष।]

प्रक्रमेण वा सप्तमभागेन प्रक्रमार्थः ॥ 4 ॥

अथवा (द्वितीय अग्नि के लिये) एक वर्ग प्रक्रम क्षेत्रफल $1\frac{1}{7}$ वर्ग प्रक्रम से लें। (4)

[$1\frac{1}{7}$ वर्ग प्रक्रम के क्षेत्रफल के वर्ग की लम्बाई $\sqrt{\frac{8}{7}}$ प्रक्रम है। यह रीति सूत्र 6.3 जैसी ही है।]

एवमैकशतविधात् ॥ 5 ॥

इस प्रकार एकशतविध तक (क्षेत्रफल में वृद्धि करें) (5)

नान्तःपात्यगार्हपत्ययोर्वृद्धिर्भवति तावदेव योनिर्भवति न वै जातं गर्भं योनिरनुवर्धत इति श्रुतेर्वृद्धेरत्यन्तं प्रतिषेधः ॥ 6 ॥

अंतः पात्य और गार्हपत्य अग्नि की वृद्धि नहीं होती कारण वे (पशु के) योनि समान हैं। गर्भ में वृद्धि होकर भी योनि में वृद्धि नहीं होती, इसीलिये (अग्नि के क्षेत्र की वृद्धि होने पर भी) इनके वृद्धि को श्रुति का सम्पूर्ण निषेध है। (6)

[गार्हपत्य और वेदि की पश्चिम बाजू इस दूरी को अन्तः पात्य कहते हैं।]

यावत्प्रमाणानि समचतुरस्राण्येकीकर्त्तुं चिकीर्षेदेकोनानि तानि भवन्ति तिर्यग्द्विगुणान्येकत एकाधिकानि त्र्यस्त्रिर्भवति तस्येषुस्तत् करोति ॥ 7 ॥

समक्षेत्रफल के जितने वर्गों के क्षेत्रफलों का योग जितना वर्ग प्राप्त करने की इच्छा हो तो इन (वर्गों के) संख्या से एक व्यवकलित करें। जो संख्या आयेगी उसके दुगुने लम्बाई की आधार की रेखा खींचें। (वर्गों के) संख्या में एक का योग करें और इस लम्बाई के दो रेखाओं से आधार
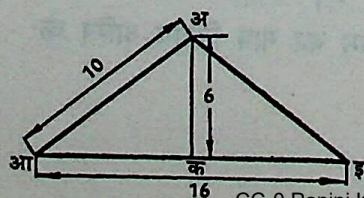
पर समद्विभुज त्रिभुज खींचें। शीर्ष बिन्दु से आधार पर लम्ब खींचें। इस लम्ब के वर्ग का क्षेत्रफल सब समक्षेत्र वर्गों के योग के बराबर होता है। (7)

[मानों वर्गों की संख्या 9 है और उनकी लम्बाई एक प्रक्रम है। सब वर्गों का क्षेत्रफल = 9 वर्ग प्रक्रम।

(वर्गों संख्या-1) x 2 = 16 प्रक्रम। यह आधार की लम्बाई।

(वर्गों की संख्या +1) = 10 प्रक्रम। इस लम्बाई के अ आ और अ इ समद्विभुज खींचें। शीर्ष बिन्दु से आधार पर लम्ब अ क दिया गया।

अ क^2 = अ आ^2 - आ क^2 = $(10)^2 - (8)^2$ । अ क = 6 प्रक्रम। $\frac{6}{2}$ = 3 प्रक्रम। यहाँ लम्ब को दो से विभाजित किया है, सूत्र में वैसा कहा नहीं है। 3 प्रक्रम लम्बाई के वर्ग का क्षेत्रफल 9 वर्ग प्रक्रम है।]

यथायूपं वेदिवर्द्धनमित्येतद्वक्ष्यामः ॥ 8 ॥

यूपों के संख्या के अनुसार वेदि की वृद्धि कैसी करने की यह कहते हैं। (8)

या रज्जुरेकादशोपरवान्सङ्क्षिपति दश च रथाक्षांस्तस्या यश्चतुर्विंशो भागः स प्रक्रमः ॥ 9 ॥

11 उपरव (12 अंगुल व्यास के गड्ढ़े) और दस रथाक्षों की लम्बाई के योग समान लम्बी रस्सी का $\frac{1}{24}$वाँ भाग (वेदि के विन्यास के लिये) प्रक्रम नाप का लें। (9)

[रस्सी की लम्बाई = 11 x 12 + 10 x 104 = 1172 अंगुल। एक प्रक्रम = $\frac{1172}{24} = 48\frac{5}{6}$ अंगुल। सोमयाग के महावेदि की प्राची 36 प्रक्रम, पूर्व बाजू 24 प्रक्रम और पश्चिम बाजू 30 प्रक्रम है। यहाँ 1 प्रक्रम = 30 अंगुल। परंतु 11 यूप होने वाली वेदि बनाने की हो तो 1 प्रक्रम = $48\frac{5}{6}$ अंगुल नाप लेकर वेदि का विन्यास करें।]

तेन वेदिं निर्माय द्वादशाङ्गुलं पुरस्तादपच्छिद्य तद्यूपावट्याच्छङ्कोः पुरस्तात्प्राञ्चमवधाय तस्मिन्यूपान्मिनोति ॥ 10 ॥

इस प्रक्रम के नाप से वेदि निर्मित करें और पूर्व की तरफ 12 अंगुल की दूरी छोड़कर वे (12 अंगुल) यूपावटीय खुंटि के आगे पूर्व की तरफ रखें और वहाँ से यूपों के लिये नाप लें। (10)

[यूप वेदि के पूर्व की तरफ उत्तर से दक्षिण की तरफ खडे करते हैं। वेदि के पूर्व - उत्तर अंस से 12 अंगुल दूरी छोड़कर वहाँ प्रथम यूप नियोजित करें। उसी प्रमाण से इतर यूप 12 अंगुलों से दक्षिण की तरफ हटाते हैं।]

पार्श्वयोर्वाऽर्धमन्तर्वेदीति श्रुतेरर्द्धकानिति ॥ 11 ॥ एके प्रथमोत्तमौ प्रकृतिवत् ॥ 12 ॥ सैषा शिखण्डिनी वेदिः ॥ 13 ॥

अथवा वे (यूप) वेदि के अंदर आधे (व्यास तक) रखते हैं, कारण अर्धमन्तर्वेदि ऐसी श्रुति है (11) कुछ लोगों की राय से केवल पहला और अंतिम यूप वेदि के अन्दर आधे (व्यास तक) रखते हैं। (12) ऐसी यह (ग्यारह यूपों की) शिखण्डिनि वेदि। (13)
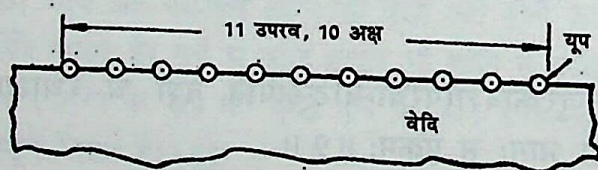
शिखण्डिनी वेदि में यूपों की व्यवस्था
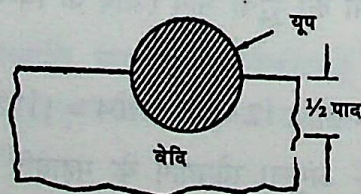
इति षष्ठी काण्ड़िका।

कण्ड़िका छः समाप्त।

समाप्तमिदं शुल्बसूत्रम्।

यह शुल्बसूत्र समाप्त हुआ।

कात्यायन शुल्बसूत्र में उल्लेखित नाप।

1 ईषा	=	188 अंगुल (2.2)
1 अक्ष	=	104 अंगुल (2.3)
1 युग	=	86 अंगुल (2.4)
1 शम्या	=	32 अंगुल (2.5)
1 पुरुष	=	5 अरत्नि = 120 अंगुल (5.9)
	=	10 वितास्ति (5.9)
1 अरत्नि	=	24 अंगुल (5.9)
1 वितस्ति	=	1 पद = 12 अंगुल (5.9)

चार शुल्बसूत्र
सूची

अग्नि

आहवनीय - बौ. शु. सू. 1.64

अन्वाहार्यपचन - बौ. शु. सू. 1.67

अनेकविध - बौ. शु. सू. 2.1-21, मा. शु. सू. 10.3.4.6., आ. शु. सू. 8.9-16

गार्हपत्य - बौ. शु. सू. 1.63, 2.61-72, मा. शु. सू. 10.2.2.1, 10.3.4.6-13

उत्कर - बौ. शु. सू. 1.70, मा. शु. सू.10.1.1.10

उपरव - बौ. शु. सू. 1.100-101; मा. शु. सू. 10.3.2.28; आ. शु. सू. 7.4-5

चत्वाल - बौ. शु. सू. 1.99; मा. शु. सू. 10.3.1.8

चिति

चात्वाल - बौ. शु. सू. 1.99; मा. शु. सू. 10.3.1.8

अलज - बौ. शु. सू. 4.92-99; मा. शु. सू. 10.3.2.12, आ. शु. सू. 21.1-8

उभयतः प्रउग - बौ. शु. सू. 4.111-117, मा. शु. सू. 10.3.6.4-5; आ. शु. सू. 12.13-15

कंक - बौ. शु. सू. 4.75-91; मा. शु. सू. 10.3.5.2-6, आ. शु. सू. 21.1-10

कूर्म - बौ. शु. सू. 9.1-33; 10.1-12

द्रोण-(चौरस) बौ. शु. सू. 6.1-22; मा. शु. सू. 10.3.6; 10.3.6.9-9-10, आ. शु. सू. 13.6-25

द्रोण-(वृत्ताकृति) बौ. शु. सू. 7.1-16; मा. शु. सू. 10.3.6.7-8

प्रउग -	बौ. शु. सू. 4.100-110
रथचक्र-(प्रधियुक्त)	बौ. शु. सू. 5.1-8; आ. शु. सू. 12.16-17,
(सारा) -	बौ. शु. सू. 5.9-36; मा. शु. सू.10.3.6.13-19, 10.3.7.1-7; आ. शु. सू. 13.1-5
श्मशान -	बौ. शु. सू. 8.1-17; आ. शु. सू. 14.9-15
श्येन- (चतुरस्त्र)	बौ. शु. सू. 3.1-61; मा. शु. सू. 10.2.1.1-14; 10.2.1.2-8; 10.2.2.11-13, 10.2.3.1-7, 10.2.4.1-4, 10.2.5.6-19, 10.3.4.14-22; आ. शु. सू. 8.1-8,8.18-21,9.1-20, 10.1-25, 11.1-19.
चिति- श्येन -	बौ. शु. सू. 4.1-74; मा. शु. सू. 10.3..5.1,
(पंछी जैसा)	10.3.5.7-26; आ. शु. सू. 15.1-25, 16.1-24, 17.1-16, 18.1-24, 19.1-18,20.1-19
दिशा निश्चिति -	मा. शु. सू. 10.1.1.3,10.3.1.2, 10.3.1.11-12; का. शु. सू. 1.2-3
धिष्ण्या -	बौ. शु. सू. 1.102.2.73-77; मा. शु. सू. 10.2.2.10, 10.2.5.5, 10.3.1.6, 10.3.4.23-26, आ. शु. सू. 7.18-22
निरञ्छन -	का. शु. सू. 1.12,1.14
न्यञ्छन -	बौ. शु. सू. 1.33

मण्डप

अग्निध्रीय -	बौ. शु. सू. 1.103; मा. शु. सू. 10.1.3.3, 10.3.3.3-5
प्राग्वंश -	बौ. शु. सू. 1.88, मा. शु. सू. 10.1.3.1, 10.1.3.6
मार्जालीय -	बौ. शु. सू. 1.104
सदस -	बौ. शु. सू. 1.92-95, मा. शु. सू. 10.1.3.2, आ. शु. सू. 7.1-3
हविर्धान -	बौ. शु. सू. 1.96; मा. शु. सू. 10.1.3.2

ईंटें (वैशिष्टि) -	बौ. शु. सू. 2.22-60, 2.78-81; मा. शु. सू. 10.1.4.7-8, 10.2.2.14, 10.2.5.1-3, 10.3.1.3-4

वेदि

उत्तर -	बौ. शु. सू. 1.79, 1.97-98, मा. शु. सू. 10.1.3.5, आ. शु. सू. 6.20-24
एकादशिनि -	बौ. शु. सू. 1.106-109, मा. शु. सू. 10.1.3.7-8 का. शु. सू. 6.8-13
चारक्य -	मा. शु. सू. 10.1.2.1-3
दार्शिकी -	मा. शु. सू. 10.1.1.4-6
पशुबन्ध -	बौ. शु. सू. 1.76-78; मा. शु. सू. 10.1.2.4; आ. शु. सू. 6.6-11, 6.15-17
पितृ -	बौ. शु. सू. 1.81, 1.83-84; मा. शु. सू. 10.1.2.6-7
महा -	बौ. शु. सू. 1.82, 1.90; आ. शु. सू. 5.18-21
मरुत् -	मा. शु. सू. 10.1.2.5
यजमानमात्री -	बौ. शु. सू. 1.72-75; आ. शु. सू. 4.9-17, 6.18-19
वारुणी -	मा. शु. सू. 10.1.2.5
शामित्र -	मा. शु. सू. 10.3.1.9
सौत्रमणि -	बौ. शु. सू. 1.85; मा. शु. सू. 10.1.3.9, 10.3.4.1; आ. शु. सू. 5.23-27
सौमिकि -	मा. शु. सू. 10.1.3.4, 10.3.4.2; आ. शु. सू. 5.1-17

लेखक-परिचय

इस पुस्तक के लेखक को 'भारतीय वास्तुशास्त्र' में बहुत दिलचस्पी है। इस विषय पर संस्कृत में लिखे कुछ चुने का अभ्यास इसने किया है। काश्यप शिल्प प्रकाश और प्रासादमंडन के मर अनुवाद किये हैं। शुल्बसूत्र में श्रौतयज्ञ लिये मंडप, वेदि अग्निचिति इत्यादिओ रचना करने की शास्त्रशुद्ध रितियाँ दी शुल्बसूत्र का अध्ययन भारतीय वास्तुश के अभ्यासकों को अनिवार्य है। गत प तीस सालों से उन्होंने इस विषय में रु ली है। शुल्बसूत्र पर इनकी और चार प्रकाशित हुई हैं।

1.चार शुल्बसूत्रों-शुल्बसूत्रों का मराठी अनुवाद प्रकाशक-महाराष्ट्र राज्य साहि संस्कृति मंडक, मुम्बई

2. Layout and Construction of Citi according to Bodhāyana-, Mānava Āpastamba Śrautasutras.
प्रकाशक-भांडारकर प्राच्यविद्या संशोधन संस्था, पुणे

3. Geometry according to Śulbasu
प्रकाशक-वैदिक संशोधन मंडप, पुणे

4. Layout for Different Sacrifices according to Different Śrautasutra
प्रकाशक-महर्षि सांदिपनी राष्ट्रीय वेद प्रतिष्ठान, उज्जैनी